उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

मानविकी विद्याशाखा

मध्यकालीन कविता (भाग 1)

प्रथम सत्र (MAHL 502)

विशेषज्ञ समिति

प्रो.एच.पी. शुक्ला निदेशक, मानविकी विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	प्रो. लक्ष्मण सिंह बिष्ट 'बटरोही' निदेशक, महादेवी वर्मा सृजन पीठ, रामगढ़, नैनीताल
प्रो एस.डी.तिवारी. विभागाध्यक्ष, हिन्दी गढवाल विश्वविद्यालय, गढ़वाल	डा. जितेन्द्र श्रीवास्तव हिंदी विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विवि.,दिल्ली
प्रो.डी.एस.पोखरिया विभागाध्यक्ष, हिन्दी कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल,	प्रो.नीरजा टंडन हिन्दी विभाग कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल,

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं संपादन

डा.राजेन्द्र कैड़ा असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाएं विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	**डा.शशांक शुक्ला** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाएं विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ. पुनीत कुमार राय, हिन्दी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय	1,2,3
डॉ. राजेन्द्र कैड़ा, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	4,5,6
डॉ. अधीर कुमार, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामनगर	7,8

कापीराइट©उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: जून, 2012 पुनर्संस्करण 2022

प्रकाशकः निदेशालय, अध्ययन एवं प्रकाशन

mail : studies@uou.ac.in

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल -263139

ISBN - ***978-93-84632-68-7***

प्रथम सत्र हेतु मध्यकालीन कविता MAHL 502 भाग – एक

खण्ड 1 – भक्तिकालीन कविता : स्वरूप एवं प्रक्रिया **पृष्ठ संख्या**

इकाई 1 – भक्तिकालीन कविता का उदय 1-21

इकाई 2 – भक्तिकालीन कविता: प्रक्रिया एवं विकास 22-43

इकाई 3 – भक्तिकालीन कविता: विविध शाखाएँ 44-66

खण्ड 2 – भक्तिकालीन कविता : पाठ एवं आलोचना **पृष्ठ संख्या**

इकाई 4 – कबीर :जीवन एवं साहित्य 67-75

इकाई 5 – कबीर : पाठ एवं आलोचना 76-92

इकाई 6 – सूरदास : साहित्य एवं आलोचना 93-118

इकाई 7 – जायसी: जीवन एवं साहित्यालोचना 119-133

इकाई 8 – तुलसी : परिचय, पाठ एवं आलोचना 134-149

प्रथम सत्र हेतु - MAHL - 502

मध्यकालीन कविता - भाग एक

इकाई 1 भक्तिकालीन कविता का उदय

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 भक्तिकाल: सीमांकन एवं नामकरण
1.4 भक्तिकालीन युग एवं परिवेश
  1.4.1 राजनीतिक परिस्थिति
  1.4.2 आर्थिक परिस्थिति
  1.4.3 सामाजिक परिस्थिति
  1.4.4 सांस्कृतिक परिस्थिति
1.5 भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप
1.6 भक्ति का उदय
1.7 भक्ति संबंधी विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत
  1.7.1 विशिष्टाद्वैतवाद
  1.7.2 द्वैतवाद
  1.7.3 शुद्धाद्वैतवाद
  1.7.4 द्वैताद्वैतवाद
1.8 निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार
  1.8.1 संत काव्य का दार्शनिक आधार
  1.8.2 सूफी मत
1.9 भक्ति आन्दोलन
  1.9.1 भक्ति आंदोलन: उदय एवं विकास
  1.9.2 भक्ति आंदोलन: उदय के कारण
  1.9.3 भक्ति आंदोलन: महत्व
1.10 भक्ति कालीन कविता का उदय
1.11 सारांश
1.12 शब्दावली
1.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.14 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.15 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम लोग भक्ति कविता के आधार एवं जिस परिवेश में भक्ति कविता का जन्म होता है, की चर्चा करेंगे। साहित्य में भक्ति की धारा का प्रादुर्भाव सहसा नहीं होता। पूर्व परम्परा एवं युगीन परिस्थितियों दोनों मिलकर भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य को जन्म देती हैं। इस इकाई के अंतर्गत भक्तिकाल सीमांकन एवं नामकरण, भक्तिकालीन युग एवं परिवेश, भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप भक्ति का उदय, भक्ति सम्बन्धी विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत, निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार, भक्ति आंदोलन, भक्तिकालीन कविता का उदय-की विस्तृत विवेचना की जाएगी। दरअसल यह इकाई भक्तिकालीन कविता की पूर्व पीठिका के तौर पर है। उपरोक्त विभिन्न पक्षों के क्रमवार विवेचन द्वारा भक्तिकालीन कविता की प्रवृत्तियों एवं धाराओं, उसकी पृष्ठभूमि को बेहतर ढंग से समझ पाना संभव होगा।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

- पूर्व मध्यकाल की समय-सीमा एवं नामकरण को जान सकेंगे।
- भक्तिकालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों से परिचित हो सकेंगे।
- भक्ति के अर्थ एवं स्वरूप से अवगत हो सकेंगे।
- भक्तिकालीन कविता के दार्शनिक आधार को बतला सकेंगे।
- भक्ति आंदोलन के उदय, विकास एवं महत्व का विश्लेषण कर सकेंगे।
- भक्ति काव्य के उदय की व्याख्या कर सकेंगे।

1.3 भक्तिकाल: सीमांकन एवं नामकरण-

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में पूर्व-मध्यकाल की समय सीमा 1318 ई. से 1643 ई. तक निर्धारित की है। आचार्य शुक्ल के इस सीमांकन को प्रायः सभी ने स्वीकार किया है। आदिकालीन सिद्ध, नाथ, जैन साहित्य में दिखलाई पड़ने वाले भक्ति तत्व के आधार पर न तो इस काल की सीमा को पीछे खींचा जा सकता है और न ही रीतिकालीन, भक्तिकालीन रचनाओं के आधार पर इसे आगे बढ़ाया जा सकता है। क्योंकि सिद्ध, नाथ, जैन साहित्य में भक्ति का वह उन्मेष, वह तन्मयता नहीं दिखलाई पड़ती, जो भक्ति काव्य में निहित हैं। दूसरी तरफ रीतिकालीन भक्तिपरक रचनाएँ सरस तो हैं, किंतु उनमें अधिकांशतः भक्तिकाव्य का ही अनुकरण है। अतः उपलब्ध सामग्री के आधार पर आचार्य शुक्ल का सीमांकन ही सर्वथा उचित और ग्राह्य हैं। मोटे तौर पर हम पूर्व मध्यकाल को 14वीं सदी के मध्य

से 17वीं सदी के मध्य तक मान सकते है। क्योंकि आदिकालीन रचना प्रवृत्तियों का प्राघान्य 14वीं सदी के मध्य तक दिखलाई पड़ता है और 17वीं सदी के मध्य तक आते-आते साहित्य में भक्ति के स्थान पर रीति कालीन प्रवृत्तियों की प्रबलता दृष्टिगोचर होने लगती है।

पूर्वमध्यकाल का आचार्य शुक्ल ने भक्तितत्व की प्रधानता के आधार पर भक्ति काल नामकरण किया है। हम देखते हैं कि इस युग के कविता की मूल संवेदना भक्ति है। चाहे संतकाव्य हो या प्रेमाख्यानक काव्य, रामभक्ति मार्ग हो या कृष्ण भक्तिमार्ग -सबमें भक्ति की ही केन्द्रीयता है, भले ही भक्ति के स्वरूप में भिन्नता है। भक्ति के अतिरिक्त इस युग में वीरगाथा, नीति और रीतिनिरूपण की प्रवृत्ति भी मिलती है। किंतु भक्तिपरक रचनाओं की तुलना में ऐसी रचनाओं की संख्या कम है। नीति तो बहुधा भक्ति के साथ संयुक्त होकर आई है। अतः पूर्वमध्यकाल को भक्तिकाल कहना उचित ही है।

1.4 भक्तिकालीन युग एवं परिवेश

युगीन परिस्थितियाँ साहित्यिक प्रवृत्तियों को निर्मित करती है, उन्हें प्रेरित, प्रभावित करती हैं। रचनाकार जिस युग एवं परिवेश की उपज होता है। वह उससे उदासीन नहीं रह सकता। वह रचना में अपने युग के अभिव्यक्त ही नहीं करता, बड़ा रचनाकार युगीन सीमाओं का अतिक्रमण कर अपने युग को नए मूल्य-मान, नया स्वप्न-संकल्प भी देता है। पूर्व मध्यकाल राजनीतिक सत्ता, सामाजिक अवस्था, सांस्कृतिक परिवेश में बड़े परिवर्तनों और उलट-फेर का काल है। मुसलमानों के आक्रमण एवं मुसलमानी सत्ता की स्थापना से पूरे समाज पर एक गहरा प्रभाव पड़ा, नयी आर्थिक-सामाजिक स्थितियाँ निर्मित हुई जो भक्ति आंदोलन के उदय में सहायक हुई। अतः भक्ति कालीन कविता को समझने के लिए तत्कालीन राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का परिचय आवश्यक है। आइए हम क्रमवार इन्हें देखे-

1.4.1 राजनीतिक परिस्थिति

भक्तिकाल राजनीतिक दृष्टि से तुगलकवंश से लेकर मुगल बादशाह शाहजहाँ के शासन तक का काल है। दसवीं शताब्दी में पश्चिममोत्तर भारत में तुर्कों के कई आक्रमण हुए, तत्कालीन भारतीय राजाओं की आपसी फूट एवं प्रतिस्पर्धा के कारण धीरे-धीरे मुसलमानों का राज उत्तर भारत में स्थापित हो गया। पृथ्वीराज चौहान और मोहम्मद गोरी के बीच 1192 में लड़े गए तराइन के युद्ध में गोरी की विजय होती है। पृथ्वीराज उस समय का सबसे प्रतापी राजा था। भारतीय इतिहास में यह युद्ध काफी निर्णायक माना जाता है, इस युद्ध ने भारत में तुर्कों की सत्ता स्थापित करने की जमीन तैयार कर दी। 1194 के चंदावर युद्ध में कन्नौज के शासक जयचंद को भी गोरी ने परास्त कर दिया। अब तुर्कों की ताकत से टकराने वाला कोई नहीं था। गोरी विजित भारतीय क्षेत्रों का शासन अपने गुलाम सेनापतियों को सौंपकर वापस गजनी लौट गया। 1206 में तुर्की गुलाम कुतबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली में गुलाम वंश की नींव डाली। उधर गजनी में चल्दोज गोरी का उत्तराधिकारी बना, उसने दिल्ली पर अपना दावा पेश किया। तभी से दिल्ली सल्तनत ने

गजनी से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। इससे मध्य एशिया की राजनीति से अलग दिल्ली सल्तनत का अपना स्वतंत्र विकास हुआ। तुर्कों की अपनी सत्ता स्थापित करने में काफी मशक्कत करनी पड़ी। उन्हें तुर्की अमीरों के आतंरिक विरोध, राजपूत राजाओं और विदेशी आक्रमण से खतरा था। किंतु अन्ततः सभी बाधाओं पर काबू पा लिया गया और एक सुदृढ़ और विस्तृत तुर्की राज्य बना। बलबन गुलाम वंश का सबसे प्रभावशाली शासक सिद्ध हुआ। प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो एवं अमीर हसन उसी के दरबार में रहते थे।

1290 से 1320 तक दिल्ली सल्तनत पर खिलजी वंश का शासन रहा। अदाउद्दीन खिलजी (1296-1316) ने अपनी आक्रामक नीति से जहाँ दिल्ली सल्तनत को दक्षिण तक फैलाया वहीं बाजार नियंत्रण, राजस्व-व्यवस्था के पुर्नगठन द्वारा शासन-व्यवस्था को भी मजबूती प्रदान किया। अमीर खुसरों का उसका राजाश्रय प्राप्त था। 1320 में गयासुद्दीन तुगलक ने तुगलक वंश की नींव डाली। गयासुद्दीन के पश्चात् मुहम्मद बिन तुगलक उत्तराधिकारी बना। मध्यकालीन सुल्तानों में वह सर्वाधिक योग्य, शिक्षित और विद्वान था। अपनी दो योजनाओं (1) दिल्ली से दौलताबाद राजधानी परिवर्तन (2) सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन के कारण वह इतिहास में प्रसिद्ध है। अफ्रीकी यात्री इब्नबतूता उसी के शासन काल में भारत आया था। उसी के शासनकाल में विजयनगर और बहमनी राज्य नामक दो स्वतंत्र राज्य अस्तित्व में आते हैं। मुहम्मद बिन तुगलक के पश्चात् फिरोज तुगलक दिल्ली सल्तनत की गद्दी पर बैठा। वह अपने सुधार-निर्माण कार्यों के लिए प्रसिद्ध है, उसने लगभग 300 नये नगरों की स्थापना की, जिनमें हिसार, फिरोजाबाद, फतेहाबाद, जौनपुर, फिरोजपुर आदि प्रमुख हैं। तुगलक वंश के पश्चात् 1398 में तैमूर का आक्रमण होता है, उसने दिल्ली को तहस-नहस कर दिया। दिल्ली सल्तनत पर क्रमशः सैय्यद और लोदी वंश का शासन रहा। अंतिम लोदी सुल्तान इब्राहिम शाह लोदी के समय में पंजाब के शासक दौलत खां लोदी के निमंत्रण पर बाबर ने भारत पर आक्रमण। पानीपत के प्रथम युद्ध 1526 ई. में उसने इब्राहिक शाह लोदी को पराजित कर मुगल वंश की नींव डाली। पानीपत के पश्चात् खानवा, चंदेरी और घाघरा के युद्धों में विजय हासिल कर उसने मुगल राज्य को सुरक्षित एवं सुदृढ़ बना दिया। बाबर एक सफल सेनानायक, साम्राज्य निर्माता ही नहीं अपितु एक साहित्यकार भी था, उसने 'बाबरनामा' नाम से अपनी आत्मकथा लिखी। 1530 में बाबर की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र हुमायूँ उत्तराधिकारी बना। उसका शासनकाल संकटों और चुनौतियों से भरा रहा। 1540 में बिलग्राम युद्ध में अफगान वंशीय शेरशाह सूरी ने हुमायूँ को पराजित कर आगरा, दिल्ली पर कब्जा कर लिया। हुमायूँ को सिंध भागना पड़ा। जहाँ उसे 15 वर्षों तक निर्वासित जीवन जीना पड़ा। शेरशाह एक कुशल योद्ध और शासक था। कुशल प्रशासन और केन्द्रीकृत व्यवस्था द्वारा उसने व्यापार को बढ़ावा दिया, उसने ग्रांड ट्रक रोड की मरम्मत करवाई, पाटिलपुत्र को पटना के नाम से पुनः स्थापित किया, डाक प्रथा का प्रचलन करवाया। 1545 में कालिंजर के किले को जीतने के क्रम में उसका असामयिक निधन हो गया। मौका पाकर 1555 में हुमायूँ पंजाब के शूरी शासक सिकंदर को पराजित कर पुनः दिल्ली पर कब्जा करने में सफल रहा। 1556 में पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरकर उसकी मृत्यु हो गई। उसी वर्ष पंजाब के कलानौर में 13 वर्ष की अल्पायु में हुमायूँ के पुत्र अकबर का राज्याभिषेक

हुआ। 1556-60 तक बैरम खाँ उसका संरक्षक रहा। अकबर के शासनकाल में मुगल साम्राज्य भलीभाँति भारत में स्थापित हो गया। उसका साम्राज्य पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर पूर्व में असम तक, उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में अहमद नगर तक विस्तृत था। वह दूरदर्शी, उदार और साहित्य-कला का संरक्षक शासक था। अकबर के पश्चात् जहाँगीर (1605-1627) और शाहजहाँ (1628-58) बादशाह बनते हैं। इनका शासनकाल प्रायः शांतिपूर्ण रहा यह व्यापार-वाणिज्य साहित्य, कला, संस्कृति के उन्नति का काल था। सल्तनत काल में विजयनगर, बहमनी राज्य, जौनपुर, काश्मीर बंगाल, मालवा, गुजरात, मेवाड़, खानदेश स्वतंत्र राज्य भी थे, कालांतर में इन पर मुगल साम्राज्य का आधिपत्य हो गया।

1.4.2 आर्थिक परिस्थिति

सल्तनत काल एवं मुगल काल में स्थिर एवं केन्द्रीकृत व्यवस्था के कारण अर्थव्यवस्था में प्रगति हुई। कुछ अपवादों को छोड़ कर यह कालखण्ड प्रायः शांतिपूर्ण था। शासन व्यवस्था सुव्यवस्थित थी, राजस्व वसूली की एक नियमित व्यवस्था थी। सुचारू प्रशासन के लिए मुगल साम्राज्य का बँटवारा सूबों में, सूबों का सरकार में, सरकार का परगना या महाल में, महाल का जिला या दस्तूर में, दस्तूर ग्राम में बँटे थे। केन्द्रीय प्रशासन के साथ स्थानीय शासन व्यवस्था भी थी। ये परिस्थितियाँ आर्थिक प्रगति में सहायक सिद्ध हुई। अलाउद्दीन, शेरशाह सूरी, अकबर ने भूराजस्व प्रणाली को व्यवस्थित बनाया। अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान थी। कृषि के विकास के लिए अलग से कृषि विभाग (दीवाने को ही) की स्थापना, उत्पादकता के हिसाब से भूमि का वर्गीकरण, सिंचाई हेतु नहरों का निर्माण कराया गया।

इस काल में आगरा, पटना, दिल्ली, जौनपुर, हिसार आदि कई नए नगरों का उदय हुआ। इससे कामगार, कारीगर वर्ग को रोजगार के लिए अवसर मिले और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। नए नगर व्यापार-वाणिज्य के केन्द्र के रूप में भी विकसित हुए। तुर्कों के आगमन से भारत में कई नयी तकनीकि भी आई, जैसे चरखा, धुनकी, रहत, कागज, चुम्बकीय कुतुबनुमा, समयसूचक उपकरण, तोपखाना आदि। इसका प्रभाव उद्योग-धंधे एवं व्यापार पर पड़ा। वस्त्र उद्योग, धातु खनन, हथियार निर्माण, कागज निर्माण, इमारती पत्थर का काम, आभूषण निर्माण उस समय के प्रमुख उद्योग धंधे थे। आगरा नील उत्पादन के लिए, सतगाँव रेशमी रजाईयों के लिए, बनारस सोने, चाँदी एवं जड़ी काम के लिए, ढाका मलमल के लिए प्रसिद्ध था।

इस काल में व्यापार-वाणिज्य की खूब उन्नति हुई। व्यापक पैमाने पर नयी सड़कों का निर्माण एवं पुरानी सड़कों की मरम्मत कराया गया। सड़कों के किनारे सराय बनवाये गए। राहगीरों एवं व्यापारियों की सुरक्षा का प्रबंध किया गया। इसका सीधा प्रभाव व्यापार पर पड़ा। देशीय व्यापार के साथ विदेशी व्यापार की स्थिति भी अच्छी थी। यहाँ से सूती एवं रेशमी वस्त्र, चीनी, चावल, आभूषण आदि का निर्यात होता था। देवल अंतर्राष्ट्रीय बंदरगाह के रूप में प्रसिद्ध था।

निस्संदेह मध्यकाल में उद्योग, व्यापार में प्रगति हुई, कृषि में सुधार हुआ। किंतु गाँवों में किसानों की स्थिति अच्छी नहीं थी। लगान और अकाल के कारण उन्हें काफी मुसीबतों का सामना करना पड़ता था। अकाल और भूख से बेहाल किसान की पीड़ा को तुलसी ने व्यक्त किया है- 'कलि बारहि बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै।' उस समय यदि एक वर्ग खुशहाल था तो दूसरा वर्ग भूख, गरीबी, बेकारी से त्रस्त था, तुलसी लिखते हैं-

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीघमान सोच बस,
कहै एक एकन सों 'कहाँ जाई का करी'।।

1.4.3 सामाजिक स्थिति

इस काल में हिंदू समाज वर्णों और जातियों में विभक्त था। सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान था, शूद्रों की निम्न स्थिति थी। जातिगत श्रेष्ठता एवं छुआछूत की भावना तत्कालीन परिवेश में व्याप्त थी। मुसलमानों के आक्रमण एवं उनकी सत्ता स्थापित होने से परंपरागत भारतीय समाज को एक धक्का लगा। सामंतों एवं पुरोहितों की स्थिति कुछ कमजोर हुई। एक तरफ जहाँ परम्परागत सामाजिक संरचनाको बचाये रखने के लिए वर्णाश्रमधर्म की मर्यादा का कठोरता से पालन करने पर जोर दिया गया, वहीं दूसरी तरफ समानता और आपसी भाईचारे पर आधारित इस्लाम के प्रति हिंदू समाज की निचली जातियाँ आकर्षित हुई। बहुतों ने धर्मांतरण कर इस्लाम स्वीकार कर लिया। धर्मांतरण स्वेच्छा में भी हुआ और मुस्लिम शासकों द्वारा बलात् भी कराया गया। ऊँच-नीच की भावना सिर्फ हिंदू समाज में ही नहीं मुस्लिम समाज में भी विद्यमान थी। अफगानी, तुर्की, ईरानी एवं भारतीय मुसलमानों में नस्लगत श्रेष्ठता एवं प्रतिस्पर्धा की भावना थी। मुसलमान शासक भारत में आक्रांता के रूप में आए थे, हिंदुओं में उनके प्रति अलगाव, विरोध, शंका का भाव होना स्वाभाविक था। किंतु दोनों कौमों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान एवं सामंजस्य भी बढ़ रहा था। सूफियों का इस दृष्टि से महत्वपूर्ण योगदान है। मुस्लिम शासकों एवं राजपूत शासकों में वैवाहिक संबंध भी स्थापित हुए।

उस काल में सामान्यतः संयुक्त परिवार का प्रचलन था। तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। हिन्दू समाज में बाल विवाह, बहुपत्नी प्रथा, पर्दा प्रथा, सती प्रथा प्रचलित थी। मुस्लिम समाज में भी स्त्रियों की स्थिति हिंदू स्त्रियों की तरह ही थी। विदेशी यात्रियों के विवरणों से पता चलता है कि उस समय दास प्रथा का भी प्रचलन था।

1.4.4 सांस्कृतिक स्थिति-

संस्कृति किसी देश समाज की मूलभूत प्रवृत्तियों उसकी सौन्दर्यबोधात्मक एवं मूल्यबोधों क्रियाकलापों-उपलब्धियों, उसके आचार-विचार का समन्वित रूप हैं। धर्म, कला, साहित्य, संगीत, शिल्प आदि संस्कृति के विभिन्न तत्व हैं। मध्यकालीन भारतीय समाज

धर्मप्राण समाज है। हिंदू, मुस्लिम, बौद्ध, जैन, सिक्ख उस समय प्रचलित प्रमुख धर्म थे। बहुसंख्यक जनता हिंदू धर्मावलंबी थी। हिंदू धर्म भी शैव, शाक्त, वैष्णव आदि कई संप्रदायों में विभक्त था। इन विभिन्न संप्रदायों में परस्पर संघर्ष एवं सामंजस्य दोनों स्थितियाँ दिखलाई पड़ती हैं। मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, अवतारवाद, बहुदेव उपासना, गौ एवं ब्राह्मण का सम्मान, शास्त्रों के प्रति श्रद्धा, कर्मफलवाद, स्वर्ग-नरक की अवधारणा, आदि हिंदू धर्म एवं समाज की विशेषता थी। पश्चिम भारत में जैनियों की बहुलता थी, बौद्ध धर्म को मानने वाले पूर्वी भारत में ज्यादा थे। बौद्ध धर्म तंत्रयान, मंत्रयान, ब्रजयान आदि शाखाओं में विभक्त था, उसका मूल स्वरूप विकृत हो गया था और वह कई प्रकार की रूढ़ियों, कर्मकाण्डों, अंधविश्वासों का शिकार हो गया था। फलतः उसका पहले जैसा प्रभाव और आकर्षण नहीं रह गया था। सिद्धों और नाथों का तत्कालीन समाज पर गहरा असर था। धर्म का जहाँ तक शास्त्रीय रूप था, वहीं उसका एक लोकवादी रूप भी था स्थानीय देवताओं की पूजा, जादू-टोना आदि इसी के अंतर्गत आता है। मध्यकाल में साधनाओं एवं संप्रदायों की एक बाढ़ सी दिखलाई पड़ती है। धर्म के आवरण में मिथ्याचार, अनाचार, व्यभिचार भी पनप रहा था, धर्मक्षेत्र में एक अराजकता-सी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। इन्हीं परिस्थितियों के बीच भक्ति आंदोलन का उदय और विकास होता है, जिसने भारतीय समाज को काफी गहरे तक प्रभावित किया।

इस काल में साहित्य, कला, वास्तु, संगीत में प्रगति दिखलाई पड़ती है। इस्लामी एवं भारतीय संस्कृति के मेल से कला की नयी शैलियों का जन्म होता है।

1.5 भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप

भक्ति पूर्व-मध्यकालीन साहित्य का मूलभूत तत्व है। आइए हम भक्ति को समझने की कोशिश करते हैं। ईश्वर के प्रति श्रद्धा, प्रेम, समर्पण की भावना ही भक्ति हैं। 'भक्ति' शब्द की निष्पत्ति 'भज्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'भजना'। अर्थात् ईश्वर का चिंतन-मनन, उसके गुणों का श्रवण-कीर्तन, उसकी सेवा करना। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि सांसारिक प्रवृत्तियों का शमन कर ईश्वर के प्रेम में डूबे रहना। भारतीय चिंतन परम्परा में ईश्वर-प्राप्ति, मोक्ष के तीन मार्ग बतलाए गए हैं-कर्म, ज्ञान और भक्ति। कर्म का सम्बन्ध व्रत, तप, जप, तीर्थ यज्ञादि कर्मकाण्डों से जिनका सम्यक् व्यवहार कर मनुष्य ईश्वर के सानिध्य-साक्षात्कार का लाभ प्राप्त करता है। ज्ञान का सम्बन्ध ईश्वर विषयक तत्व-चिंतन से है, इसमें सम्यक ध्यान-समाधि द्वारा व्यक्ति ब्रह्मानंद को प्राप्त करता है। भक्ति विशुद्ध भाव मूलक है, इसके लिए न तो कर्मकाण्ड अपेक्षित है और न ही तत्व-चिंतन। भक्ति मार्गमें ईश्वर के प्रति सच्ची श्रद्धा-समर्पण द्वारा ही मनुष्य मुक्तिपद को प्राप्त करता है। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को 'परम प्रेमरूपा' एवं 'अमृतस्वरूपा' कहा गया है- 'सात्वस्मिन परम प्रेमरूपा, अमृतस्वरूप चा।' तात्पर्य यह है कि ईश्वर के प्रति परम प्रेम जो अमृत के समान फलदायक है, वही भक्ति है। इस भक्ति को प्राप्त करने पर व्यक्ति सांसारिक इच्छाओं और बंधनों से ऊपर उठ जाता है, वह आनंदमग्न, आत्माराम हो जाता है। नारद मुक्ति सूत्र में

कहा गया है- ''उस परम प्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा भक्ति को प्राप्त करके मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है और तृप्त हो जाता है। उस भक्ति को प्राप्त करने के बाद मनुष्य को न किसी भी वस्तु की इच्छा रहती है न वह शोक करता है, न वह द्वेष करता है, न किसी वस्तु में ही आसक्त होता है। उस प्रेमरूपा भक्ति को प्राप्त करे वह प्रेम में उन्मत्त हो जाता है।'' 'शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र' में 'ईश्वर में परम अनुरक्ति' को भक्ति कहा गया है- ''सा परानुक्तिरीश्वरे''। अर्थात् ईश्वर के प्रति अत्यंत गहरी निष्ठा-प्रेम की अनुभूति-अभिव्यक्ति ही भक्ति है। ईश्वर प्राप्ति के जो कर्म, ज्ञान, भक्ति तीन मार्ग बतलाए गए है, इनमें उत्कट राग की उपस्थिति भक्ति मार्ग में ही होती है। ज्ञान एवं कर्म मार्ग में प्रेम को केन्द्रीय महत्व नहीं दिया गया है। भक्ति पर व्यावहारिक लौकिक दृष्टि से विचार करते हुए आचार्य शुक्ल ने श्रद्धा और प्रेम के योग को भक्ति कहा है। भक्ति की व्याख्या करते हुए वह लिखते हैं- ''जब पूजा भाव की बुद्धि के साथ श्रद्धा-भाजन के सामीप्य लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो, तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए। जब श्रद्धेय के दर्शन, श्रवण, कीर्तन, ध्यान आदि में आनंद का अनुभव होने लगे-जब उससे सम्बन्ध रखने वाले श्रद्धा के विषयों के अतिरिक्त बातों की ओर भी मन आकर्षित होने लगे, तब भक्ति रस का संचार समझना चाहिए।'' (चिंतामणि, भाग-1, पृ0 26) स्पष्ट है कि शुक्लजी के मत में भक्ति के लिए ईश्वर के प्रति सिर्फ प्रेम भाव ही नहीं पूज्य भाव भी होना चाहिए, भक्त ईश्वर की महिमा-महत्व से अभिभूत रहता है, वह उन्हें अपना सर्वस्व अर्पित कर, उन्हीं को अपना सर्वस्व मान लेता है।

भक्ति को ईश्वर प्राप्ति का सबसे सुगम माध्यम माना गया है। सहज, साध्य होने के कारण ही आचार्यों ने भक्ति को प्रमुखता दी है-'अन्य स्मात् सौलभ्यं भक्तौ।' शास्त्रों में कहा गया है कि कलियुग में केवल ईश्वर के नामस्मरण द्वारा ही जीव का उद्धार हो जाता है वह परम पद को प्राप्त कर लेता है। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को निष्काम कहा गया है, क्योंकि वह निरोध स्वरूप है। निरोध का अर्थ सांसारिक विषयों-प्रपंचों से विमुख होकर चित्त को पूर्णतया ईश्वरोन्मुख कर देना। भक्त मन, वचन, कर्म से अपना सर्वस्व अर्पित कर प्रभु को भजता है। उसके लिए शास्त्रीय विधि-विधान, लौकिक कर्मों का कोई महत्व नहीं है, भक्ति ज्ञानमूलक, कर्ममूलक न होकर भावमूलक है। नारद भक्ति-सूत्र में कहा गया है- 'वह प्रेमरूपा भक्ति, कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठकर है, क्योंकि वह फलरूपा है अर्थात् उसका कोई अन्य फल नहीं है, वह स्वयं ही फल है।?' भक्ति ही भक्त का चरम लक्ष्य है, वह साधन भी है और साध्य भी। इस भक्ति की प्राप्ति प्रभुकृपा से होती है। भक्ति के लिए प्रभु का गुण श्रवण और कीर्तन-गान अनिवार्य तत्व है। नारद के अनुसार उस परमात्मा की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण समपर्ण और विस्मरण में परम व्यापकता होनी चाहिए- 'नारदस्तु तदर्पिताऽखिला चारिता तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति।' भक्ति के स्वरूप के संदर्भ में नारद ने कहा है- 'प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है- गूंगे के स्वाद की तरह।.....वह प्रेम गुणरहित है, कामनारहित है, प्रतिक्षण बढ़ता रहता है, विच्छेद रहित है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है और अनुभवरूप है। उस प्रेम को प्राप्त करके प्रेमी उस प्रेम को ही देखता है, प्रेम को ही सुनता है, प्रेम का ही वर्णन करता है और प्रेम का ही चिंतन करता है अर्थात् अपनी मन-बुद्धि इंद्रियों से केवल प्रेम का ही अनुभव करता हुआ प्रेममय हो जाता है।' आचार्य शुक्ल के अनुसार भक्ति

सांसारिक व्यक्ति के प्रति भी हो सकती है और ईश्वर के प्रति भी। ईश्वरीय भक्ति की विवेचना करते हुए उन्होंने लिखा है- 'भक्ति का स्थान मानव हृदय है- वहीं श्रद्धा और प्रेम के संयोग से उसका प्रादुर्भाव होता है। अतः मनुष्य की श्रद्धा के जो विषय ऊपर कहे जा चुके हैं, उन्हीं को परमात्मा में अत्यंत विशद रूप में देखकर उसका मन खींचता है और वह उस विशद-रूप विशिष्ट का सीमाप्य चाहता है, उसके हृदय में जो सौन्दर्य का भाव है, जो शील का भाव है, जो उदारता का भाव है, जो शक्ति का भाव है उसे वह अत्यंत पूर्ण रूप में परमात्मा में देखता है और ऐसे पूर्ण पुरूष की भावना से उसका हृदय गदगद हो जाता है और उसका धर्मपथ आनंद से जगमगा उठता है। धर्म-क्षेत्र या व्यवहार पथ में वह अपने मतलब भर ही ईश्वरता से प्रयोजन रखता है। राम, कृष्ण आदि अवतारों में परमात्मा की विशेष कला देख एक हिंदू की सारी शुभ और आनंदमयी वृत्तियाँ उनकी ओर दौड़ पड़ती है, उसके प्रेम, श्रद्धा आदि को बड़ा भारी अवलंब मिल जाता है। उसके सारे जीवन में एक अपूर्व माधुर्य और बल का संचार हो जाता है। उसके सामीप्य का आनंद लेने के लिए कभी वह उनके आलौकिक रूप-सौन्दर्य की भावना करता है, कभी उनकी बाल लीला के चिंतन से विनोद प्राप्त करता है, कभी-धर्म-वंदना करता है-यहाँ तक कि जब जी में आता है, प्रेम से भरा उलाहना भी देता है। यह हृदय द्वारा अर्थात् आनंद अनुभव करते हुए धर्म में प्रवृत्त होने हो सुगम मार्ग है।' (चिंतामणि भाग-1, पृष्ठ 31) भक्ति के इस स्वरूप-प्रकृति के कारण ही शुक्ल जी ने भक्ति को ''धर्म की रसात्मक'' अनुभूति'' कहा है। दरअसल भक्ति ईश्वर के प्रति समर्पण की एक रागयुक्त प्रवृत्ति, अवस्था है। भागवत पुराण में भक्ति के नौ साधनों-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद्सेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, संख्य तथा आत्मनिवेदन या शरणागति का उल्लेख मिलता है। इसे ही नवधा भक्ति कहा गया है। दरअसल ये प्रभु की भक्ति की विभिन्न प्रक्रियाएं हैं। परम्परा में भक्ति के दो रूप बतलाये गए है- गौणी और परा। गौणी भक्ति के अंतर्गत देवपूजा, भजन-सेवा आदि प्रवृत्तियाँ आती है। पराभक्ति को सर्वश्रेष्ठ और सिद्धावस्था का सूचक माना गया है। गौणी भक्ति को साधकर ही भक्त पराभक्ति की अवस्था में पहुँचता है। गौणी भक्ति के भी दो भेद हैं-वैधी और रागानुगा। वैधी भक्ति शास्त्रानुमोदित विधि विधान पर आधारित है औरा रागानुगा भक्ति का आधार प्रेम अथवा राग है। रामागनुगा भक्ति के दो रूप है-संबंध रूपा और कामरूपा। विभिन्न सांसारिक संबंधों-भावों का ईश्वरोन्मुखीकरण ही सम्बधरूपा भक्ति है। भक्त ईश्वर से विभिन्न संबंध-भाव निवेदित-स्थापित कर भक्ति करता है इसके अन्तर्गत पाँच भावों को स्वीकारा गया है-शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और कांत या माधुर्य भाव। कामरूपा भक्ति कांत या माधुर्य भाव की भक्ति है इसके अंतर्गत भक्त प्रणय या दांपत्य भावना से प्रभु की भक्ति करता है।

अब आप भक्ति के तात्विक स्वरूप से परिचित हो चुके है अब हम भक्ति के उदय की पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास करेंगे।

1.6 भक्ति का उदय-

भक्ति की प्रवृत्ति, पद्धति का सम्बन्ध सिर्फ भागवत् धर्म और भक्ति आंदोलन से ही नहीं है। भक्ति का एक क्रमिक विकास होता है। वैसे भक्ति के बीज वेदों में मिलते हैं। विभिन्न प्राकृतिक उपादनों का दैवीकरण, सुख-शांति समृद्धि की कामना से उनकी स्तुति वैदिक ऋचाओं की मूल विशेषता है। ईश्वर की कल्पना, आत्म निवेदन, शरणागत की भावना, दैन्य भाव, श्रद्धा का भाव आदि जो भक्ति की मूलभूत विशेषताएं हैं-ये बातें हमें वैदिक ऋचाओं में भी मिलती हैं। परमात्मा की माता-पिता, बंधु-सखा के रूप में अर्चना की गई है-'प्रभु! तुम्हीं हमारे पिता हो, तुम्हीं हमारी माता हो। हे अनंतज्ञानी! आपसे ही हम आनंद-प्राप्ति की अकांक्षा करते है-

'त्व हि नों पिता वसोत्वं माता शतक्रतो वभूविथ। अद्या ते सुम्नमीमहे (ऋग्वेद 8/98/11)।' पूरी तन्मयता और सर्वस्व सर्मपण की भावना को प्रकट करते हुए ऋग्वेद का ऋषि कहता है-'प्रभो ये हैं तेरे उपासक, तेरे भक्त। ये प्रत्येक स्तवन में, तेरे कीर्तन-गान में ऐसे तन्मय होकर बैठते हैं, जैसे मधुमक्षिकाएँ मधु को चारों ओर से घेर कर बैठ जाती हैं। तेरे अंदर बस जाने की कामना रखने वाले तेरे ये स्तोता अपनी समस्त कामनाओं को तुझे सौंपकर वैसे ही, निश्चिंत हो जाते हैं, जैसे कोई व्यक्ति रथ में निश्चिंत होकर बैठ जाता है।'

इमें हि ब्रह्मकृतः सुते सचा मधो न मक्ष आसते।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः।। (ऋ. 7/32/2)

वेदों मं ईश्वर की सर्वसमर्थता, उसकी महिमा का बखान, उसके प्रति श्रद्धा निवेदित किया गया हैं-

यो भूतं च भव्यं च सर्व श्चाधितिष्ठति
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः (अथर्ववेद-10 /8/1)

अर्थात् भूत भविष्य और वर्तमान का जो स्वामी है, जो समस्त विश्व में व्याप्त हैं तथा जो निर्विकार आनद प्रदान करने वाला है, उस ईश्वर को मेरा प्रणाम।' उपनिषदों में तत्व-चिंतन की प्रधानता है- किंतु कहीं-कहीं पर भक्ति विषयक बातें भी मिलती है। ऐतरेय, श्वेताश्वतरोपनिषद में भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया हैं, कठोपनिषद में कहा गया है- 'यह आत्मा उत्कष्ट शास्त्रीय व्याख्यान के द्वारा उपलब्ध नहीं किया जाता, मेघा के द्वारा प्राप्त, नहीं होता, बहुत पांडित्य के द्वारा भी नहीं प्राप्त होता। यह जिसको वरण करता है, उसी को प्राप्त होता है। जिसके सामने आत्मा अपने स्वरूप को व्यक्त करता है।'

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष विवृणुते तनू, स्वाम।।'

यहाँ प्रभुकृपा का वर्णन है, जो कि भक्ति का आधार है। भगवत्कृपा से ही भक्ति की प्राप्ति होती और भक्ति से ईश्वर की प्राप्ति। भक्ति चिंतन में ईश्वर ही परमतत्व, जगत निर्माता, जगत नियंता, सृष्टि विनाशक है, उसी के द्वारा सृष्टि का सृजन होता है और उसी में सृष्टि विलीन हो

जाती है। छांदोग्य उपनिषद में कहा गया है 'सर्व खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शांत उपासीत।' अर्थात् 'जगत की सभी वस्तुएं ब्रह्म हैं, क्योंकि सभी ब्रह्म से ही उत्पन्न होती हैं, ब्रह्म में ही अवस्थान करती है तथा ब्रह्म में ही विलीन हो जाती है। इस प्रकार चिंतन करते हुए मन को शांत रखकर उपासना करनी चाहिए।' छांदोग्य उपनिषद में ही भक्ति को सबसे उत्कृष्ट और सर्वोत्तम रस कहा गया है- 'स एवं रसानां रसतमः परम परार्धे।

उपनिषदों के बाद भक्ति की प्रबल धारा भागवत धर्म के रूप में प्रकट हुई। भागवत धर्म के प्रवर्तन के साथ ही अवतारवाद की अवधारणा का जन्म हुआ बहुदेवोपासना और लीलागान का प्रचलन हुआ। इसमें ईश्वर को ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज-इन 6 गुणों से युक्त माना गया, जिनके द्वारा वह सृष्टि का निर्माण, भरण-पोषण और संहार करता है। अवतारवाद एवं भक्ति का पुराणों में विस्तृत वर्णन है। इनमें भागवत पुराण मुख्य है। दक्षिण के आलवार नयनार भक्तों ने भक्ति तत्व का प्रचार प्रसार किया, आठवीं सदी में शंकराचार्य के अद्वैत एवं मायावाद के कारण भक्ति का प्रवाह थोड़ा अवरूद्ध होता है। किंतु कालांतर में रामानुजाचार्य, निम्बाकाचार्य, विष्णुस्वामी, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य ने राम-कृष्ण की भक्ति को लोकप्रिय ही नहीं बनाया उसे एक सैद्धांतिक आधार प्रदान कर शास्त्रीय गरिमा भी दी।

इस प्रकार हम देखते है कि भक्ति का तत्व वेद उपनिषद महाभारत, पुराण आदि से होते हुए सतत् प्रवाहमान रहा, निरंतर विकसित होता रहा। भक्ति आंदोलन ने उसे व्यापक और लोकप्रिय बना दिया। अब आप भक्ति के उदय को समझ गए होंगे, वैष्णव आचार्यों द्वारा प्रतिपादित भक्ति विषयक सिद्धांतों एवं भक्ति आंदोलन की आगे चर्चा की जाएगी।

1.7 भक्ति संबंधी विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत

भक्ति के दार्शनिक पक्ष की स्थापना भक्ति आंदोलन की देन है। 8-9वीं सदी में शंकराचार्य दार्शनिक स्तर पर बौद्धों, जैनों से टकराते हैं और वैदिक धर्म को पुनप्रतिष्ठित करते हैं। शंकर का दार्शनिक सिद्धांत अद्वैतवाद कहलाता है। उनके अनुसार ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या। आत्मा परमात्मा दोनों एक हैं, दोनों में कोई भिन्नता नहीं है। किंतु सांसारिक माया के कारण मनुष्य आत्मा-परमात के अद्वैत का अनुभव नहीं कर पाता है। ज्ञान द्वारा ही अपने आत्मस्वरूप को जाना जा सकता है। वह ज्ञान मार्गी हैं और निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं। शंकर के अद्वैतवाद और मायावाद का परवर्ती वैष्णव आचार्यों द्वारा विरोध किया गया, उन्होंने ज्ञान की जगह भक्ति को प्रमुखता दी। शंकर ने माया वाद द्वारा जिस जगत को मिथ्या कहकर, खारिज कर दिया था, उस जगत को इन आचार्यों ने सत्य माना, ब्रह्म का अंश मानते हुए उसे प्रभु की लीला भूमि के रूप में देखा। आइए, अब हम भक्ति विषयक वैष्णव आचार्यों के सिद्धांतों से अवगत हों।

1.7.1 विशिष्टाद्वैतवाद

आचार्य रामानुजाचार्य ने अवतारी राम को उपास्य देव स्वीकार कर विशिष्टाद्वैत सिद्धांत की स्थापना की। उनकी दृष्टि में पुरुषोत्तम ब्रह्म सगुण और सविशेष है। ब्रह्म चित्त और अचित विशिष्ट है। ब्रह्म की तरह जीव और माया भी सत्य है। इस भक्ति मार्ग को श्री संप्रदाय भी कहते है। श्री अर्थात् लक्ष्मी इसकी आदि आचार्य हैं, जीव 'लक्ष्मी' की शरण में जाने से ही सगुण ब्रह्म अर्थात् विष्णु तक पहुँच सकता है। भक्तों पर अनुग्रह के निमित्त ही भगवान अवतार ग्रहण करते हैं। भक्ति ही मुक्ति का साधन है। जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध शेष-शेषी भाव का है। जीव सेवक है ब्रह्म सेव्य। प्रपत्ति या शरणागति ही परमकल्याण का मार्ग है।

जीव, जगत, माया ब्रह्म से भिन्न हेाते हुए भी ब्रह्म के ही अंग है। रामानुज का मत शंकर की अपेक्षा उदार है। उन्होंने भक्ति को जाति भेद से ऊपर मानते हुए सभी मनुष्य की समानता-एकता का प्रतिपादन किया है। इस संप्रदाय का गहरा प्रभाव रामानंद पर पड़ा। गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति भी सेव्य-सेवक भाव की है।

1.7.2 द्वैतवाद

इस मत का प्रवर्तन मध्वाचार्य (12वीं शता0) ने किया। इनके अनुसार जगत सत्य है, ईश्वर और जीव का भेद, जीव का जीव से भेद, जड़ का जीव से भेद वास्तविक है। जीव और जगत परतंत्र है तथा ईश्वर स्वतंत्र। जीवों के बीच ऊँच एवं नींच की तारतम्यता है, यह सांसारिक अवस्था में ही नहीं मोक्ष दशा में भी विद्यमान रहती है। जीव की अपनी वास्तविक सुखानुभूति ही मुक्ति है। जिसे अमला भक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है। समस्त जीव हरि के अनुचर हैं। वेद का समस्त तात्पर्य विष्णु ही है। इस संप्रदाय के आचार्य ब्रह्मा है, अतः इसे ब्रह्म संप्रदाय भी कहते है। रामानुज की तरह मध्वाचार्य भी भक्ति मार्ग में सबकी समानता के पक्षधर थे। इस संप्रदाय में कांत या माधर्य भाव की भक्ति है।

1.7.3 शुद्धाद्वैतवाद

इस संप्रदाय के आचार्य रूद्र है अतः इसे रुद्र संप्रदाय भी कहा गया है। इस संप्रदाय के आचार्य विष्णुस्वामी (13-14वी सदी) के अनुसार ईश्वर सच्चिदानंद स्वरूप है, जो सदैव अपनी संविद् शक्ति से युक्त रहता है और माया उसी के अधीन रहती है। उन्होंने नृसिंह को ईश्वर का प्रधान अवतार माना है। कुछ लोगों के मत में वे नृसिंह और गोपाल दोनों के उपासक थे।

विष्णु स्वामी की शिष्य परंपरा में ही वल्लभाचार्य (15वीं सदी) आते हैं। उन्होंने रूद्र संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धांत 'शुद्धाद्वैत' का प्रवर्तन किया। उनके अनुसार ब्रह्म सर्वथा शुद्ध है। अपनी तीन शक्तियों-संघिनी, संवित तथा आह्लादिनी द्वारा वह क्रमशः सत्, चित् और आनंद का आविर्भाव करता है। ब्रह्म सत्य और नित्य है। उसकी उत्पत्ति नहीं होती। जीव भी नित्य हैं। जीव अणु है और ब्रह्म भूमा। शुद्ध, संसारी और मुक्त-जीव की तीन कोटियाँ हैं। जड़ जगत की उत्पत्ति एवं का विनाश नहीं होता उसका केवल आर्विभाव और तिरोभाव ही होता है। उन्होंने भगवान

के पोषण (अनुग्रह) को ही भक्ति की प्राप्ति का आधार माना है। इसीलिए उनके मत को पुष्टि मार्ग कहा गया। रागानुगा भक्ति ही पुष्टि भक्ति है जो साधन भक्ति से श्रेष्ठ है। श्रीकृष्ण ही परम ब्रह्म, पुरुषोत्तम और रसरूप है। इस संप्रदाय में कृष्ण के बालरूप की साधना को प्रमुखता दी गयी है।

1.7.4 द्वैताद्वैतवाद-

निम्बार्क (11वीं सदी) ने द्वैताद्वैतवाद का प्रवर्तन किया। उनके अनुसार जीव का ब्रह्म के साथ भेद और अभेद दोनों संबंध है। इसका मूल कारण अवस्था भेद है। जीव और ब्रह्म में अंश-अंशी संबंध है। जीव अल्पज्ञ अणु है। जीव ईश्वर का अंश होने से नित्य है। भक्ति ही मुक्ति का साधन है। इस संप्रदाय में राधा-कृष्ण को युगलोपासना को प्रमुखता दी गई है। इस संप्रदाय के आचार्य सनकादि होने से इसे सनकादि संप्रदाय भी कहते है। इस संप्रदाय की भक्ति सख्य भाव की है।

निम्नलिखित तालिका द्वारा उपरोक्त भक्ति विषयक सिद्धांतों को सरलता से याद किया जा सकता है।

दर्शन	**संप्रदाय**	**संस्थापक**	**भक्ति-भाव**
विशिष्टाद्वैतवाद	श्री	रामानुजाचार्य	दास्य
द्वैतवाद	ब्रह्म	मध्वाचार्य	कांत या माधुर्य
शुद्धाद्वैतवाद	रुद्र	विष्णुस्वामी/वल्लभाचार्य	वात्सल्य
द्वैताद्वैतवाद	सनकादि/निम्बार्क	निम्बार्काचार्य	सख्य

1.8 निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार

निर्गुण भक्ति के अंतर्गत संत मत और सूफीमत आता हैं। दोनों भक्ति मार्ग में ईश्वर केा अजन्मा, अशरीरी, अगोचर माना गया है। आइए दोनों भक्ति मार्ग के दार्शनिक आधार का हम अध्ययन करें।

1.8.1 संतकाव्य का दार्शनिक आधार

संतमत का विकास वैष्णव धर्म, सिद्धों, नाथों, सूफी मत, शंकर के अद्वैतवाद से प्रेरणा-प्रभाव ग्रहण कर होता है। वैष्णवों से अहिंसा और प्रपत्ति भावना, सिद्धों-नाथों से जाति-पाति, कर्मकाण्ड, शास्त्र का नकार, काया योग, शून्य समाधि, शंकराचार्य से अद्वैत दर्शन, सूफियों से प्रेमतत्व को लेकर कबीर ने निर्गुण पंथ का प्रवर्तन किया। उन्होंने ब्रह्म को निर्गुण, निराकार, अजन्मा मानते हुए अवतारवाद, बहुदेववाद का खण्डन किया। परमतत्व एक ही है जो

सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक है। जीव अज्ञानता के कारण क्षणभंगुर संसार को सत्य समझ परमात्मा से विमुख रहता है। सद्गुरू की कृपा से व्यक्ति को आत्मज्ञान मिलता है, और ब्रह्मानंद की प्राप्ति होती है। उस परमात्मा की भक्ति के लिए न तो शास्त्रज्ञान अपेक्षित है और न ही बाह्य विधि-विधान। ब्रह्म, माया, जीव, जगत सम्बन्धी संत मत की अवधारणाएं शंकराचार्य से प्रभावित है।

1.8.2 सूफी मत

सूफी मत इस्लाम की ही एक शाखा है जिसका उदय इस्लाम के प्रवर्तन के ढाई-तीन सौ वर्षों बाद होता है। भारत में सूफियों का आगमन 12वीं सदी में माना जाता है। यह एक उदार, सहिष्णु मत है जो इस्लाम की शाखा होते हुए भी उससे बहुत मामलों में भिन्न हैं। 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति कैसे हुई, इस पर विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग इसकी व्युत्पत्ति 'सफ' से मानते है जिसका अर्थ होता है पंक्ति। उनके अनुसार ईश्वर का प्रिय होने के कारण जो लोग कयामत के दिन सबसे पहली पंक्ति में खड़े होंगे, उन्हें सूफी कहते हैं। कुछ के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति 'सूफ' शब्द से हुई, जिसका अर्थ है मस्जिद का चबूतरा। जो फकीर मस्जिद के चबूतरे पर सोकर अपनी रात गुजारते थे, सूफी कहलाए। कुछ लोगों के अनुसार 'सूफ' का अर्थ 'पवित्र' है। 'सूफ' ऊन के भी अर्थ में है। सादा और पवित्रता युक्त जीवन जीने वाले और ऊनी चोंगा पहनने वाले फकीरों को ही सूफी कहा जाने लगा। कुछ के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति 'सोफिया' शब्द से हुई जिसका अर्थ होता है ज्ञान। परमात्मा का ज्ञान रखने वाले फकीरों को सूफी कहा गया। इस प्रकार सूफी शब्द की व्युत्पत्ति सम्बन्धी कई मत है। आचार्य शुक्ल के अनुसार ''प्रारंभ में सूफी एक प्रकार के फकीर या दरवेश थे जो खुदा की राह पर अपना जीवन ले चलते थे, दीनता और नम्रता के बड़ी फटी हालत में दिन बिताते थे, ऊन के कंबल लपेटे रहते थे, भूख-प्यास सहते थे और ईश्वर के प्रेम में लीन रहते थे।'' ('जायसी ग्रंथावली' की भूमिका, पृ0 168)। इस प्रकार सूफी वे फकीर थे जो सांसारिक भोग-विलास से दूर रहकर, सादा एवं त्यागपूर्ण जीवन जीते हुए हमेशा खुदा के ख्वाब-ख्याल में डूबे रहते थे। सूफियों के अनुसार खुदा सारी कायनात में व्याप्त है। उनका मत इस्लामी एकेश्वरवाद की अपेक्षा शंकर के अद्वैतवाद के ज्यादा करीब है। सूफी मत में साधना की चार अवस्थाएँ हैं- (1) शरीअत-अर्थात् शास्त्रानुसार विधि-निषेधों का सम्यक् पालन (2) तरीकत-वाह्य विधि-विधान से परे हटकर हृदय को शुद्ध रखकर ईश्वर का ध्यान। (3) हकीकत-साधना द्वारा तत्व-बोध की अवस्था। (4) मारिफत-आत्मा का परमात्मा में लीन होने की अवस्था, सिद्धावस्था। सूफीमत का मूल तत्व है प्रेम। परमात्मा के प्रेम में पूरी तरह लीन, उन्मुक्त होकर ही प्रेमस्वरूप परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता हैं किंतु यह प्रेम-साधना सरल नहीं, अत्यंत कठिन है। सूफी कवि इश्क मिजाजी (लौकिक प्रेम) के जरिए इश्क हकीकी (अलौकिक) प्रेम का वर्णन करते हैं। उन्होंने परमात्मा को प्रेयसी रूप और आत्मा को प्रेमी रूप में चित्रित किया है। गुरुकृपा से ही परमात्मा का (प्रियतमा के सच्चे रूप का) ज्ञान होता है। प्रियतमा को प्राप्त करने के लिए प्रेमी को ढेर सारी मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। माया या शैतान के कारण विघ्न-बाधाएँ उपस्थिति होती हैं। अन्ततः अपने सच्चे प्रेम के कारण गुरु और परमात्मा की कृपा से उसे सफलता मिलती है।

1.9 भक्ति आंदोलन

भक्ति आंदोलन मध्यकाल की एक महत्वपूर्ण घटना है। एक व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक प्रक्रिया जिसने भारतीय समाज की गहरे तक प्रभावित किया। बुद्ध के बाद का सबसे प्रभावी आंदोलन जो समूचे देश में फैला जिसमें ऊँच-नीच, स्त्री-पुरूष, हिंदू-मुस्लिम सभी की भागीदारी थी। अपने मूल रूप में यद्यपि यह एक धार्मिक आंदोलन था, किंतु सामाजिक रूढ़ियों, सामंती बंधनों के नकार का स्वर, एक सहिष्णु, समावेशी समाज की संकल्पना भी इसमें मौजूद थी। भक्ति काव्य इसी भक्ति आंदोलन की उपज है। आइए हम इसके विविध पक्षों-उदय एवं विकास, उत्पत्ति के कारणों, महत्व एवं प्रदेय की पड़ताल करें-

1.9.1 भक्ति आंदोलन उदय एवं विकास

मध्यकाल में लगभग 3-4 सौ वर्षों तक चलने वाले भक्ति आंदोलन का जन्म सहसा नहीं होता। भक्ति आंदोलन को हम दो भागों में विभक्त कर सकते 6-10 सदी और 10-16 सदी का कालखण्ड। भक्ति के बीज तो वैदिक काल में ही मिलते है। ब्राह्मण, उपनिषद, पुराण से होते हुए क्रमशः भक्ति का विस्तार होता है। और भागवत संप्रदाय के रूप भक्ति को एक व्यापक आयाम मिलता है। एक आंदोलन के रूप में भक्ति को प्रचारित-प्रसारित करने का श्रेय, दक्षिण के अलवार, नयनार भक्तों को है जिनका समय 6-10 सदी तक है। भक्ति आंदोलन का उदय दक्षिण से हुआ और वह क्रमशः उत्तर भारत में फैलता गया। हिन्दी में उक्ति है-'भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानंद/प्रगट करी कबीर ने सप्तद्वीप नवखंड।' दोनों उद्धरणों से विदित होता है कि भक्ति का उदय द्रविड़ देश (तमिलनाडु) में हुआ। एक संस्कृत श्लोक से ज्ञात होता है कि द्रविड़ देश में उदय के पश्चात्, भक्ति का आगे विकास कर्नाटक, फिर महाराष्ट्र में हुआ और उसका पतन गुजरात देश में हुआ, फिर वृंदावन में उसे पुनर्जीवन, उत्कर्ष मिला। हिन्दी की अनुश्रुति में भक्ति को रामानंद द्वारा दक्षिण से उत्तर ले जाने और कबीर द्वारा प्रचारित-प्रसारित किए जाने का स्पष्ट संकेत है। स्पष्ट है कि संस्कृत श्लोक का सम्बद्ध कृष्ण भक्ति से और हिन्दी अनुश्रुति का सम्बन्ध रामभक्ति से है। बहरहाल आलवारों नयनारों का प्रमुख विरोध बौद्ध और जैन धर्म से था। उन दिनों दक्षिण में इन दोनों धर्मों का काफी प्रभाव था, किन्तु अपने मूल स्वरूप को खोकर ये धर्म कर्मकाण्डीय जड़ता और तमाम तरह की विकृतियों के शिकार हो गए थे। ऐसे समय में आलवार (विष्णुभक्त) और नयनार (शिव भक्त) संतों ने जनता के बीच भक्ति को प्रचारित करने का कार्य किया। महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन को ज्ञानदेव, नामदेव ने आगे बढ़ाया। इनकी भक्ति सगुण-निर्गुण के विवादों से परे थी। ज्ञानदेव की भक्ति पर उत्तर भारत के नाथ पंथ का भी गहरा प्रभाव था। आगे चलकर महाराष्ट्र में तुकाराम और गुरु रामदास हुए। आठवीं सदी में शंकराचार्य ने बौद्धधर्म का प्रतिवाद करते हुए वेदों, उपनिषदों की नई व्याख्या कर वैदिक धर्म को पुनः प्रतिष्ठित किया। उनका विरोध अलवार एवं नयनार से भी था। उन्होंने अद्वैतवाद, मायावाद का प्रवर्तन कर ज्ञान को, सर्वोपरि महत्ता दी। शंकराचार्य का विरोध परवर्ती वैष्णव आचार्यों रामानुज, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी, वल्लभाचार्य, निम्बार्क ने किया। ये लोग सगुण ब्रह्म के उपासक और भक्ति द्वारा

मुक्ति को मानने वाले थे। शंकराचार्य जहाँ वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक थे वहीं इन आचार्यों का भक्तिमार्ग भेदभाव रहित था।

रामानुज के शिष्य राघवानंद ने भक्ति को उत्तर भारत में प्रचारित किया। इनके शिष्य रामानंद हुए, जिन्होंने भक्ति मार्ग को और भी उदार बनाकर सगुण-निर्गुण दोनों की उपासना का उपदेश दिया। इनके शिष्यों में सगुण भक्त और निर्गुण संत दोनों हुए। इनके बाहर शिष्य प्रसिद्ध है- रैदास, कबीर, धन्ना, सेना, पीपा, भवानंद, सुखानंद, अनंतानंद, सुरसुरानंद, पद्मावती, सुरसुरी। रामानंद ने रामभक्ति मार्ग को प्रशस्त किया, जिसमें आगे चलकर तुलसीदास हुए। श्री कृष्ण भक्तिमार्ग को वल्लभाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्बार्क, हितहरिवंश, विट्ठलनाथ ने आगे बढ़ाया निर्गुण भक्तिमार्ग में कबीर सर्वोपरि है, उन्होंने, वैष्णव सम्प्रदाय से ही नहीं, सिद्धों, नाथों और महाराष्ट्र के संतज्ञानेश्वर, नामदेव से बहुत कुछ ग्रहण कर निर्गुण पंथ का उत्तर भारत में प्रवर्तन किया।

भारत में इस्लाम के आगमन के साथ सूफी मत का भी प्रवेश हुआ। सूफी मत इस्लाम की रूढ़ियों से मुक्त एक उदारवादी शाखा है। इसके कई संप्रदाय है-चिश्ती, कादिरा, सुहरावर्दी, नक्शबंदी, शत्तारी। भारत में चिश्ती और सुहरावर्दी संप्रदाय का विशेष प्रसार हुआ। हिंदू-मुस्लिम के सांस्कृतिक समन्वयीकरण में सूफी मत काफी सहायक हुआ।

इस प्रकार भक्ति आंदोलन दक्षिण भारत से शुरु होकर समूचे भारत में फैला और शताब्दियों तक जन सामान्य को प्रेरित-प्रभावित करता है। उसका एक अखिल भारतीय स्वरूप था, उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सभी जगहों पर हम इस आंदोलन का प्रसार देखते हैं, सभी वर्ग, जाति, लिंग, समुदाय, संप्रदाय, क्षेत्र की इसमें भूमिका, सहभागिता थी। महाराष्ट्र में ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम, रामदास, गुजरात में नरसी मेहता, राजस्थान में मीरा, दादू दयाल, उत्तर भारत में, कबीर, रामानंद, तुलसी, सूर जायसी, रैदास, पंजाब में गुरु नानक देव, बंगाल में चण्डीदास, चैतन्य, जयदेव असम में शंकरदेव सक्रिय थे। भक्ति आंदोलन में दौरान कई संप्रदायों का जन्म हुआ, जिन्होंने मानववाद के उच्च मूल्यों का प्रसार किया, सामान्य जन-जीवन में स्फूर्ति एवं जागरण का संचार किया।

1.9.2 भक्ति-आंदोलन के उदय के कारण-

भक्ति आंदोलन का उदय मध्यकालीन इतिहास की एक प्रमुख घटना है। इसका उदय अकस्मात नहीं होता है बल्कि बहुत पहले से ही इसके निर्माण की प्रक्रिया चल रही थी, जिसे युगीन परिस्थितियों ने गति प्रदान किया। ग्रियर्सन ने भक्ति आंदोलन को ईसाईयत की देन माना है- उनका यह मत अप्रमाणिक, अतार्किक है। आचार्य शुक्ल ने इसे तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का परिणाम मानते हुए पराजित हिंदू समाज की सहज प्रतिक्रिया माना है, वह लिखते है-'देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने उनके देव-मंदिर गिराए जाते थे, देव, मूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नही कर सकते थे।

ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे न बिना लज्जित हुए सुन सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गये। इतने भारी राजनैतिक उलटफेर के पीछे हिंदू जन समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी-सी छाई रही। अपने पौरुष से हताश लोगों के लिए भगवान की शक्ति और कारण की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 60)। इस प्रकार शुक्ल जी भक्ति आंदोलन के उदय केा इस्लाम के आक्रमण से क्षत-विक्षत, अपने पौरुष से हताश हिन्दू जाति के पराजय बोध से जोड़ते हैं। भक्ति काल के उदय सम्बन्धी शुक्ल जी के मत से असहमति जताते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि-'मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस हिंदी साहित्य का बारह आना वैसा ही होता, जैसा कि आज है।' (हिंदी साहित्य की भूमिका) आचार्य द्विवेदी भक्तिआंदोलन पर इस्लामी आक्रमण का प्रभाव तो स्वीकार करते हैं, किंतु भक्ति आंदोलन को उसकी प्रतिक्रिया नहीं मानते। बहरहाल दोनों आचार्यों के मतों में भिन्नता के बावजूद इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि भक्ति आंदोलन का एक सम्बन्ध इस्लामी आक्रमण से भी है। द्विवेदी जी भक्ति आंदोलन को भारतीय पंरपरा का स्वाभाविक विकास मानते है, इसे उन्होंने शास्त्र और लोक के द्वन्द्व की उपज माना है जिसमें शास्त्र पर लोकशक्ति प्रभावी साबित हुई, और भक्ति आंदोलन का जन्म हुआ। इसके मूल में वह बाहरी कारणों की जगह भीतरी शक्ति की ऊर्जा देखते है-'भारतीय पांडित्य ईसा की एक शताब्दी बाद आचार-विचार और भाषा के क्षेत्रों में स्वभावतः ही लोक की ओर झुक गया था। यदि अगली शताब्दियों में भारतीय इतिहास की अत्यधिक महत्वपूर्ण घटना अर्थात् इस्लाम का प्रमुख विस्तार न भी घटी होती तो भी वह इसी रास्ते जाता। उसके भीतर की शक्ति उसे इसी स्वाभाविक विकास की ओर ठेले जा रही थी।' (हिंदी साहित्य की भूमिका, पृ0-15)। द्विवेदी जी, मध्यकालीन भक्ति साहितय के विकास के लिए बौद्ध धर्म के लोक धर्म में रूपांतरित होने और प्राकृत-अपभ्रंश की श्रृंगार प्रधान कविताओं की प्रतिक्रिया को देखते है। इस संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी का मत उल्लेखनीय है-'अच्छा होगा कि प्रभाव और प्रतिक्रिया दोनों रूपों में इस्लाम की व्याख्या सहज भाव और अकुंठ मन से किया जाए। तब आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी के बीच दिखने वाला यह प्रसिद्ध मतभेद अपने-आप शांत हो जाएगा। भक्ति-काव्य के विकास के पीछे बौद्ध धर्म का लोक मूलक रूप है और प्राकृतों के श्रृंगार काव्य की प्रतिक्रिया है तो इस्लाम के सांस्कृतिक आतंक से बचाव की सजग चेष्टा भी है।' (हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ0-33) वह मध्यकालीन भक्तिकाव्य के उदय में इस्लाम की आक्रामक परिस्थिति का गुणात्मक योगदान स्वीकार करते हैं। भक्ति आंदोलन के उदय के पीछे तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियाँ भी कार्यरत थी, इसका विवेचन के दामोदरन, इरफान हबीब, रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध ने किया है। इस्लामी राज्य की उत्तर भारत में स्थापना और उसकी स्थिरता के कारण व्यापार वाणिज्य का तेजी, से विकास होता है, नये उद्योग-धंधे ही नहीं, स्थापित होते, नए-नए नगरों का भी निर्माण होता है, इसके फलस्वरूप भारत का जो कामगार वर्ग था, जिसमें प्रायः निचली जातियों के लोग अधिक थे की आर्थिक स्थिति में सुधार होता और उनमें एक आत्मसम्मान,

अपनी सम्मानजनक सामाजिक स्थिति को पाने की भावना बलवती होती है। यह अकारण नहीं है कि भक्ति आंदोलन में इन निचली जातियों की भागीदारी सर्वाधिक है। इस्लामी राज्य स्थापित से होने से परम्परागत सामाजिक ढाँचें को एक धक्का लगता है, सामंतों एवं पुरोहितों का प्रभुत्व-प्रभाव कम होता है। कह सकते है भक्ति आंदोलन के उदय में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ सभी अपना योगदान दे रही थी। अत: भक्ति आंदोलन के उदय में कई कारणों का संयुक्त योगदान है।

1.9.3 भक्ति आंदोलन का महत्व-

भक्ति आंदोलन मध्यकाल का एक व्यापक और प्रभावी आंदोलन था, जिसने भारतीय समाज को गहरे स्तर पर प्रभावित किया। इसने एक ओर जहाँ सत्य शील, सदाचार, करूणा, सेवा जैसे उच्च मूल्यों को प्रचारित किया वहीं समाज के दबे-कुचले वर्ग को भक्ति का अधिकारी, बनाकर उनके अंदर आत्मविश्वास का संचार भी किया। भक्ति आंदोलन की प्रगतिशील भूमिका को रेखांकित करते हुए शिवकुमार मिश्र लिखते है-'इस आंदोलन में पहली बार राष्ट्र के एक विशेष भूभाग के निवासी तथा कोटि-कोटि साधारण जन ही शिरकत नहीं करते, समग्र राष्ट्र की शिराओं में इस आंदोलन की ऊर्जा स्पंदित होती है, एक ऐसा जबर्दस्त ज्वार उफनता है कि उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सब मिलकर एक हो जाते है, सब एक दूसरे को प्रेरणा देते है, एक-दूसरे से प्रेरणा लेते है, और मिलजुल कर भक्ति के एक ऐसे विराट नद की सृष्टि करते हैं, उसे प्रवहमान बनाते हैं, जिसमें अवगाहन कर राष्ट्र के कोटि-कोटि साधारण जन सदियों से तप्त अपनी छाती शीतल करते हैं, अपनी आध्यात्मिक तृषा बुझाते हैं, एक नया आत्म् विश्वास, जिंदा रहने की, आत्म सम्मान के साथ जिंदा हरने की शक्ति पाते हैं।' (भक्ति-आंदोलन और भक्तिकाव्य-पृ. 11) भक्ति आंदोलन एक व्यापक लोकजागरण था।

1.10 भक्ति कालीन कविता का उदय-

भक्तिकाव्य भक्ति आंदोलन की उपज है। सबसे पहले हमें निर्गुण पंथ दिखलाई पड़ता हैं, जिनमें कबीर प्रमुख हैं। कबीर रामानंद के शिष्य हैं। कबीर के पहले महाराष्ट्र में नामदेव हिंदी में रचना कर चुके थे, उनमें निर्गुण और सगुण दोनों की उपासना है। कबीर ने निर्गुण पंथ का प्रवर्तन किया। उन पर अद्वैतवाद, वैष्णवी अहिंसावाद, प्रप्रत्तिवाद, सिद्ध, नाथ मत का पूरा प्रभाव था। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर जोर देते हुए, बहुदेववाद, शास्त्रों एवं कर्मकाण्डों का विरोध किया। उनकी भक्ति भावमूलक हैं, जिसकी उपलब्धि सद्गुरू की कृपा से होती है। कबीर की ही परंपरा में रैदास, रज्जब, दादू आदि संत कवि आते हैं। सूफी मत पर आधारित प्रेमाख्यानक काव्य तब प्रकाश में आता है जब भारत में सूफी मत का प्रसार होता हैं। सूफी फकीरों में निजामुद्दीन ओलिया और ख्वाजामुइनुद्दीन चिश्ती प्रमुख हैं। सूफी संत कवियों में कुतुबुन, मंझन, मलिजक मुहम्मद जायसी, उसमान आदि प्रमुख हैं। इन सूफी संतों ने प्रचलित हिंदू कथाओं को, आधार बनाकर ईश्वरीय प्रेम का निरूपण किया है। रामभक्ति की शुरुआत रामानंद से होती है। जिसे चरमोत्कर्ष पर गोस्वामी तुलसीदास ले जाते हैं। उत्तर भारत में कृष्ण

भक्ति का प्रसार वल्लभाचार्य ने किया। पुष्टिमार्गी अष्टछाप के कवियों ने कृष्णकाव्य का प्रणयन किया इनमें सूरदास और नंददास प्रमुख है। अष्टछाप कवियों के पूर्व संस्कृत में जयदेव और मैथिल में विद्यापति ने कृष्ण काव्य की रचना की थी। आगे की इकाई में भक्ति काव्य की विभिन्न शाखाओं के उद्भव एवं विकास का विस्तृत विवेचन किया जाएगा।

अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आलवर भक्तों में महिला भक्त थीं?
2. द्वैताद्वैत का प्रवर्तन किसने किया?
3. शंकराचार्य के अद्वैतवाद का विरोध करने वाले प्रथम वैष्णव आचार्य हैं?
4. गुजरात के प्रमुख भक्त कवि हैं?
5. नवधा भक्ति का उल्लेख किस ग्रंथ में हैं?
6. भक्ति आंदोलन को ईसाईयत की देन किसने माना है?
7. भक्ति आंदोलन को भारतीय परंपवरा का स्वाभाविक विकास किस आलोचक ने माना है?
8. नामदेव की भक्ति किस प्रकार हैं?

1.11 सारांश

हिंदी साहित्य का पूर्वमध्यकाल (14वीं सदी के मध्य से 17वीं सदी के मध्य तक) के साहित्य की मूल संवेदना भक्ति होने के कारण भक्तिकाल कहा गया। भक्ति के आदि बीज वेदों में मिलते हैं, ब्राह्मण, ग्रंथों, उपनिषद, पुराणों से होते हुए भागवत धर्म में भक्ति को व्यापक आयाम मिलता है। कालांतर में वैष्णव आचार्यों रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्क, मध्वाचार्य ने भक्ति को दार्शनिक आयाम देते हुए भक्ति मार्ग को उदार बनाया। दक्षिण के आलवार भक्तों ने राम, कृष्ण की उपासना पर जोर दिया और दक्षिण भारत में एक आंदोलन की तरह भक्ति आंदोलन का प्रचार किया। दक्षिण से भक्ति आंदोलन का प्रसार उत्तर भारत में होता है रामानंद, वल्लभाचार्य के माध्यम से। भक्ति आंदोलन एक व्यापक आंदोलन था जिसमें सभी वर्ग, जाति, क्षेत्र, भाषा की भूमिका थी। मूलतः धार्मिक आंदोलन होते हुए भी भक्ति आंदोलन का एक सामाजिक आयाम भी है। तत्कालीन राजनीति, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ और पहले चली आ रही लोकपरम्परा, भक्ति आंदोलन के उदय का कारण बनती है। भक्ति काव्य इसी आंदोलन की उपज है। इसी की कोख से, संत काव्य, सूफी प्रेमाख्यान काव्य, रामकाव्य, कृष्ण भक्ति काव्य का जन्म होता है। जिसे कबीर, जायसी, सूर, तुलसी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचाते हैं।

1.12 शब्दावली

(1) अवतारवाद- वैष्णव संप्रदाय में ईश्वर के अवतार की कल्पना की गई। ईश्वर धर्म और धरा की रक्षा के लिए धरती पर जन्म लेता है। विभिन्न शास्त्रों में अवतारों की संख्या भिन्न-भिन्न है, कहीं 7, कहीं 10 कहीं 24 अवतारों का उल्लेख मिलता है। राम और कृष्ण प्रमुख अवतार है, जिनकी भक्ति का मध्यकालीन भक्ति काव्य में वर्णन मिलता है।

(2) प्रपत्ति भावना- प्रपत्ति का अर्थ है शरणागति। प्रभु के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पित कर देना। प्रपत्ति को भक्ति का प्रमुख साधन माना गया हैं।

(3) अनात्मवाद- भारतीय चिंतन परंपरा में आत्मा सम्बन्धी दो विचारधारा है- आत्मवाद और अनात्मवाद या नैरात्म्यवाद। आत्मवाद के अनुसार आत्मा नित्य, अजर-अमर, चेतन है। हिंद-धर्म-दर्शन आत्मवादी है। अनात्मवाद के अनुसार या तो आत्मा है ही नहीं और यदि है तो वह नश्वर और परिवर्तनशील है।

(4) मायावाद- शंकराचार्य के अनुसार आत्मा, परमात्मा दोनों में अद्वैत संबंध है। किंतु माया के कारण मनुष्य दोनों की अद्वैतता का अनुभव नहीं कर पाता। माया के कारण ही मनुष्य सांसारिक प्रपंचों और जगत केा सत्य मान परमात्मा से विमुख रहता है। इस माया के नाश द्वारा ही मनुष्य को परमपद की प्राप्ति हो सकती है। माया के बंधनों से मुक्ति ज्ञान से होती है।

(5) बहुदेवोपासना- बहुदेववाद हिंदू धर्म की विशेषता है। हिंदू धर्म में ईश्वर के कई रूपों की मान्यता है। दअसल बहुदेववाद अवतारवाद की देन है।

(6) नवधाभक्ति-भागवत पुराण में भक्ति के नौ साधनों का उल्लेख है। ये नौ साधन हैं-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, संख्य, आत्मनिवेदन। यही नवधा भक्ति है।

1.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अंडाल
2. निम्बार्क
3. रामानुजाचार्य
4. 'नरसी मेहता
5. भागवत पुराण
6. ग्रियर्सन
7. हजारी प्रसाद द्विवेदी
8. सगुण-निर्गुण

1.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - सूर साहित्य, राजकमल प्रकाशन।
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन।
3. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन।
4. शुक्ल, रामचंद्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।
5. मिश्र, शिव कुमार- भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन।

1.15 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं0 नगेंद्र
3. भारतीय चिंतन परम्परा - के0 दामोदरन
4. हिन्दी साहित्य कोश-भाग-1 - सं0 धीरेन्द्र वर्मा
5. भक्ति आंदोलन के सामाजिक आधार - सं0 गोपेश्वर सिंह
6. भक्ति काव्य का समाज दर्शन - प्रेमशंकर

1.16 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) भक्ति विषयक वैष्णव आचार्यों के मतों का परिचय दीजिए?

(2) भक्ति आंदोलन के उदय एवं विकास पर प्रकाश डालिए?

(3) 'अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी हिन्दी साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।' इस कथन का आशय स्पष्ट करते हुए भक्ति आंदोलन के उदय के कारणों की व्याख्या कीजिए।

(4) भक्ति आंदोलन की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 2 भक्तिकालीन कविता: प्रक्रिया एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 भक्ति काव्य का वर्गीकरण
2.4 भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ
2.4.1 निर्गुण भक्ति काव्य की विशेषताएँ
2.4.2 सगुण भक्ति काव्य की विशेषताएँ
2.5 भक्ति काव्य: प्रक्रिया एवं विकास
2.5.1 संत काव्य
2.5.2 प्रेममार्गी सूफी काव्य
2.5.3 राम भक्ति काव्य
2.5.4 कृष्ण भक्ति काव्य
2.6 भक्ति काव्य का महत्व
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में भक्ति कालीन कविता के वर्गीकरण, सगुण-निर्गुण भक्ति काव्य की विशेषताओं, भक्तिकाव्य की विभिन्न धाराओं की परम्परा और विकास, भक्ति काव्य की उपलब्धि इत्यादि की चर्चा की जाएगी। ब्रह्म के स्वरूप के आधार पर सगुण-निर्गुण शाखा में विभक्त भक्तिकाव्य का चार शाखाओं-संत काव्य, प्रेममार्गी, सूफी काव्य, राम भक्ति काव्य, कृष्ण भक्ति काव्य के रूप में विकास होता है। भक्ति के आधार और प्रक्रिया में भिन्नता के बावजूद इन शाखाओं में एक गहरी समानता भी है। उपास्य के प्रति उत्कट राग अर्थात् भक्ति, नैतिक जीवन पद्धति, उच्चकोटि की मनुष्यता, साधना और काव्य का लोकोन्मुख रूप पूरे भक्ति काव्य की सामान्य विशेषता है। सौन्दर्य बोधात्मक एवं मूल्यबोधात्मक दोनों दृष्टि से भक्तिकाव्य की उपलब्धियाँ सराहनीय है। इस इकाई में इन्हीं बातों पर प्रकाश डाला जाएगा।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

- भक्तिकाव्य के विभाजन, उसकी विविध शाखाओं से अवगत हो सकेंगे।
- भक्तिकाव्य की क्या विशेषताएँ रही हैं? सगुण-निर्गुण भक्ति काव्य में समानता-असमानता क्या हैं? इन प्रश्नों का उत्तर पा सकेंगे?
- भक्ति काव्य की विभिन्न शाखाओं की प्रक्रिया और विकास की व्याख्या कर सकेंगे।
- भक्ति काव्य के महत्व को समझ सकेंगे।

2.3 भक्ति काव्य का वर्गीकरण

भक्तिकाव्य की दो धाराएँ हैं निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति काव्य। निर्गुण भक्ति काव्य और सगुण भक्ति में मुख्य अंतर भक्ति के आधार को लेकर है। निर्गुण शाखा में भक्ति का अवलंब अगोचर, अजन्मा, अशरीरी, इंदियातीत, अगम्य, निराकार, परमेश्वर है, जबकि सगुण शाखा में उपास्य गोचर, साकार, शरीरी है, वह अवतरित होता है। डॉ0 नगेंद्र द्वारा संपादित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी निर्गुण भक्ति, सगुण भक्ति का साम्य-वैषम्य उद्घाटित करते हुए लिखते हैं- 'सगुण भक्ति में जहाँ लीलावतार को आराध्य स्वीकार किया गया हैं, वहीं निर्गुण भक्ति में ब्रह्ममानुभूति को स्थान दिया गया है। सगुण भक्ति में जहाँ भगवद्ग्रह का भरोसा होता हैं, वहीं निर्गुण भक्ति में आत्मविश्वास का बल रहता है। सगुण भक्ति जहाँ बाह्य लालित्य की महिमा से मंडित है, वही निर्गुण भक्ति अंतः सौन्दर्य की गरिमा से दीप्त। सगुण भक्ति जहाँ साकार तथा सविशेष के प्रति होती है, वहीं निर्गुण भक्ति निराकार और निर्विशेष के प्रति। सगुण भक्ति में जहाँ स्वकीया तथा परकीया दोनों भावों का समावेश है, वहीं निर्गुण भक्ति में शक्तिरूपा नारी के प्रति निष्ठावान रहते हुए भी उसके रमणी रूप अथवा परकीया

भाव के प्रति आकर्षण का अभाव है। सगुण भक्ति में जहाँ किसी देव लोक की कल्पना की गयी हैं, वहीं निर्गुण भक्ति में विश्वात्मा प्रभु के विश्वव्यापी अस्तित्व में आस्था प्रकट की गयी है। सगुण भक्त के लिए जहाँ भगवान का उपयुक्त धाम भक्त का हृदय है, वहीं निर्गुण भक्त के लिए अभेदमूलक दृष्टि द्वारा आत्मसाक्षात्कार का महत्व है। निर्गुण भक्त सत्य के शोधक हैं, भक्ति अथवा ऐश्वर्य के आराधक नहीं। मोक्षकामी निर्गुण भक्त संसार को सत्कर्मों द्वारा स्वर्ग बनाना चाहते हैं, वे किसी काल्पनिक 'परलोक' के अभिलाषी नहीं। सगुण और निर्गुण भक्त दोनों ही उपासना-भेद से वैष्णव हैं। निर्गुण भक्त जहाँ नारायण की उपासना करता है, वहीं सगुण भक्त विष्णु के लीलावतारों की भक्ति। सगुण भक्ति में लीला का महात्म्य है और निर्गुण भक्ति में लय का महत्व। सगुण भक्त जहाँ वर्णव्यवस्था के आलोचक नहीं, वहीं निर्गुण भक्त उसके तीव्र विरोध तक जान पड़ते हैं। परंतु प्रेमा भक्ति दोनों को स्वीकार्य है।..... वास्तव में सगुण-निर्गुण का भेद जितना स्तर जन्य है उतना वर्गगत नहीं।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 101-102) इस प्रकार हम देखते है कि सगुण भक्ति एवं निर्गुण भक्ति में मूल अंतर ईश्वर की परिकल्पना की भिन्नता के कारण है। इससे दोनों काव्य की विषय वस्तु, जीवन-जगत संबंधी उनके दृष्टिकोण में अंतर दिखलाई पड़ता है। निर्गुण भक्ति काव्य दो वर्गों में विभक्त है- ज्ञानाश्रयी शाखा (संतकाव्य) और प्रेमाश्रयी शाखा (सूफी प्रेमाख्यानक काव्य)। संत मत में ब्रह्म ज्ञान को प्रमुखता दी गई है, जबकि प्रेममार्गी सूफी काव्य में तीव्र प्रेमानुभूति का महत्व है। सगुण भक्ति काव्य विष्णु के अवतारों के आधार पर दो धाराओं में विकसित होता है। राम, कृष्ण विष्णु के प्रमुख आधार है, भक्ति आंदोलन के दौरान इन दो अवतारों की भक्ति का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। इस तरह सगुण भक्ति काव्य के भी दो रूप हैं-राम भक्ति काव्य और कृष्ण भक्ति काव्य। भक्ति काव्य की विभिन्न शाखाओं को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं-

2.4 भक्तिकाव्य की सामान्य विशेषताएँ

भक्ति काव्य हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है। गुण एवं परिमाण, उदात्त भाव-भूमि एवं प्रभावी अभिव्यक्ति प्रेरक आदर्शों-मूल्यों की उपस्थिति, मानवीयता का उच्च धरातल, युगबोध, लोकोन्मुखता इत्यादि सभी दृष्टियों से यह काव्य एक प्रतिमान की तरह दिखलाई पड़ता है। अपने इन्हीं गुणों के कारण ही भक्तिकाव्य भारतीय समाज का पथप्रदर्शक रहा है, उसे आध्यात्मिक तृप्ति और रसानुभूति कराता रहा है। इस भक्ति काव्य की चार शाखाएँ है-संत काव्य, प्रेम मार्गी सूफी काव्य, राम भक्ति काव्य, कृष्ण भक्ति काव्य। इन चारों शाखाओं का अपना-अपना निजी वैशिष्ट्य है, अपनी विशेष प्रवृत्ति है। किन्तु कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ, विशेषताएँ भी है जो समूचे भक्तिकाव्य में दिखलाई पड़ती है। निर्गुण भक्ति काव्य, सगुण भक्ति काव्य और इनकी विभिन्न शाखाओं का एक समान धरातल है, और वह धरातल है भक्ति। सबमें ईश्वर के प्रति उत्कट राग, अनन्य, निष्ठा, सत्य-शील-सदाचार युक्त जीवन पर जोर, संसार में रहते हुए सांसारिक प्रपंचों, माया-मोह के बंधनों से असंपृक्त-उदासीन रहने का उपदेश, मानुष सत्य को प्रमुखता, शास्त्रों-कर्मकाण्डों से मुक्त भाव भगति पर बल, गुरु महिमा का बखान, अहं का पूर्ण-विगलन, लोक सम्पृक्ति मिलती है। आइए भक्ति काव्य के विशेषताओं की हम चर्चा करें।

(1) ईश्वर के उत्कट प्रेम एवं अनन्य निष्ठा- ईश्वर के प्रति उत्कट राग, अनन्य निष्ठा, सर्वस्व समर्पण की भावना भक्ति काव्य की सभी धाराओं में विद्यमान है। सभी भक्त कवि भगवत्प्रेम में पूर्णतया अनुरक्त, विह्वल दिखलाई पड़ते है। कबीर प्रियतम परमात्मा के विरह में व्याकुल होकर कहते हैं-

आँखड़ियाँ झाँई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़याँ, राम पुकारि पुकारि।

सूफी काव्य में तो 'प्रेम तत्व' को ही सर्वाधिक महत्ता दी गई हैं। मीरा गिरधर गोपाल को अपना सर्वस्व मान, उनके प्रेम में बावरी हो उठती है- हे री मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दरद न जाने कोई।' सूर की गोपियाँ कृष्ण के प्रति इतना समर्पित हैं कि वे उद्धव के मुक्ति रूपी मणि के प्रलोभन को ठुकराकर कृष्ण की विहाग्नि में तपना स्वीकार करती हैं। उद्धव के लाख समझाने-बुझाने के बावजूद गोपियाँ के प्रेम पर कोई असर नहीं होता, हरि तो उनके लिए 'हारिल की लकड़ी' के समान हैं। तुलसी के तो एकमात्र बल, एकमात्र भरोसा उनके प्रभु राम हैं-

एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।
एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास।।

(2) अहं का विगलन-भक्त कवि परमात्मा के पास अपने अहं को पूर्णतया विसर्जित करके जाते हैं। प्रभु के समक्ष उनका अपना कोई अस्तित्व नहीं, प्रभु की सेवा, उनका सेवक बनने में ही वे अपनी सार्थकता देखते हैं। कबीर अपने को 'राम का गुलाम', 'राम का कुत्ता' कहते है।

सूर का कहना है-

'सब कोउ कहत गुलाम श्याम को सुनत सिरात हिये।'

तुलसी कहते हैं-

राम सो बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो?
राम सो खरो है कौन, मोसों कौन खोटो?'

(3) सांसारिक विषय-वासनाओं के प्रति उदासीनता- भक्त कवि प्रभु भक्ति में सबसे बड़ी बाधा माया-मोह को मानते हैं। माया-मोह के बंधन में फँसकर मनुष्य जीवन, जगत को सत्य, शाश्वत मानकर सांसारिकता में लिप्त और परमात्मा से विमुख रहता है। भक्त कवियों के यहाँ सांसारिक विषय-वासनाओं को निस्सार माना गया है, उनसे अलिप्त रहने का उपदेश दिया गया है। यह निर्वेद का भाव कबीर, सूर, तुलसी, जायसी सभी के यहाँ मिलता है। जीवन की क्षण भंगुरता की ओर ईशारा करते हुए कबीर कहते है-

माली आवत देखिकै कालियाँ करीं पुकार।
फूली-फूली चुनि लई, काल्हि हमारी बारि।।

जिस शरीर और जीवन को मनुष्य ने सत्य समझ लिया है उसकी वास्तविकता क्या है, इसे बतलाते हुए सूर ने लिखा है-

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहैं।।

(4) गुरु महिमा- गुरु की महत्ता निर्गुण, सगुण दोनों भक्त कवियों ने स्वीकार की है। दरअसल गुरु ही सत्य का बोध कराता है, मनुष्य को ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बतलाता है। वह पथ प्रदर्शक हैं, सच्चा हितैषी है। इसीलिए कबीर ने गुरु को भगवान से भी ऊँचा दर्जा दिया है।

गुरु गोविंद दोउ खड़े काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय।।

मानस में तुलसी गुरु की वंदना करते हुए लिखते है-

'बंदौ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि।'

(5) नामस्मरण का महत्व- भक्त कवियों ने पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ प्रभु का नाम जपने को भक्ति का सबसे सरलतम रूप माना है। मात्र नाम-स्मरण से मनुष्य प्रभु की कृपा का पात्र बन जाता, भव-बंधन से मुक्त हो जाता है। इसीलिए राम-नाम को तत्व मानते हुए कबीर ने कहा है- 'कबीर सुमिरण सार है और सकल जंजाल।' नाम की महिमा का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है-

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह।।

नाम स्मरण को प्रमुखता देकर भक्त कवियों ने भक्ति को शास्त्रों और कर्मकाण्डों को जकड़बंदी से मुक्त कर दिया उसे सरल और लोकग्राह्य बना दिया।

(6) संतों के प्रति श्रद्धा एवं सत्संग पर बल- भक्ति काव्य में पवित्रतायुक्त सीधा-सरल जीवन जीने वाले परमात्मा की भक्ति में लीन, सांसारिकता से उदासीन साधु पुरुषों के प्रति असीम श्रद्धा-सम्मान प्रकट किया गया है। रैदास लिखते हैं वह गाँव, स्थान, कुल, घर-परिवार धन्य है जहाँ साधु पुरुष का जन्म होता है-

जिहि कुल साधु बैस्नौ होइ।
बरन अबरन रंक नहिं ईसुर, बिमल बासु जानीअै जीग सोइ।।

× × ×

होई पुनीत भगवंत भजन ते आपु तारि तारै कुल दोइ।
धनिसो गाउँ, धनि सो ठाउँ, धनि पुनीत कुटुम सब लोइ।।

जिस प्रकार पुष्प के सम्पर्क से सब अंग समान रूप से सुवासित होते हैं, उसी तरह संतों की संग भी होता है, तुलसी के अनुसार-

बंदहु संत समान चित हित अनहित नहिं दोय।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोय।।

(7) सत्य-शील-सदाचार युक्त जीवन जीने का उपदेश- भक्त कवियों ने जीवन को धर्मानुसार अर्थात् सत्य-शील सदाचार का सम्यक पालन करते हुए प्रभु के प्रति समर्पित जीवन जीने का उपदेश दिया है। समस्त सृष्टि को प्रभु की अभिव्यक्ति मानकर सभी के प्रति कल्याण की भावन एवं कर्म होना चाहिए। ये कवि स्वार्थ की जगह परमार्थ, संग्रह की जगह त्याग, भोग की जगह भक्ति को महत्व देने वाली जीवन-पद्धति के प्रचारक-प्रसारक हैं।

(8) मानवतावादी दृष्टि- भक्त कवियों ने भक्तिमार्ग में सभी मनुष्यों को समान मानते हुए, वर्गगत, वर्णगत भेद भाव का विरोध किया है। सभी मनुष्य परमात्मा के अंश हैं, चाहे ब्राह्मण हो या शूद्र, राजा हो या रंक-सबमें उसी परमात्मा का वास है। 'जाति-पाति पूछै न कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।' भक्ति काव्य का मूलमंत्र है। मनुष्य सत्य को भक्ति आंदोलन के दौरान सर्वप्रमुखता दी गई, बंग्ला के भक्त कवि चण्डीदास ने कहा है-

शुनह मानुष भाई
शबार ऊपरे मानुष शतो
ताहार ऊपरे नाई।

कबीर अत्यंत तीखे ढंग से जाति-पाँतिगत भेद-भाव का विरोध करते हैं। यद्यपि तुलसी के यहाँ वर्णाश्रमधर्म के प्रति एक आस्था है, किंतु उन्होंने भी सभी मनुष्यों को समान माना है- तभी तो वह कहते हैं-'सिया राम मय सब जग जानी करहु प्रनाम जोरि जुग पानि।' दरअसल भक्त कवि परस्पर राग-विश्वास पर आधारित एक उदार और मानवीय समाज के अभिलाषी है।

(9) लोकोन्मुखता- गहरी लोक सम्पृक्ति भक्त कवियों की विशेषता है। वे जन सामान्य के बीच से आए थे और उन्हीं के बीच रहकर काव्य रचना की। उन्होंने धर्म और भक्ति को सहज-सरज रूप देकर लोक ग्राह्य बनाया। 'नाम स्मरण' को प्राथमिकता देने वाली उनकी भक्ति साधन विहीन और निरक्षर जनता जो शास्त्रोक्त कर्मकाण्डों को सम्पन्न करने तथा शास्त्रों का अध्ययन-मनन करने में असमर्थ थी, के लिए अत्यंत सुगम थी। यही नहीं सदियों से उपेक्षित-वंचित वर्ग को भक्ति का अधिकारी घोषित कर उन्होंने भक्तिमार्ग को अत्यंत उदार और मानवीय बना दिया। रागमूलक जिस भक्ति का कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा ने प्रचार किया उससे जनसामान्य केा आध्यात्मिक तृप्ति ही नहीं मिलती है, उसके जीवन में एक सरसता का संचार भी होता है, उसे शक्ति एवं स्फूर्ति मिलती है। भक्ति काव्य लोक मंगलकारी है। यही नहीं लोक संस्कृति एवं लोक परिवेश का भी इन रचनाओं जीवंत चित्रण हुआ। जायसी के 'पद्मावत' में अवध की लोक संस्कृति और सूर के यहाँ ब्रज की लोक संस्कृति सजीव हो उठी है। भक्त कवि अपनी बात को प्रकट करने के लिए उस समय की प्रचलित लोक भाषाओं का आश्रय लेते हैं, लोक से ही

उपमानों, बिम्बों, प्रतीकों का चुनाव करते हुए सहज-सरस शैली में अपनी बात रखते हैं। वास्तव में भक्ति काव्य लोक भाषा में रचित और लोक को संबोधित कविता है। सामंती अभिजात्य और रूढ़ियों को नकार यहाँ लोक की प्रतिष्ठा हुई है। अपनी लोक धर्मी चेतना के कारण ही भक्ति काव्य इतना सरस और प्रभावी बन पड़ा है।

इस प्रकार हम देखते है कि विभिन्न धाराओं में विकसित होने वाले भक्ति काव्य की कुछ आधारभूत विशेषताएं हैं जो सभी धाराओं में समान रूप से दिखलाई पड़ती है। अब आगे हम निर्गुण भक्ति काव्य और सगुण भक्तिकाव्य की विशेषताओं की चर्चा करेंगे।

2.4.1 निर्गुण भक्तिकाव्य की विशेषताएँ

निर्गुण अर्थात् गुणातीत, निराकार, अशरीरी, अजन्मा, अव्यक्त, इन्द्रियातीत ब्रह्म की उपासना को लेकर चलने वाले भक्ति मार्ग को निर्गुण भक्ति मार्ग और उसके साहित्य को निर्गुण भक्ति काव्य कहा गया है। कबीर, रैदास, दादू, कुतुबन, मंझन, जायसी आदि इस धारा के प्रमुख कवि हैं। निर्गुण भक्ति मार्ग भी दो भागों में विभक्त है- ज्ञानश्रयी शाखा अथवा संत काव्य और प्रेमाश्रयी शाखा अथवा प्रेममार्गी सूफी काव्य। एक में ब्रह्मज्ञान, तत्वचिंतन को प्रमुखता दी गयी तो दूसरे में तीव्र प्रेमानुभूति को। आईये हम निर्गुण भक्ति काव्य की विशेषताओं को देखते हैं-

(1) निर्गुण ब्रह्म की उपासना- निर्गुण भक्ति मार्ग में ईश्वर को साकार और अवतारी न मानकर निराकार, अजन्मा माना गया है। परम तत्व एक हैं, वहीं जगत का नियंता, जगत का स्वामी है। ब्रह्म को निर्गुण कहने का अभिप्राय उसकी गुणहीनता से नहीं है। निर्गुण का अर्थ है 'गुणातीत'। वह परमात्मा गुणों से परे है। उसका कोई स्वरूप कोई आकार-प्रकार नहीं। वह इंद्रियातीत परमेश्वर अनिर्वचनीय है, अज्ञेय है। निर्गुण भक्ति मार्ग में अवतारवाद और बहुदेववाद का खण्डन, निर्गुण ब्रह्म की संकल्पना के कारण ही है। उस निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति, ब्रह्ममानंद की अनुभूति भक्ति द्वारा ही संभव है। कबीर ने अपनी भक्ति भावना को प्रकट करने के लिए दांपत्य रूपकों को सहारा लिया है। वह राम को अपना 'भरतार' और अपने को उनकी 'बहुरिया' मानते है। जायसी ने इश्कमिजाजी में इश्क हकीकी को दिखलाया है। कहने का तात्पर्य यह है कि निर्गुण कवि लौकिक प्रेम सम्बन्धों का सहारा लेकर ईश्वरीय प्रेम को प्रकट करते है। यद्यपि संतमत में तत्वबोध का महत्व है जो सद्गुरु की कृपा से लब्ध होता है, किंतु संत कवियों ने भी परमात्मा को प्राप्त करने के लिए उत्कट राग, अनन्य निष्ठा को ही सर्वाधिक महत्व दिया है।

(2) **धार्मिक सामाजिक रूढ़ियों का विरोध-** निर्गुण भक्ति मार्ग में शास्त्रीय विधि-विधान कर्मकाण्ड, बाह्याचार, अंधविश्वास, ऊँच-नीच के भेद का विरोध मिलता है। धार्मिक-सामाजिक रूढ़ियों-कट्टरताओं से मुक्त जिस भक्ति का निर्गुण कवियों ने प्रतिपादन किया है वह बाध्याचारमूलक न होकर भावमूलक है, आंतरिक है। इस भक्ति के लिए शास्त्र

ज्ञान भी अपेक्षित नहीं है। निष्कलुष मन-हृदय से परमात्मा के प्रति सच्ची निष्ठा सच्चा और निष्काम प्रेम ही इस भक्ति का आधार है।

(3) **मानव-मात्र की एकता-** समता का प्रतिपादन-निर्गुण कवि ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-मुस्लिम के भेद को नहीं मानते। उनकी दृष्टि में सभी मनुष्य समान है, क्योंकि एक ही परमात्मा के अंश हैं। कबीर कहते हैं- 'एक जोति थैं सब उपजा कौन ब्राहमन कौन सूदा।' दरअसल निर्गुण भक्ति मार्ग जाति-संप्रदाय के भेदों से परे है। यहाँ राम-रहीम को एक माना गया है। मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखा गया है, ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-मुसलमान के रूप में नहीं। सूफी कवि जायसी, मंझन, कुतुबन ने लोकप्रचलित, हिंदू-कथाओं को आधार बनाकर अपना काव्य सृजन किया है जो उनकी उदार दृष्टि का परिचायक हैं। इससे हिन्दू-मुस्लिम की भावात्मक एकता का पथ प्रशस्त हुआ।

(4) **रहस्यवाद-** रहस्यवाद निर्गुण भक्ति काव्य की एक मुख्य विशेषता है। दरअसल रहस्यवाद कोई विचारधारा नहीं, यह एक अनुभूति है, जिसकी विशेषता है- अगम्य, अगोचर, अज्ञेय, अनिर्वचनीय ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा, उसके अस्तित्व में विश्वास, समूची सृष्टि में उसी परमतत्व की व्याप्ति देखना, उससे रागात्मक सम्बन्ध जोड़ना और अन्ततः एकात्म की अनुभूति। इस प्रकार रहस्यवाद के अंतर्गत अगोचर ब्रह्म अनुभूति के दायरे में आता है। आचार्य शुक्ल ने जायसी के रहस्यवाद का विवेचन करते हुए रहस्यवाद के दो भेद किए हैं-साधनात्मक रहस्यवाद और भावात्मक रहस्यवाद। तंत्र-मंत्र, योगादि द्वारा ब्रह्म की सत्ता का साक्षात्कार और ब्रह्मानंद की अनुभूति साधनात्मक रहस्यवाद के अंतर्गत आता है। तीव्र-गहन प्रेमानुभूति की स्थिति, परमात्मा से रागात्मक सम्बन्ध की स्थापना-भावात्मक रहस्यवाद की विशेषता है। जायसी के पद्मावत में भावात्मक रहस्यवाद की प्रधानता है। कबीर के यहाँ यौगिक क्रिया द्वारा ब्रह्मानुभूति का वर्णन होने से साधनात्मक रहस्यवाद है। दूसरी तरफ जब वे अपने को राम का बहुरिया कहते हुए ब्रह्म को राग के धरातल पर उतारते हैं, तो वहाँ भावात्मक रहस्यवाद की उत्पत्ति होती है।

2.6 सगुण भक्ति काव्य की विशेषताएँ

सगुण भक्ति मार्ग में ईश्वर को साकार-इंद्रियगम्य, सविशेष माना गया है। तुलसी, सूर, आदि इसी के अंतर्गत आते है। सगुण भक्ति काव्य की निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

(1) अवतारवाद में विश्वास-

सगुण भक्त कवियों का दृढ़ विश्वास है कि परमात्मा, अधर्म के नाश और धर्म की स्थापना के लिए जीव रूप धारण कर अवतरित होता है। वह लीला के लिए अवतरित होता है, उसकी लीलाएँ लोकरंजन और लोक रक्षण के निमित्त होती है। सगुण भक्ति काव्य में नारायण के दो

अवतारों-राम, कृष्ण की लीलाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। सगुण भक्ति काव्य ईश्वर की लीलाओं का गान है।

(2) ब्रह्म के सगुण - निर्गुण दोनों रूपों की मान्यता-सगुण भक्ति काव्य में ब्रह्म के सगुण निर्गुण दोनों रूपों को स्वीकार किया गया है। धर्म और धरा के कल्यार्थ ही निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण करता है। तुलसीदास कहते हैं- 'सगुनहि सगुनहि नहि कछु भेदा।' सूर भी निर्गुण-सगुण दोनों रूपों को मानते हैं-' 'आदि सनातन हरि अविनाशी, निर्गुण-सगुण धरे तन दोइ।' किन्तु निर्गुण ब्रह्म 'रूप-रेख-गुन-जाति-जुगुति विहीन' है, वह मन और वाणी से परे है, वह 'गुंगे के गुड़' की तरह है। इसलिए सूर सगुन लीला के पद गाते हैं। दरअसल सुगम्यता के कारण ही तुलसी, सूर ने सगुण भक्ति को स्वीकारा है, महत्व दिया है।

(3) भक्ति का एक विशिष्ट स्वरुप- सगुण भक्ति के दो रुप दिखलाई पड़ते हैं, वैधी भक्ति और रागानुगा भक्ति। वैधी भक्ति में जहाँ शास्त्रानुमोदित विधि-निषेधों के सम्यक अनुशीलन पर बल है, वहीं रागानुगा के अंतर्गत शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और कांत या माधुर्य भाव की भक्ति है। सगुण भक्ति में रागानुगा भक्ति को महत्व दिया गया हैं। अलग-अलग भक्तों ने भिन्न-भिन्न भाव से प्रभु को भजा है। किसी के यहाँ दास्य भाव है तो कहीं वात्सल्य भाव। भागवत पुराण की नवधा भक्ति-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, संख्य तथा आत्मनिवेदन या शरणागति- की भी सूर, तुलसी, मीरा की भक्ति-पद्धति में स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है।

आगे सगुण भक्ति काव्य की शाखाओं-राम भक्ति काव्य एवं कृष्ण भक्ति काव्य की विस्तृत चर्चा की जाएगी।

2.5 भक्तिकाव्य: प्रक्रिया एवं विकास

2.5.1 संत काव्य

संतकाव्य जिसे ज्ञानाश्रयी शाखा कहा जाता है, इसकी शुरुआत महाराष्ट्र के संत कवि नामदेव से होती है। भक्ति आंदोलन के क्रमिक विकास का अवलोकन करने पर विदित होता है कि आलवारों की भक्ति का प्रसार दक्षिण के बाद महाराष्ट्र में होता है। महाराष्ट्र के संत कवि नामदेव (1270-1350) ने मराठी और हिन्दी दोनों में रचना की है, उनके यहाँ सगुण-निर्गुण दोनों भक्ति की प्रवृत्तियाँ मिलती है। ज्ञानदेव के कारण उन पर नाथपंथ का भी प्रभाव था। उन्होंने एक ऐसे भक्ति मार्ग के लिए रास्ता निर्मित किया, जो हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए हो। उत्तर भारत में भक्ति का प्रचार-प्रसार करते हैं, रामानंद। जो रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में आते हैं। रामानंद का समय 14वीं शता0 माना जाता है। रामानंद का भक्ति मार्ग उदार था, उसमें न जातिगत,

संकीर्णता है और न ही निर्गुण-सगुण का विवाद। स्वयं ब्राह्मण होते हुए भी बिना किसी भेद-भाव के उन्होंने निम्न जाति के लोगों को भी दीक्षा दिया। उनके शिष्यों में कबीर, रैदास, धन्ना, सेना, पीपा प्रसिद्ध है। रामानंद के शिष्यों में निर्गुण संत भी हैं और सगुण भक्त भी। एक निश्चित मत के रूप में संत काव्य के प्रवर्तक निस्संदेह कबीर हैं (15वीं सदी) हैं। कबीर ने जिस निर्गुण पंथ का प्रवर्तन किया है, उसकी परंपरा नामदेव से शुरू होती है। सिद्धों, नाथों, वैष्णवों, सूफियों से वह बहुत कुछ ग्रहण करते हैं। आचार्य शुक्ल लिखते हैं- 'निर्गुण पंथ के लिए राह निकालने वाले नाथपंथ के योगी और भक्त नामदेव थे। जहाँ तक पता चलता है 'निर्गुण मार्ग के निर्दिष्ट प्रवर्तक कबीरदास ही थे जिन्होंने एक ओर तो स्वामी रामानंद जी के शिष्य होकर भारतीय अद्वैतवाद की कुछ स्थूल बातें ग्रहण की और दूसरी ओर योगियों और सूफी फकीरों के संस्कार प्राप्त किये। वैष्णवों से उन्होंने अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद लिये। इसी से उनके तथा 'निर्गुणवाद' वाले दूसरे संतों के वचनों में कहीं भारतीय अद्वैतवाद की झलक मिलती है तो कहीं योगियों के नाड़ी चक्र की, कहीं सूफियों के प्रेमतत्व की, कहीं पैगम्बरी कट्टर खुदाबाद की और कहीं अहिंसावाद की। अतः तात्त्विक दृष्टि से न तो हम इन्हें पूरे अद्वैतवादी कह सकते हैं और न एकेश्वरवादी। दोनों का मिलाजुला भाव इनकी बानी में मिलता है। इनका लक्ष्य एक ऐसी सामान्य भक्ति पद्धति का प्रचार था जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों योग दे सकें और भेदभाव का कुछ परिहार हो। बहुदेवोपासना, अवतार और मूर्तिपूजा का खण्डन ये मुसलमानी जोश के साथ करते थे और मुसलमानों की कुरबानी (हिंसा) नमाज, रोजा, आदि की असारता दिखाते हुए, ब्रह्म माया, जीव, अनहदनाद, सृष्टि, प्रलय आदि की चर्चा पूरे हिन्दू ब्रह्म ज्ञानी बनकर करते थे। सारांश यह है कि ईश्वरपूजा की उन भिन्न-भिन्न बाह्य विधियों पर ये ध्यान हटाकर, जिनके कारण धर्म में भेदभाव फैला हुआ था, ये शुद्ध ईश्वर प्रेम और सात्विक जीवन का प्रसार करना चाहते थे।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 45-46) दरअसल संत काव्य धार्मिक-सामाजिक रूढ़ियों-विषमताओं के खिलाफ एक प्रतिक्रिया हैं, इसकी पृष्ठभूमि हमें सिद्धों-नाथों के यहाँ दिखलाई पड़ती है। परम्परागत वर्णाश्रम व्यवस्था जिसमें एक बड़े वर्ग को हाशिये पर ढकेल दिया गया था, उस निचले वर्ग की व्यापक हिस्सेदारी हमें संत मार्ग में दिखलाई पड़ती हैं। मुक्तिबोध लिखते हैं- 'पहली बार शूद्रों ने अपने संत पैदा किए। अपना साहित्य और अपने गीत सृजित किए। कबीर रैदास, नाभा, सेना नाई आदि महापुरुषों ने ईश्वर के नाम पर जातिवाद के विरूद्ध आवाज बुलंद की।' (नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबंध पृ0 88)

कबीर के अतिरिक्त रैदास, दादू, रज्जब, सुंदरदास, मलूकदास, हरिदास निरंजनी, धर्मदास, गुरुनानक, चरणदास, बाबरी साहिब, जगजीवन दास, तुलसी साहब, भीखा साहब, पलटू साहब, अक्षर अनन्य इत्यादि अन्य संत हैं जिन्होंने संत काव्य परम्परा को आगे बढ़ाया। भक्ति आंदोलन के दौरान निर्गुण पंथी कई सम्प्रदाय भी अस्तित्व में आये जैसे नानक पंथ, कबीर पंथ, निरंजनी संप्रदाय, दादू पंथ इत्यादि। संतमत एक लोक परम्परा है। संतों ने लोक भाषा, जिसे सधुक्कड़ी कहा गया है, का प्रयोग किया है, वे दोहा और गेय पदों में अपनी बात कहते है, बिल्कुल सीधे-सादे ढंग से। उनकी वाणियों में सरलता जन्य सरसता है। उलटवासियों का प्रयोग

भी हुआ है जो सिद्धों नाथों के प्रभाव-स्वरुप है। संत काव्य के प्रमुख रचनाकार और रचनाएँ निम्नलिखित हैं-

रचनाकार	रचना
कबीर	बीजक (धर्मदास द्वारा संकलित)
नानक	जपुजी, असा दी वार, रहिरास, साहिला, नसीहत नामा
हरिदास निरंजनी	अष्टपदी जोग पग्रंथ, ब्रह्मस्तुति, हंसप्रबोध ग्रंथ, निरपखमूल ग्रंथ, पूजायोग ग्रंथ, समाधिजोग, ग्रंथ, संग्रामजोग ग्रंथ
संतदास एवं जगन्नाथ दास (संग्रहकर्त्ता)	'हरडे वाणी- (दादू की वाणियों का संग्रह)
रज्जब	'अंगवधू' (दादू की वाणियों का संग्रह)
मलूकदास	ज्ञानबोध, रतनखान, भक्तिविवेक, ज्ञानपरोछि, बारहखड़ी, रामअवतार लीला, ब्रजलीला, ध्रुवचरित, विभवविभूति, सुखसागर, शब्द
सुंदरदास	ज्ञानसमुद्र, सुंदरविलास
रज्जब	सुब्बंगी
गुरु अर्जुनदेव	सुखमनी, बावनअखरी, बारहमासा
निपट निरंजन स्वामी	शांत सरसी, निरंजन-संग्रह

2.5.2 प्रेममार्गी सूफी काव्य-

सूफी मत से प्रभावित 'प्रेम' को वर्ण्य विषय बनाकर चलने वाली निर्गुणपंथी काव्य धारा ही प्रेममार्गी सूफी काव्य है, जिसे प्रेमाश्रयी शाखा भी कहा जाता है। सूफी मत इस्लाम का एक उदारवादी रूप है। भारत में सूफियों का आगमन 12वीं सदी में माना जाता है। सूफी कवियों ने प्रेम के दो रूप माने है- इश्क मिजाजी और इश्क हकीकी। इश्क मिजाजी अर्थात् लौकिक प्रेम, स्त्री-पुरुष का सामान्य प्रेम। इश्क हकीकी अर्थात् ईश्वरीय प्रेम। उन्होंने, लौकिक प्रेमकथाओं का चित्रण करते हुए ईश्वरीय सत्ता की ओर संकेत किया है, ईश्वरीय प्रेम की व्यंजना की है। उनके यहाँ नायक आत्मा के प्रतीक रूप में और नायिका, परमात्मा के प्रतीक के रूप में आती है। नायक का नायिका से मिलन कई सारी मुसीबतों का सामना करने के उपरांत होता है। प्रायः इन कवियों ने प्रचलित लोक कथाओं को चुना है, उनके प्रबंधों में ऐतिहासिक यथार्थ और कल्पना का योग है। कथा का विकास वे लोक कथा पद्धति के सूत्रों का इस्तेमाल करते हुए कहते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी करते हैं- 'कथानक को गति देने के लिए सूफी कवियों ने प्रायः उन सभी कथानक रूढ़ियों का व्यवहार किया है जो परम्परा से भारतीय कथाओं में व्यवहृत होती रही है, जैसे-चित्र दर्शन, स्वप्न द्वारा अथवा शुक-सारिका आदि द्वारा नायिका का रूप देख या सुनकर उस पर आसक्त

होना, पशु-पक्षियों की बातचीत से भावी घटना का संकेत पाना, मंदिर या चित्रशाला में प्रिय युगल का मिलन होना, इत्यादि। कुछ नई कथानक रूढ़ियाँ ईरानी साहित्य से आ गयी हैं, जैसे प्रेम व्यापार में परियों और देवों का सहयोग, उड़ने वाली राजकुमारियाँ, राजकुमार का प्रेमी को गिरफ्तार करा लेना, इत्यादि। परन्तु इन नई कथानक शैलियों को भी कवियों ने पूर्ण रूप से भारतीय वातावरण के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया है। अधिकांश सूफी, काव्यों का मूल आधार भारतीय लोक-कथाएँ हैं।'' (हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास, पृ0 163) इन कवियों ने फारसी की मसनवी शैली की पद्धति पर अपने काव्य का प्रणयन किया है। ग्रंथारंभ में ईश्वर और मुहम्मद साहब की स्तुति, गुरु-स्मरण ग्रंथ के रचनाकाल का उल्लेख, तत्कालीन बादशाह का उल्लेख इत्यादि मसनवी शैली की विशेषता है। इन कवियों की शैली भले ही फारसी हो लेकिन कथावस्तु से लेकर भाषा तक उस पर भारतीय परिवेश की छाप है। इन काव्यों की आत्मा भारतीय है। सिर्फ लोक प्रचलित भारतीय लोक कथाओं का आधार ही ग्रहण नहीं किया गया है, भारतीय दर्शन और योग-साधना का भी गहरा प्रभाव, दिखलाई पड़ता है।

सूफी कवियों ने प्रबंधात्मक काव्य की रचना की है। प्रायः दोहा-चौपाई की शैली और अवधी भाषा इन काव्यों की विशेषता है। रहस्यवाद की प्रवृत्ति भी दिखलाई पड़ती है। आत्मा-परमात्मा के प्रेम का निरुपण होने के कारण भावात्मक रहस्यवाद तो है ही, इसके अतिरिक्त यौगिक साधना सम्बन्धी बातें होने के कारण साधनात्मक रहस्यवाद भी आया है। सूफियों के रहस्यवाद के संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- 'सूफियों का रहस्यवाद अद्वैतवाद भावना पर आश्रित है। रहस्यवादी भक्त परमात्मा को अपने प्रिय के रुप में देखता है और उससे मिलने के लिए व्याकुल रहता है। जिस प्रकार मेघ और समद्र के पानी में कोई भेद नहीं है, दोनों एक ही हैं, उसी प्रकार भक्त भगवान में कोई भेद नहीं है दोनों एक ही हैं। फिर भी मेघ का पानी, नदी का रुप धारण करके समुद्र के पानी में मिल जाने को आतुर रहता है। उसी श्रेणी की आतुरता भक्त में भी होती है। सूफी, कवियों ने अपने प्रेम कथानकों की प्रेमिका को भगवान का प्रतीक माना है। जायसी भी सूफियों की इस भक्ति भावना के अनुसार अपने काव्य में परमात्मा को प्रिया के रुप में देखते हैं, और जगत् के समस्त रूपों को उसकी छाया से उद्भाषित बताते हैं। उनके काव्य में प्रकृति उस परम प्रिय के समागम के लिए उत्कंठित और व्याकुल पाई जाती है।'' (हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास, पृ0 167)

सूफी काव्य का जहाँ एक धार्मिक-आध्यात्मिक आशय है, वहीं उसका एक लौकिक पक्ष भी है। जिस प्रेम का इन कवियों ने निरुपण किया वह अत्यंत मार्मिक है। शुक्ल जी लिखते हैं- 'सूफियों के प्रेम प्रबंधों में खंडन-मंडन की बुद्धि को किनारे रखकर, मनुष्य के हृदय को स्पर्श करने का ही प्रयत्न किया गया है जिससे इनका प्रभाव हिन्दुओं और मुसलमानों पर समान रूप से पड़ता है।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 21) इन कवियों ने लोक तत्वों का प्रचुर मात्रा में उपयोग किया हैं। लोकपक्ष की दृष्टि से यह काव्य अत्यंत समृद्ध है। मुसलमान होते हुए सूफी कवियों ने जिस खुले मन से हिन्दू लोक कथाओं, धार्मिक मतों-विश्वासों का सर्जनात्मक उपयोग किया है, वह उनकी उदारता, उनके सेकुलर चरित्र का प्रमाण है। हिन्दू-मुसलमान के बीच

नजदीकी लाने, सांस्कृतिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया को तीव्र करने में इन सूफी कवियों का योगदान महत्वपूर्ण है।

सूफी काव्य परंपरा में जायसी का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। जायसी कृत 'पद्मावत' में सूफी काव्य की सभी विशेषताओं को बखूबी देखा जा सकता है। सपनावति, मुगुधावति, मिरगावति, मधुमालती, प्रेमावती जायसी द्वारा उल्लेखित इन प्रेमाख्यानकों में केवल मिरगावति और मधुमालती ही प्राप्त हुए हैं, बाकी अप्राप्य हैं। बहरहाल, यह तो स्पष्ट हे कि जायसी के पूर्व में प्रेमाख्यानक काव्य रचे गए है। जायसी के अतिरिक्त इस परम्परा में कुतुबन, मुल्ला दाऊद, मंझन, उसमान, शेखनवी, कासिम शाह, नूरमुहम्मद आदि कवि भी हैं। प्रेममार्गी सूफी काव्य परम्परा की प्रथम कृति कौन सी, इसे लेकर विद्वानों में मतभेद है। आचार्य शुक्ल के अनुसार कुतुबन कृत 'मृगावती' इस धारा की प्रथम कृति है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ईश्वरदास की 'सत्यवती कथा' को, राम कुमार वर्मा मुल्ला दाऊद कृत 'चंदायन' को पहली कृति मानते हैं हिन्दी के प्रमुख प्रेमाख्यानक काव्य निम्नलिखित है।

ग्रंथ	**रचनाकार**
हंसावली (1370 ई.)	असाइत
चंदायन (1379 ई.)	मुल्ल दाऊद
लखमसेन पद्मावती कथा (1459)	दामोदर कवि
सत्यवती कथा (1501)	ईश्वरदास
मृगावती (1503)	कुतुबन
माधवानल कामकंदला (1527)	गणपति
पद्मावत (1540)	जायसी
मधुमालती (1545)	मंझन
रूपमंजरी (1568)	नंददास
प्रेमविलास प्रेमलता की कथा (1556)	जटमल
छिताईवार्ता (1590)	नारायण दास
माधवानल-कामकंदला (1584)	आलम
चित्रावली (1613)	उसमान
रसरतन (1618)	पुहकर
ज्ञानदीप (1619)	शेखनवी

नल-दमयंती (1625)	नरपति व्यास
नल चरित्र (1641)	कुंद सिंह
हंस जवाहिर (1731)	कासिम शाह
इंद्रावती (1744)	नुरमुहम्मद
अनुराग बाँसुरी (1764)	नुरमुहम्मद
कथा रतनावली, कथा कनकावती, कथा कंवलावति, कथा मोहिनी, कथा कलंदर इत्यादि (रचनाकाल 1612-1664 ई. तक)	जान कवि

2.5.3 रामभक्ति काव्य-

आदिकाल से ही राम काव्य की एक दीर्घ परम्परा रही है। दरअसल उच्चतर मानवीय मूल्यों पर आधारित राम का व्यक्तित्व एवं जीवन हमेशा रचनाकारों को आकृष्ट करता रहा है। भारतीय संस्कृति के वह केन्द्रीय चरित्र हैं। राम एक ऐतिहासिक चरित्र हैं या मिथकीय यह विवाद का मुद्दा भले हो, किन्तु भारतीय समाज-संस्कृति में राम की अत्यंत गहरी और व्यापक उपस्थिति एक यथार्थ है। बहरहाल आदिकवि बाल्मीकि कृत आदिग्रंथ 'रामायण' में सर्वप्रथम रामकथा का निरूपण किया गया है। बाल्मीकि के पूर्व रामकथा की वाचिक और लिखित परम्परा निश्चित तौर पर रही होगी। लेकिन अभी तक इसका कोई प्रमाण नहीं उपलब्ध हुआ है। 'रामायण' का रचनाकाल चौथी सदी ई.पू0 माना जाता है। रामायण का भिन्न क्षेत्रों-समाजों, भाषाओं में भिन्न-भिन्न रूप में रूपांतर-विकास हुआ है। भारत में ही नहीं विदेशों में भी रामकथा का खूब प्रचार-प्रसार हुआ। संस्कृत, पालि, प्राकृत, तमिल, तेलगु, कन्नड़, गुजराती, बंग्ला, हिन्दी, काश्मीरी, असमी, नेपाली आदि कई भाषाओं में रामकथा का प्रणयन हुआ। इनमें कालिदास कृत 'रघुवंश' भवभूति कृत 'उत्तर रामचरित', कम्बन कृत 'तमिल रामायण', कृत्तिवास कृत बंग्ला में 'कृतिवासीय रामायण' तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस', माधव कन्दलि कृत 'असमिया रामायण' इत्यादि को विशेष ख्याति मिली।

हिन्दी में राम काव्य परम्परा में सर्वोच्च स्थान गोस्वामी तुलसीदास का है। उन्होंने रामकथा को व्यापक फलक पर प्रतिष्ठित कर जनता का कंठहार बना दिया। समन्वय का विराट चेष्टा और लोकमंगल के विधान के कारण तुलसी को अपार लोकप्रियता मिली। आचार्य शुक्ल के अनुसार 'जगत् प्रसिद्ध स्वामी शंकराचार्य जी ने जिस अद्वैतवाद का निरुपण किया था वह भक्ति के सन्निवेश के उपयुक्त न था। यद्यपि उसमें ब्रह्म की व्यावहारिक सगुण सत्ता का भी स्वीकार था, पर भक्ति के सम्यक प्रसार के लिए जैसे दृढ़ आधार की आवश्यकता थी वैसा दृढ़ आधार स्वामी रामानुजाचार्य जी (सं. 1073) ने खड़ा किया। उनके विशिष्टाद्वैत वाद के अनुसार

चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म के ही अंश जगत् के सारे प्राणी हैं जो उसी से उत्पन्न होते हैं और उसी में लीन होते हैं। अतः इन जीवों के लिए उद्धार का मार्ग यही है कि वे भक्ति द्वारा उस अंशी का सामीप्य लाभ करने का प्रयत्न करें। रामानुज जी की शिष्य परंपरा देश में बराबर फैलती गयी और जनता भक्ति मार्ग की ओर अधिक आकर्षित होती रही। रामानुज जी के श्री संप्रदाय में विष्णु या नारायण की उपासना है। इस संप्रदाय में अनेक साधु महात्मा बराबर होते गये।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 75)। रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में रामानंद हुए। वे काशी के राघवानंद जी के शिष्य थे। वास्तव में रामभक्ति को प्रतिष्ठित करते का श्रेय उन्हीं को है। उन्होंने भक्ति को शास्त्रीय घेरे बंदी से मुक्त कर लोक ग्राह्य बनाया, भक्ति मार्ग को सभी के लिए खुला रखा। आचार्य शुक्ल लिखते हैं-''तत्वतः रामानुजाचार्य जी के मतावलंबी होने पर भी अपनी उपासना पद्धति को उन्होंने विशेष रूप रखा। उन्होंने उपासना के लिए बैकुंठ निवासी विष्णु का स्वरूप न लेकर लोक में लीला विस्तार करने वाले उनके अवतार राम का आश्रय लिया। इनके इष्टदेव राम हुए और मूल मंत्र हुआ राम नाम। सगुण ब्रह्म के आग्रही होते हुए भी रामानंद ने निर्गुण भक्ति को भी प्रोत्साहन दिया। रामानंद कृत दो ग्रंथ मिलते हैं- 'वैष्णवमताब्जभास्कर और श्री रामार्चन पद्धति। दोनों संस्कृत में हैं। प्रसिद्ध प्रार्थना 'आरती कीजै हनुमान लला की' उन्हीं द्वारा रचित है। रामानंद जी की ही शिष्य परम्परा में तुलसीदास आते हैं। तुलसी के अतिरिक्त रामभक्ति काव्य पंरपरा में अग्रदास, ईश्वरदास, नाभादास केशवदास भी हुए, किन्तु किसी को तुलसी जैसी ख्याति नहीं मिली। रामभक्ति धारा में दास्य-भाव की भक्ति प्रधान है, किन्तु कालांतर में अग्रदास के सखी सम्प्रदाय रामचरणदास द्वारा प्रवर्तित स्वसुखी शाखा और जीवाराम प्रवर्तित तत्सुखी शाखा द्वारा रामभक्ति में रसिक भावना का समावेश होता हैं। इन शाखाओं की कोई उल्लेखनीय काव्यात्मक उपलब्धि नहीं है।

रामभक्ति शाखा के प्रमुख रचनाकार और उनकी रचनाएँ हैं-

रचनाकार	**रचना**
1. विष्णुदास	महाभारत कथा, रूक्मिणी मंगल, स्वर्गारोहण, स्नेहलीला
2. रामानंद	वैष्णव मताब्ज भाष्कर, श्री रामार्चन पद्धति, रामरक्षास्रोत।
3. अग्रदास	ध्यान मंजरी, अष्टयाम, रामभजनमंजरी, उपासना-बावनी, पदावली।
4. ईश्वरदास	भरत मिलाप, अंगदपैज
5. तुलसीदास	दोहावली, कवित्त रामायण, गीतावली, रामचरितामानस, रामाज्ञा प्रश्नावली, विनय पत्रिका, रामलला नहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी, कृष्ण गीतावली
6. नाभादास	भक्तमाल, अष्टयाम
7. केशवदास	रामचंद्रिका
8. प्राणचंद चौहान	रामायण महानाटक
9. माधवदास चारण	राम रासो, अध्यात्म रामायण
10. हृदयराम	हनुमन्नाटक

11. नरहरि बारहट	पौरुषेय रामायण
12. लालदास	अवध विलास

2.5.4 कृष्ण भक्ति काव्य-

ईश्वरीय रूप में श्रीकृष्ण का प्रादुर्भाव कब हुआ, इस संदर्भ में निश्चित तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता। पुराण काल में श्रीकृष्ण एक प्रमुख ईश्वर अवतार के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। भागवत पुराण में कृष्ण की बाल और कैशोर वय की लीलाओं का विस्तृत वर्णन हुआ है। गोपियों के साथ उनके प्रणय-प्रसंग का वर्णन मनोहारी है। ध्यान देने योग्य है कि भागवत में कहीं भी राधा का उल्लेख नहीं मिलता। कृष्ण की प्रेयसी के रूप राधा 12वीं सदी के संस्कृत कवि जयदेव के 'गीत गोविंद' में आती है। जयदेव के पश्चात् बंग्लाकवि चंडीदास और मैथिल कवि विद्यापति के यहाँ राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला का विशद वर्णन मिलता है। विद्यापति के यहाँ राधा-कृष्ण का प्रेम तो अत्यंत मांसल हो उठा है। बहरहाल भागवत में वर्णित लीलाएँ ही कृष्ण भक्ति काव्य का आधार रही हैं। दक्षिण के आलवार भक्तों ने भी कृष्णोपासना का प्रसार किया, उनकी भक्ति में माधुर्य भाव की प्रधानता है। कृष्ण भक्ति को शास्त्रीय आधार देकर प्रचारित-प्रसारित करने वालों में दो वैष्णव आचार्यों निम्बाकाचार्य (12-13 वीं सदी) और वल्लभाचार्य (15-16 वीं सदी) का महत्वपूर्ण योगदान हैं।

वल्लभ ने देश भर घूम-घूमकर और विद्वानों से शास्त्रार्थ कर कृष्ण भक्ति का प्रचार किया। अंत में ब्रज में उन्होंने अपनी गद्दी स्थापित की। उन्होंने श्री कृष्ण के लीलागान का उपदेश दिया। वल्लभ के पुत्र विट्ठलनाथ ने 'अष्टछाप' की स्थापना की। इसमें चार वल्लभाचार्य के शिष्य- कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास और चार विट्ठलनाथ जी के शिष्य - कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास और कृष्ण दास- सम्मिलित हैं। अष्टछाप के कवि पुष्टिमार्गी भक्त है, जिन्होंने कृष्ण की लीलाओं को विषय वस्तु बनाकर काव्य प्रणयन किया। इनमें सूरदास, सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, उन्हें 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहा जाता है। 'सूरसागर' में कृष्ण की बाल और कैशोर वय की लीला के अंतर्गत उन्होंने वात्सल्य और श्रृंगार का जितना सूक्ष्म, स्वाभाविक और मार्मिक अंकन किया है वह समूचे हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। राग और रस के जिस आनंदोत्सव को सूर ने सूरसागर में दिखलाया है वह सहृदय को हमेशा आहलादित करता रहा है। उनकी कविता में समूचा व्रज अपने पूरे व्यक्तित्व के साथ सजीव हो उठा है।

राधा वल्लभ संप्रदाय, हरिदासी संप्रदाय (सखी संप्रदाय), गौड़ीय संप्रदाय का भी कृष्ण भक्ति काव्य में महम्वपूर्ण योगदान रहा है। राधा वल्लभ संप्रदाय में श्री कृष्ण से भी ज्यादा राधा को महत्व दिया गया है। राधावल्लभ संप्रदाय की मान्यताओं को स्पष्ट करते हुए विजेन्द्र स्नातक लिखते हैं- 'राधावल्लभ संप्रदाय में श्रीकृष्ण का प्रमुख स्थान नहीं है, राधा ही प्रमुख है। श्रीकृष्ण आनुवांशिक रूप से वर्णित हैं, किन्तु इस वर्णन में कृष्ण के भीतर सभी शक्तियों का समाहार अवश्य लक्षित होता है। वृदावन विहारी कृष्ण ही रसिक किशोर रूप में एकमात्र नित्यबिहारी पुरुष हैं। उनकी पराप्रकृति श्री राधा हैं, जो चित्-अचित् विशिष्ट अह्लादिनी निजशक्ति रूपा हैं।

सारा चराचर जगत् इन्हीं रसिक युगलकिशोर का प्रतिबिम्ब हैं। भगवान कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम परात्पर ब्रह्म के भी आदि कारण और ईश्वरों के भी ईश्वर है। श्रीकृष्ण का वृंदावनविहारी, मधुरावासी और द्वारकावासी के रूप में वर्णन मिलता है। ऐश्वर्य, ज्ञान, शक्ति और पराक्रम को अंतर्लीन कर, प्रेम और माधुर्य की साक्षात् मूर्ति बनकर वे गोप-गोपियों के साथ लीलारत रहते हैं। वे राधापति होकर रस राज श्रृंगार के सौन्दर्यमंडित रूप का विस्तार करने वाले हैं। इस संपदाय में श्रीकृष्ण का उपास्य नाम 'राधवल्लभ' है। (हिन्दी साहित्य का इतिहास- सं0 डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 186) हितहरिवंश, दामोदरदास (सेवकजी), हरिराम व्यास चतुर्भुजदास, ध्रुवदास, नेही नागरीदास आदि इस संप्रदाय के प्रमुख काव्य भक्त कवि हैं। स्वामी हरिदास द्वारा प्रवर्तित सखी संप्रदाय में निकुंज बिहारी श्री कृष्ण को सर्वोपरि महत्ता दी गई है। चित्त को श्रृंगार रस से सराबोर कर श्रीकृष्ण की लीलाओं का दर्शन ही सखी (भक्त) को अभीष्ट है। इस संप्रदाय के प्रमुख कवि हरिदास, जगन्नाथ गोस्वामी, बीठल विपुल, बिहारिनदास आदि हैं। गौड़ीय संप्रदायय का प्रवर्तन चैतन्य महाप्रभु ने किया। उन्होंने गोलोक की लीलाओं, सहित ब्रज में बिहार करने वाले ब्रजेन्द्र कुमार श्री कृष्ण को उपास्य माना है। उनकी भक्ति माधुर्य भाव या कांता भाव की है। रामराय, गदाधर भट्ट, चंद्रगोपाल, भगवत मुदित, माधवदास 'माधुरी' आदि इस संप्रदाय के प्रमुख कवि है। इनके अतिरिक्त कई संप्रदाय निरपेक्ष कवि भी हुए जिनमें रसखान और मीरा का विशेष स्थान है।

कृष्ण भक्ति काव्य में मुख्यतया श्री कृष्ण कृष्ण की लीलाओं का ही चित्रण है। यथा- श्रीकृष्ण जन्म, पूतनावध, दधि-माखनचोरी, बाल कृष्ण की विविध चेष्टाएँ, गोदोहन, गोचारण, कालिया दमन, गोवर्धन-धारण, दान लीला, मान लीला, चीर हरण लीला, रास लीला, श्री कृष्ण मथुरा गमन, कंस वध, कुब्जा प्रसंग, भ्रमर गीत प्रसंग इत्यादि। श्री कृष्ण के लोक रक्षक रूप की अपेक्षा उनके लोक रंजक रूप को प्रमुखता दी गयी हैं। वात्सल्य और श्रृंगार इन कवियों के प्रधान क्षेत्र हैं। कृष्ण भक्ति काव्य में भ्रमरगीत प्रसंग काअपना एक अलग महत्व है। भ्रमरगीत गोपियों की निष्ठा और व्यथा के मार्मिक दस्तावेज के रूप में आता है, जहाँ उनकी वचनविदग्धता, वाक चातुरी भी प्रकट होती है। कृष्ण भक्ति काव्य के संदर्भ में, आचार्य शुक्ल कहते हैं- सब संप्रदायों के कृष्ण भक्त भागवत में वर्णित कृष्ण की ब्रजलीला को ही लेकर चले क्योंकि उन्होंने अपनी प्रेमलक्षणा भक्ति के लिए कृष्ण का मधुर रूप ही अपनाया। पर्याप्त महत्त्व की भावना से उत्पन्न श्रद्धा या पूज्य बुद्धि का अवयव छोड़ देने के कारण कृष्ण के लोकरक्षक और धर्मसंस्थापक स्वरूप को सामने रखने की आवश्यकता उन्होंने न समझी। भगवान के मर्मस्वरूप को इस प्रकार किनारे रख देने से उसकी ओर आकर्षित होने और आकर्षित करने की प्रवृत्ति का विकास कृष्ण भक्तों में न हो पाया। फल यह हुआ कि कृष्ण भक्त कवि अधिकतर फुटकर श्रृंगारी पदों की रचना में ही लगे रहे। उनकी रचनाओं में न तो जीवन के अनेक गंभीर पक्षों के मार्मिक रूप स्फुरित हुए, न अनेकरूपता आयी। ..... राधाकृष्ण की प्रेम लीला ही सब ने गायी।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 104) कृष्ण भक्ति काव्य का माधुर्य भाव कालांतर में अतिशय श्रृगारिकता में तब्दील हो जाता है, और रीतिकाल का जन्म होता है।

कृष्ण भक्तिकाव्य प्रायः मुक्तकों के रूप में मिलता है, प्रबंध काव्य कम लिखे गये। भाषा प्रायः ब्रज रही है।

कृष्ण भक्ति काव्य के प्रमुख कवि और उनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं-

रचना	**रचनाकार**
सूरदास	सूर सागर, साहित्य लहरी, सूर सूरावली
नंददास	अनेकार्थ मंजरी, मान मंजरी, रस मंजरी, रूप मंजरी, विरह मंजरी, प्रेम बाहरखड़ी, श्याम सगाई, सुदामा चरित, रूक्मिणी मंगल, भंवरगीत, रामपंचाध्यायी, सिद्धांत पंचाध्यायी, गोवर्धनलीला, दशमस्कंधभाषा, नंददास पदावली
हितहरिवंश	हित चौरासी, स्फुटवाणी, संस्कृत में-राधा सुधनिधि, यमुनाष्टक
चतुर्भुज दास	भक्ति प्रताप, द्वादशयज्ञ, हित जू को मंगल
हरिदास	सिद्धांत के पद, केलिमाल
मीरा	गीत गोविंद की टीका नरसी जी का मायरा, राग सोरठ कापद, मलार राग, राग गोविंद, सत्यभामानु रूसणं, मीरा की गरबी, रूक्मणी मंगल, नरसी मेहता की हुण्डी, चरीत, स्फुट पद
रसखान	सुजान रसखान, प्रेमवाटिका, दानलीला, अष्टयाम

2.6 भक्तिकाव्य का महत्व

भक्ति काव्य हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है। यह सिर्फ आध्यात्मिक परितोष ही नहीं प्रदान करता, सन्मार्ग पर चलने की, एक उदार-मानवीय समाज निर्मित करने की प्रेरणा भी प्रदान करता है। भक्त कवियों ने भक्ति को सहज-सरल बनाकर उसे शास्त्र-पुरोहित-कर्मकाण्ड-बाह्याचार की जकड़बंदी से मुक्त किया, इससे सामान्य मनुष्य भी भक्ति का अधिकारी बन सका। भक्ति काव्य वर्गगत-वर्णगत-संप्रदायगत भेदभाव के ऊपर मानुष सत्य को महत्व देता है। जिस सत्य-शील-सदाचार युक्त जीवन पद्धति की इन कवियों ने वकालत की है वह मनुष्य के जीवन को नैतिक बनाता है। इस काव्य, विशेषकर संत कवियों ने जिस तरह जातिगत भेद भाव को अर्थहीन साबित करते हुए मानव मात्र की एकता-समता का प्रतिपादन किया हैं उससे सदियों से वंचित-उपेक्षित वर्ग को एक नया बल मिलता है। सूफी कवियों ने हिन्दू-मुस्लिम की भावात्मक एकता को प्रोत्साहित किया। रामकाव्य से समाज को जीवन-मानवीय सम्बन्धों का आदर्श मिलता है। तुलसी ने विविध प्रवृत्तियों में समन्वय की जो चेष्टा की है, वह अंततः लोक मंगलकारी सिद्ध होता है। कृष्णभक्ति काव्य से समाज में राग-रस का संचार होता हैं। भक्तिकाव्य ने कला, संगीत

को गहरे स्तर पर प्रभावित किया। कृष्ण भक्ति काव्य ने संगीत, विविध राग-रागनियों के विकास में बड़ा भारी योग दिया। भक्त कवियों ने संस्कृत, फारसी को न अपनाकर लोकभाषा को अपनाया, इससे लोक भाषाओं का साहित्यिक विकास होता है। साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी और व्रज भक्तिकाव्य की ही देन है। उच्चादर्शों से परिचालित होने के कारण ही भक्ति काव्य इतना प्रेरक और प्रभावी सिद्ध हुआ। भक्तिकाव्य के महत्व को रेखांकित करते हुए प्रेमशंकर लिखते हैं- 'भक्तिकाव्य की लंबी यात्रा का कारण देवत्व नहीं है, इसके विपरीत उसकी मानवीय चिंता है, जो उसे आज भी किसी बिंदु पर प्रासंगिकता देती है, उसे और उसे खारिज कर पाना उनके लिए भी कठिन , जो स्वयं को भक्तिमार्गी कहने से बचना चाहते हैं। भक्तिकाव्य का समाजशास्त्र है, समय-समाज से उसकी टकराहट जो कभी कबीर की तरह जुझारू दिखाई देती है, और अन्यत्र संयत, पर असंतोष सबमें है। समाजदर्शन है- नए विकल्प की खोज, नए मूल्य-संसार की तलाश। रामकृष्ण तो माध्यम हैं, वास्तविक लक्ष्य है, रचना स्तर पर उच्चतर भावलोक की प्राप्ति। समाजशास्त्र और समाज दर्शन के लिए भक्तिकाव्य ने जिस अभिव्यक्ति कौशल का आश्रय लिया, वह स्वतंत्र चर्चा का विषय है। पर रचना की प्रमाणिकता के लए इन सजग कवियों ने पूरा मुहावरा लोकजीवन से ही प्राप्त किया- भाषा, छंद आदि। भक्तिकवियों में मध्यकालीन लोकजीवन की उपस्थिति और एक वैकल्पिक मूल्य-संसार की तलाश उसकी सामर्थ्य का प्रमाण है। भक्तिकाव्य में समाजदर्शन मिलकर अपने रचना-संसार को ऐसी दीप्ति देते हैं कि उसे कालजयी काव्य कहा जाता है। उसका वैशिष्ट्य यह है कि वह अपने समय से संघर्ष करता हुआ?, उसे पार करने की क्षमता का प्रमाण देता है और लोक को सीधे ही संबोधित करता है, पूरे आत्मविश्वास के साथ। उसका वैकल्पिक भाव-विचार-लोक उसका 'काव्य-सत्य' है, जिसे व्यापक स्वीकृति मिली।' (भक्तिकाव्य का समाजदर्शन, पृ0 88)

अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अष्टछाप की स्थापना किसने की?
2. रासपंचाध्यायी के रचयिता हैं?
3. कबीर की वाणियों का संग्रह हैं?
4. तुलसी द्वारा रचित कितने ग्रंथ माने जाते हैं?
5. तुलसी की भक्ति किस प्रकार की है?
6. 'मृगावती' के रचनाकार है?
7. रत्नसेन किस प्रेमाख्यानक काव्य का नाटक है?
8. 'भक्त माल' के रचयिता है?

2.7 सारांश

भक्तिकाव्य दो धाराओं में विभक्त है- निर्गुण भक्त काव्य और सगुण भक्ति काव्य। इनका भी क्रमशः संतकाव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य और रामभक्ति काव्य, कृष्णभक्ति काव्य में विभाजन हुआ है। भक्ति काव्य की विविध धाराओं की विभिन्नता के बावजूद, ऐसी कुछ समान विशेषताएँ हैं जो समूचे भक्ति काव्य में दिखलाई पड़ती हैं यथा-भक्ति, गुरुमहिमा, नाम स्मरण का महत्व, सत्य-शील-सदाचार पर बल, लोकधर्मिता इत्यादि। निर्गुण सगुण भक्ति में मुख्य भेद उपास्य के स्वरुप भक्ति, के आधार को लेकर है। निर्गुण भक्ति में ब्रह्म को निराकार, अजन्मा, अशरीरी, इंद्रियातीत माना गया है जबकि सगुण भक्ति में ब्रह्म सविशेष, साकार इंद्रिय गम्य है। अवतारवाद में निर्गुण संतों की कोई आस्था नहीं है, जबकि सगुण भक्त ईश्वर के अवतारों में विश्वास करते हैं। भक्तिकाव्य का उदय एवं विकास भक्ति आंदोलन के दौरान होता है। सिद्ध, नाथ, दक्षिण के आलवार, महाराष्ट्र के नामदेव, वैष्णव आचार्यों, सूफियों इन सभी की प्रेरणा प्रभाव स्वरुप संतकाव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य, रामभक्ति, कृष्ण भक्तिकाव्य का विकास होता है। भक्ति काव्य की इन चारों शाखाओं के क्रमशः प्रतिनिधि रचनाकार कबीर जायसी, तुलसीदास और सूरदास है। भक्तिकाव्य की मूल संवेदना भक्ति है, वह समाज की आध्यात्मिकक तृषा को तृप्ति प्रदान करता है, उसकी प्रवृत्तियों का परिष्कार कर उसे ईश्वरोन्मुख होने की प्रेरणा देता है। भक्ति काव्य का सबसे बड़ा महत्व उसकी मानवीयता और लोकधर्मिता के कारण है।

2.8 शब्दावली

उलटबाँसी-लोक व्यवहार से उल्टी बात। उलटबाँसी के अंतर्गत ऐसी बातों का कथन होता है, जो व्यावहारिक जीवन में दिखाई पड़ने वाली बातों के विपरीत होती है। इसमें घुमा-फिराकर, प्रतीकों का सहारा लेकर अभीष्ट अर्थ को प्रकट किया जाता है। इससे कथन में चमत्कार आ जाता है। उलटवॉसी शैली सिद्धों नाथों की विशेषता थी। संत कवियों विशेषकर कबीरदास ने इस शैली को अपनाया है।

अंतस्साधना-अंतस्साधना का अर्थ है, वह साधना जो भीतर ही भीतर की जाती है, जिसमें बाह्य पूजा-विधान, कर्मकाण्ड इत्यादि की कोई आवश्यकता नहीं होती है। अंतस्साधना के दो रूप हैं-एक के अंतर्गत यौगिक क्रियाएँ-कुण्डलिनी-जागरण, चक्र-भेदन, शून्य समाधि इत्यादि आती हैं। दूसरे के अंतर्गत पूरी तन्मयता के साथ प्रभु का चिंतन-मनन, नामस्मरण आता है। संत कवियों ने बाह्यसाधना का विरोध किया है और अंतस्साधना को महत्व दिया है।

रहस्यवाद-अव्यक्त, निराकार, ब्रह्म की जिज्ञासा, आत्मा-परमात्मा के एकात्म की अनुभूति रहस्यवाद है। इसके अंतर्गत अनुभवातीत ब्रह्म को अनुभव के दायरे में लाया जाता है, साधना की विविध स्थितियों का निरूपण आता है। शुक्ल जी रहस्यवाद के दो भेद मानते हैं-साधनात्मक रहस्यवाद और भावात्मक रहस्यवाद।

सधुक्कड़ी भाषा- संतों की भाषा को सधुक्कड़ी कहा गया है। दरअसल सधुक्कड़ी भाषा विभिन्न भाषाओं-बोलियों-भोजपुरी, अवधी, राजस्थानी, खड़ी बोली, पंजाबी, अरबी-फारसी का एक मिश्रित रूप है। संतों की धूमंतू प्रवृत्ति के कारण उनकी भाषा में विविध क्षेत्रों, बोलियों के शब्द मिलते हैं।

पुष्टि-पुष्टि का अर्थ है पोषण, अनुग्रह। बल्लभाचार्य ने भगवत्नुग्रह अर्थात् पुष्टि की प्राप्ति को भक्त का लक्ष्य माना है। इसे प्रेमालक्षण भक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है। 'पुष्टि' पर बल देने के कारण ही बल्लभ के भक्ति मार्ग को पुष्टिमार्ग कहा गया है।

अष्टछाप-पुष्टिमार्ग भक्त कवियों को अष्टछाप के कवि कहा जाता है। अष्टछाप की स्थापना वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने की। इसमें चार वल्लभाचार्य के शिष्य और चार विट्ठलनाथ जी के शिष्य हैं। ये आठ कवि हैं- कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, नंददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास। कृष्ण की लीलाओं का गान श्रीनाथ जी के अष्टयाम की सेवा इनका कार्य था। ये आठ कवि 'अष्टसखा' भी कहलाते हैं।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विट्ठलनाथ
2. नंददास
3. बीजक
4. 12
5. दास्य भाव की
6. कुतुबन
7. पद्मावत
8. नाभादास

2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

6. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - सूर साहित्य, राजकमल प्रकाशन।
7. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन।
8. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन।
9. शुक्ल, रामचंद्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।
10. मिश्र, शिव कुमार- भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन।
11. मुक्तिबोध, गजानन माधव- नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध, राजकमल प्रकाशन।

2.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य औरसंवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं. नगेन्द्र
3. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1 - सं. धीरेन्द्र वर्मा
4. भक्ति काव्य का समाज दर्शन - प्रेमशंकर
5. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन सिंह

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निर्गुण सगुण भक्ति के साम्य-वैषम्य पर प्रकाश डालिए?
2. भक्ति काव्य के महत्व का उद्घाटन कीजिए?
3. भक्ति काव्य की विविध शाखाओं पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।
4. भक्तिकाव्य की सामान्य विशेषताएँ क्या हैं?

इकाई 3 भक्तिकालीन कविता: विविध शाखाएँ

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 संतकाव्य
  3.3.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ
  3.3.2 प्रमुख कवि
  3.3.3 उपलब्धियाँ
3.4 प्रेममार्गी सूफी काव्य
  3.4.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ
  3.4.2 प्रमुख कवि
  3.4.3 उपलब्धियाँ
3.5 रामभक्ति काव्य
  3.5.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ
  3.5.2 प्रमुख कवि
  3.5.3 उपलब्धियाँ
3.6 कृष्ण भक्ति काव्य
  3.6.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ
  3.6.2 प्रमुख कवि
  3.6.3 उपलब्धियाँ
3.7 सारांश
3.8 पारिभाषिक शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

यह इकाई भक्तिकालीन कविता की विविध शाखाओं-संत काव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य, राम भक्ति काव्य, कृष्ण भक्ति काव्य पर आधारित है। उपास्य के स्वरुप, ईश्वर की संकल्पना के आधार पर भक्ति काव्य को दो वर्गों -निर्गुण भक्ति काव्य और सगुण भक्ति काव्य में बाँटा जाता है। फिर इनका भी वर्गीकरण उपरोक्त चार शाखाओं में किया गया है। इसके पूर्व की इकाईयों में हम लोगों ने 'भक्तिकालीन कविता का उदय' और 'भक्तिकालीन कविता: प्रक्रिया और विकास' की चर्चा की। इन दोनों इकाईयों को पढ़ने के पश्चात् आप भक्तिकालीन कविता के बारे में काफी कुछ जान गये होंगे। अब तक हम लोगों ने भक्तिकालीन कविता के आधार, भक्ति कालीन कविता के विकास की चर्चा की है, अब हम भक्तिकालीन कविता की विविध शाखाओं की चर्चा करेंगे। इन शाखाओं की प्रवृत्तियों, विशद प्रमुख कवि, महत्व का क्रमवार विवेचन किया जाएगा।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

- संत काव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य, रामभक्ति काव्य, कृष्ण भक्तिकाव्य से अवगत हो सकेंगे।
- भक्तिकालीन कविता की विभिन्न शाखाओं की प्रमुख प्रवृत्तियाँ क्या रही है, इस प्रश्न का उत्तर पा सकेंगे।
- विभिन्न शाखाओं के प्रमुख कवियों जैसे कबीर, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, मीरा, रसखान से परिचित हो सकेंगे।
- विभिन्न भक्तिकालीन शाखाओं के महत्व को समझ सकेंगे।

3.3 संत काव्य

निर्गुण पंथ की ज्ञानाश्रयी शाखा को संत काव्य कहा गया। संताकाव्य उन संतों द्वारा रचा गया जिन्होंने निर्गुण ब्रह्म के प्रति भक्ति भाव रखते हुए बहुदेववाद, अवतारवाद, शास्त्र एवं पुरोहित, मिथ्याडम्बरों का विरोध किया और जातिगत, संप्रदायगत भेदभाव को नकारते हुए सभी मनुष्यों को समान, एक ही ईश्वर का अंश बतलाया। ये संत सीधा-सादा जीवन जीते थे, संसार, घर-गृहस्थी में रहकर भी सांसारिकता से अलिप्त थे। प्रायः ये संत समाज के निचले तबके से थे, उस तबके से जो वर्णाश्रमव्यवस्था में नीच, अछूत घोषित था। वास्तव में संत मत ब्राह्मण धर्म, व्यवस्था के सामानांतर चलने वाली बौद्धों, सिद्धों-नाथों की लोक परम्परा की अगली कड़ी है। इस धारा का प्रादुर्भाव अपने पूर्व की परम्परा से बहुत कुछ ग्रहण कर होता है। एक तरफ संतों

पर यदि उपनिषदों के तत्व-चिंतन, वैष्णव धर्म के अहिंसावाद व प्रपत्तिवाद, शंकर के मायावाद, रामानंद का प्रभाव है तो दूसरी तरफ इन संतों ने बौद्धों के दुखवाद, सिद्धों-नाथों की रहस्यवादिता, शून्य समाधि, योग गुरु महिमा, शास्त्र-पुरोहित-बाह्यायाडम्बर, जाति-पाँति का विरोध, इस्लाम के एकेश्वरवाद, सूफियों के प्रेम-दर्शन को भी ग्रहण किया है। इन सबके योग से ही संतमत का निर्माण होता है। संतमत के प्रवर्तक कबीर है, वैसे मराठी कवि नामदेव की रचनाओं में भी निर्गुण भक्ति के तत्व है। किंतु संतकाव्य की प्रवृत्तियों की अत्यंत सशक्त उपस्थिति पहली बार हमें कबीर के यहाँ ही दिखलाई पड़ती है। संत काव्य के वह प्रवर्तक ही नहीं, केन्द्रीय रचनाकार भी हैं। समूचा संत काव्य उन्हीं की मान्यताओं, वाणियों से आच्छादित है। कबीर की परम्परा को आगे रैदास, दादू दयाल, नानक, रज्जब, मलूकदास, जंभनाथ, सुंदरदास इत्यादि संत विकसित करते है। और देखते ही देखते इस संत धारा में कई संप्रदाय उठ खड़े होते है जैसे-कबीर पंथ, लाल पंथ, दादू पंथ, विश्नोई संप्रदाय, उदासी संप्रदाय, नानक पंथ, बाबालाली संप्रदाय, बावरी पंथ, निरंजनी संप्रदाय सत्यनामी संप्रदाय इत्यादि। आइए अब संतकाव्य की प्रवृत्तियों को देखें।

3.3.1 प्रवृत्तियाँ –

(क) निर्गुण ब्रह्म में विश्वास:- संत कवियों ने ब्रह्म के निर्गुण अर्थात् निराकार, अजन्मा, अशरीरी, निर्विशेष, अव्यक्त, अगोचर रूप को स्वीकार किया है। इस निर्गुण ईश्वर को उन्होंने राम, केशव, गोविंद, भगवान, निरंजन, माधव, हरि आदि कहकर भजा है। वह परमतत्व, परमेश्वर अकथनीय, अनिर्वचनीय है। रैदास कहते है-

जैसो मैं आगे कहि आयो, फिर समझो वैसो नहिं पायो।
जो कछु कहियो नाहीं नाहीं, सो सब देखा बांके माहीं।
अकथ कथा कछु, कही न जाई, जो भाखौं, सो ही मुरखाई।'

वह निर्विकार, अविनाशी है, अतर्क्य है, रैदास कहते हैं-

निश्चल निराकार अतिअनुपम निरभै गति गोविंदा।
अगम अगोचर अक्षर, अतरक, निर्गुण अति आनंदा।
सदा अतीत ज्ञान विवर्जित, निर्विकार अविनाशी।।

उस अविगत ब्रह्म को लखा नहीं जा सकता, जो अनादि है, अनंत है उसे बतलाने में वाणी असमर्थ हैं इसीलिए कबीर ने कहा हैं- 'निर्गुण राम जपहु रे भाई, अविगत की गति लखी न जाई।' उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, सिर्फ उसे अनुभव किया जा सकता है, कबीर कहते हैं-

पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।
कहिबे कूँ सोभा नहीं, देख्या ही परवान।।'

वही परम पुरुष है, जो समस्त सृष्टि में व्याप्त है, सर्वत्र उपस्थित है- 'पूरण ब्रह्म बसै सब ठाहीं।' उस ईश्वर का इस घट अर्थात् शरीर में भी निवास है, किन्तु मनुष्य अज्ञानतावश उसका अनुभव, उसका साक्षात्कार नहीं कर पाता। जिस तरह कस्तूरी मृग के नाभि में रहती हैं, किन्तु उसकी तलाश में मृग जंगल-जंगल भटकता है, उसी तरह मनुष्य भी ईश्वर की खोज में भटकता है, -कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढँढ़ै मन माहिं।'

(ख) अवतारवाद एवं बहुदेववाद का खण्डन- संत कवि ब्रह्म को अशरीरी, अजन्मा मानते है, उनकी दृष्टि में परम तत्व एक है। ईश्वर समस्त चराचर जगत में व्याप्त है, उसकी अनेक सत्ता नहीं है, वह एक ही हैं। इन मान्यता के कारण के संत कवि न तो अवतारवाद में विश्वास करते है और न ही बहुदेववाद में। कबीर के अनुसार निर्गण राम ही राम नाम का मर्म है-'दशरथ सूत तीहि लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना।' रैदास भी कहते हैं जिस दशरथ सुत राम के फेर में संसार पड़ा हुआ है, वह तो राम है ही नहीं-'राम कहत सब जगत भुलाना सो यह राम न होई।' संतों ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि कई देवताओं के अस्तित्व को नहीं माना। उनकी दृष्टि में परमपुरुष एक ही है। कबीर कहते हैं-

'अक्षय पुरुष एक पेड़ है, निरंजन बाकी डार।
त्रिदेवा शाखा भये पात भया संसार।।

दरअसल संतों ने अनुभव किया कि बहुदेववाद एवं अवतारवाद के कारण धर्म क्षेत्र में कई तरह के अंधविश्वास, मिथ्याडम्बर प्रचलित हो गए है नए-नए संप्रदाय बन गये हैं, और उनमें परस्पर कटुता-प्रतिद्वन्द्विता व्याप्त रहती है। इस तरह वे अवतारवाद एवं बहुदेववाद को कई प्रकार की विकृतियों की जड़ मानते है इसीलिए वह एक ईश्वर की बात करते हैं। जब ईश्वर एक होगा तब न संप्रदाय गत परस्पर श्रेष्ठता का भाव होगा और न ही आपसी वैमनस्यता। अवतारवाद एवं बहुदेववाद का खण्डन एवं एक ईश्वर की संकल्पना निस्संदेह संतों पर इस्लाम के प्रभाव के कारण है। इसे उपनिषेदों के दर्शन से भी जोड़कर देखा जा सकता है।

(ग) मानसिक भक्ति- संतों की उपासना पद्धति पूर्णतया मानसिक, अभ्यांतरिक है। जिसे अंतस्साधना भी कहते है। इस साधना पद्धति में स्थूल एवं बाह्य साधनों का कोई महत्व नहीं है। इस साधना पद्धति में न तो शास्त्रज्ञान की बोझिलता है, न योग की दुरुहता, न कर्मकाण्डों-बाह्याचारों का तामझाम। इसमें तो केवल भाव अपेक्षित है। प्रभु के प्रति सच्ची श्रद्धा, उत्कट राग और मन-वचन कर्म की निष्कलुषता होनी चाहिए। यह 'भाव भगति' है जिसे निरक्षर एवं साधनहीन भी साध सकता हैं, यदि उसके अंदर प्रभु के प्रति भाव है। सरल होते हुए भी यह अत्यंत कठिन साधना है, क्योंकि संसार में लिप्त चित्त को ईश्वरोन्मुख करना सहज नहीं है।

(घ) नाम स्मरण का महत्व- संत कवियों ने 'नाम स्मरण' को सवाधिक महत्व दिया है। 'सच्चा सुमिरन' ही भवबंधन को काटने वाला है, ब्रह्म का साक्षात्कार कराने वाला है। विषय-

वासनाओं से चित्त को विमुख कर पूरी एकाग्रता एवं तन्मयता के साथ प्रभु के नाम का जप उसका स्मरण ही 'सुमिरण' है। सच्चा सुमिरण कैसा है, इसे बतलाते हुए कबीर कहते हैं-

सहजो सुमिरन कीजियै, हिरदै माहिं छिपाई।
होठ होठ सूं ना हिले सकै नहिं कोई पाई।।

नाम स्मरण से ही भला होगा, किसी और माध्यम से नहीं-'**कबीर कहता जात है सुनता है सब कोय/राम कहे भला होयगा, नहिं तर भला न होय।'** दादू भी हृदय में 'नाम' को संजोकर रखने को कहते है, क्योंकि वह समस्त सांसारिक सुखों से भी अनमोल है, वह कहते हैं-

दादू नीका नांव है सो तू हिरदै राखि।
पाखण्ड परपंच दूर करि सुनि साधु जन की साखि।'

कालिकाल में मुक्ति मात्र नाम स्मरण से मिल जायेगी, रैदास कहते हैं-

सुत जुग, सत, भेता जगी, द्वापर पूजा चार।
तीनों जुग तीनों हढ़े, कलि केवल नाम-आधार।।'

'नाम स्मरण' भाव-भगति का ही रूप हैं। 'नाम स्मरण' पर सर्वाधिक जोर देकर संतों ने भक्ति क्षेत्र में जहाँ एक ओर शास्त्र और पुरोहित की भूमिका को अनावश्यक बना दिया, वहीं दूसरी ओर भक्ति का एक ऐसा सरल और लोकग्राह्य रूप प्रस्तुत कर दिया जो मिथ्याडम्बरो-बाह्याचारों से मुक्त थी। दरअसल 'नाम स्मरण' भक्ति का सरलतम रूप हैं।

(ङ) गुरु महिमा- संतों ने गुरु के प्रति अत्यंत श्रद्धा व्यक्त की है। सद्गुरु ही विषय-वासनाओं की निरर्थकता का बोध कराता है, वह ज्ञानदीप जलाता है जिससे भीतर-बाहर उजियारा हो जाता है, हृदय में प्रभु प्रेम रुपी बीज रोपता है। सद्गुरु बड़े सौभाग्य से मिलता है। उस व्यक्ति का जीवन सार्थक हो जाता है, जिसे सद्गुरू मिलता है। इसीलिए कबीरदास कहते-

गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु अपने गोविंद दियो बताय।।

सदगुरू अपनी दीक्षा, अपने उपदेश से शिष्य को प्रभु प्रेम से सराबोर कर देता है, जिससे शिष्य रसमग्न हो जाता है, उसे ब्रह्मानंद की अनुभूति होने लगती है, वह आत्माराम हो जाता है। तभी तो कबीर कहते हैं-

सद्गुरु हमसे रीझकर कह्या एक प्रसंग।
बादल बरसा प्रेम का भीज गया सब अंग।।

संतों के यहाँ दिखलाई पड़ने वाली गुरु महिमा सिद्धों-नाथों का प्रभाव है। सिद्धों-नाथों के यहाँ भी गुरु के के प्रति अत्यंत श्रद्धा भाव प्रकट किया गया है।

(च) मिथ्याडम्बरों एवं रूढ़ियों का विरोध- संत कवियों ने व्रत, तप, तीर्थ, यज्ञ, रोजा, नमाज, मूर्तिपूजा, अंधविश्वास, आदि का विरोध किया है। वे जहाँ कहीं भी, छल, छद्म, झूठ-फरेव देखते हैं उसका विरोध करते है। उनकी दृष्टि में भक्ति के लिए बाह्याडम्बर नहीं भाव अनिवार्य है। उनके विरोध के केन्द्र में शास्त्र एवं पुरोहित हैं, क्योंकि बार-बार शास्त्रों का हवाला देकर पुरोहित लोग समाज में मिथ्याडम्बर एवं अंधविश्वास फैलाते हैं, समाज में ऊँच-नीच का भेदभाव पैदा करते हैं। वे 'कागद लेखी' पर नहीं 'आँखिन देखी' पर विश्वास करते है। प्रेम को पोथी ज्ञान से श्रेयस्कर मानते हैं- कबीर कहते हैं-**'पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय/ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय।'**

भक्ति शास्त्र के ज्ञान और बाध्य विधि-विधान से नहीं प्रेम से ही संभव होती है। प्रेम से ही परमेश्वर को साधा जा सकता है। अतः साधना पथ में किसी भी प्रकार का आडम्बर व्यर्थ है, बकवास है। कबीर ने हिंदू-मुस्लिम, ज्ञानी-योगी, पंडित-मौलवी किसी को नहीं बख्शा है, बाह्याडम्बरों की भर्त्सना करते हुए वह कहते है-

'दुनिया कैसी बावरी, पाथर पूजन जाय।
घर की चकिया कोई न पूजे, जेहि का पीसा जाय।
कनवा फराय जोगी जटवा बढ़िलै
ढ़ाढ़ी बढ़ाय जोगी होय गैलें बकरा
जंगल जाय जोगी धुनिया रमालै
काम जराय जोगी बन गैले हिजरा।'

इसी तरह इस्लाम की रूढ़ियों पर प्रहार करते हुए कहते हैं'-

'कांकर पाथ जोरि के मस्जिद लई बनाय
ता चढ़ि मुल्ला बाग दे, बहिरा हुआ खुदाय।'

इसी तरह रैदास भी बांह्याचारों को भक्ति न मानते हुए कहते हैं-

'ऐसी भक्ति न होई रे भाई, राम नाम बिन जो कछू करिये, सो सब भरम कहाई।।
भक्ति न निद्रा साधै, भक्ति न बैराग बाँधे, भक्ति नहीं सब बेद बड़ाई।।
भक्ति न मुण्ड मुँड़ाई, भक्ति न माल दिखाई, भक्ति न चरन धुवांये, भक्ति न गुनी कहाये।।

(छ) जातिगत एवं साम्प्रदायिक भेदभाव-वैमनस्य का विरोध- संतकवि मनुष्य मात्र की एकता-समता के प्रचारक-प्रसारक हैं। उन्होंने मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखा है ब्राह्मण-शूद्र या हिंदू-मुसलमान के रूप में नहीं। उनकी दृष्टि में मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से अपने आचरण से श्रेष्ठ बनता है। कबीर कहते हैं 'जांति-पांति पूछै नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।' परमतत्व परमेश्वर समस्त चराचर जगत में व्याप्त है, सभी मनुष्यों में उसी का अंश विद्यमान है। इसीलिए भेदभाव निरर्थक हैं। अपने-अपने ईश्वर को बड़ा बतलाने वाले हिंदू-मुसलमान दोनों को कबीर फटकारते हैं और राम-रहीम की एकता की बात करते हैं। ईश्वर एक ही है, भले उसके नाम भिन्न-

भिन्न हो। अतः सांप्रदायिक भेदभाव को छोड़कर भाईचारे के साथ रहना चाहिए। जांति-पांति के विरोध की प्रेरणा संत कवि सिद्धों-नाथों से पाते हैं। सिद्धों-नाथों की तरह संतों में भी अधिकांश समाज के निचले वर्ग से आये थे, जातीय भेदभाव के को उन्होंने झेला था। इसी कारण उनकी वाणियों में जाति व्यवस्था के नकार का इतना गहरा स्वर मिलता है।

(ज) सांसारिकता के प्रति उदासीनता- संत कवि सांसारिक विषय वासनाओं, सांसारिक सम्बन्धों को खोखला,, निस्सार मानते है। माया के बंधन में ही फँसकर मनुष्य उचित-अनुचित का भेद भूल जाता है, नश्वर जीवन और संसार को वास्तविक मान लेता है, फलतः उसे अपने वास्तविक स्वरुप का बोध नहीं हो पाता और वह भवबंधन में जकड़ता चला जाता है। इसीलिए संतों ने सांसारिक सुख-सुविधाओं, नेह-नातों से उदासीन रहने का उपदेश दिया है, इस काया और माया की नश्वरता और नि-स्सारता का बोध उनमें बराबर बना रहता है। रैदास कहते हैं-

जल की भीति पवन का थम्भा, रकत बूँद का गारा।
हाड़ मांस की नाड़ी को पिंजर, पंखी बसै बिचारा।।
प्रानी किआ' मेरा किआ तेरा, जैसे तरुवर पंखि बसेरा।
राखउ कंधउ सारउ नीवां, साढ़े तीन हाथ तेरी सीवां।
बंके बाल पाग सिर डेरी, इहु तन होइओ भसम की ढेरी
ऊँचे मंदर सुंदर नारी, राम नाम बिनु बाजी हारी।।

ध्यान देने वाली बात है कि संत कवि, सांसारिक से अनासक्त होने की बात करते है, किंतु घर-परिवार को त्यागकर जंगल जाकर धूनी रमाने की बात नहीं करते हैं। संसार में रहते हुए सांसारिक प्रपंचों से बचकर परमात्मा की भक्ति ही उन्हें काम्य है। चाहे कबीर हों या रैदास, सभी अपना-अपना व्यवसाय, काम-धाम करते हुए भक्ति करते हैं। उनकी भक्ति एवं जीवन में कर्मण्य जीवन का संदेश निहित है।

(झ) रहस्यवादी प्रवृत्ति- संतकाव्य में रहस्यात्मक प्रवृत्ति भी मिलती है। योग साधना के प्रभाव के कारण इड़ा-पिंगला, कुण्डलिनी जागरण, चक्रभेदन, सहस्रार चक्र, अनहद नाद, शून्य चक्र, गगन गुफा, उल्टी गंगा जैसी यौगिक शब्दावली संतों के यहाँ मिलती है। कहीं ब्रह्म के स्वरूप, उसकी महिमा का वर्णन है तो कहीं साधना की प्रक्रिया का। आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध का उद्घाटन करते हुए कबीर कहते हैं-

'जल में कुंभ कुंभ में जल भीतर बाहर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहिं समाना, यह तत् कहो गयानी।।'

साधनात्मक रहस्यवाद को रैदास के यहाँ भी देखा जा सकता है, वह कहते हैं कि मैं अपनी साधना द्वारा गंगा को उलट कर जमुना में मिला दूँगा, और बिना जल के ही स्नान करूँगा-

उल्टी गंग जमुन में ल्याऊँ, बिन ही जल मज्जन कहा पाऊँ।
लोचन भरि भरि बिम्ब निहारुँ, ज्योति विचारि न और निहारुँ।'

सूफियों के प्रभाव स्वरुप संतों के यहाँ भावनात्मक रहस्यवाद भी दिखलाई पड़ता है, जब संत कवि दांपत्य रूपकों द्वारा आत्मा-परमात्मा के सम्बन्धों को प्रकट करते हैं, कबीर राम को पति और स्वयं को दुल्हिन मानते हुए कहते हैं-

दुलहिन गावउ मंगलचार, हम घर आये हो राजाराम भतार।
रामदेव मोहे व्याहन आये मैं जोबन मतमाती
रामदेव संग भांवर लेहूं, धनि धनि भाग हमार।
सुर तैंतीस कोटि आये, मुनिवर सहस उठासी।
कहैं कबीर हम ब्याह चलै हैं, पुरुष एक अविनाशी।।

प्रियतम परमात्मा के विछोह से व्याकुल होकर रैदास कहते हैं-

'कह रैदास स्वामी ते बिछुरै एक पलक जुग जाई।
भोर भयो मोहि इक टक जोवत तलफत रजनी जाई।।'

(ञ) नारी के प्रति दृष्टिकोण- संतों ने नारी को माया, 'महा ठगिनी' के रूप में देखा। नारी संसर्ग के कारण व्यक्ति का विवेक भ्रष्ट हो जाता है, वह परमात्मा से विमुख हो जाता है और नारी संसर्ग जन्य सुख को ही वास्तविक सुख मान लेता है। नारी माया है, मोह फाँस में बाँधकर वह साधक को साधनाच्युत कर देती है, उसे दिग्भ्रमित कर विषय-वासनाओं में उलझा देती है। इसीलिए संतों ने नारी से दूर रहने की बात कही है कबीर कहते हैं- **नारी की झाई परत अंधा होत भुजंग/कबिरा तिनकी कौन गति जे नित नारी के संग।** लेकिन नारी के पवित्रता रूप की वह सराहना करते हैं, उसके प्रति सम्मान का भाव रखते हैं-

'पतिव्रता मैली भली, काली कुचित कुरुप।
पतिव्रता के रुप पे वारों कोटि सरुप।।'

नारी के प्रति संतों के दृष्टिकोण को हम प्रगतिशील एवं उदार नहीं कह सकते हैं। संतों की तमाम प्रगतिशील भूमिकाओं के बावजूद यह उनकी एक खामी है। इस मामले में वह युगीन सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर पाते। दरअसल संत कवि जिस मध्यकालीन समय और समाज की उपज हैं वह समाज नारी को या तो भोग्या मानता है या पथभ्रष्टा। नारी को साधना पथ में बाधक, चरित्र को भ्रष्ट बनाने वाली नारी सम्बन्धी तत्कालीन समाज की जो सोच है, संत कवि उससे उबर नहीं पाते।

(ट) अभिव्यंजना पक्ष- संतों ने लोक भाषा का प्रयोग किया है, उनकी भाषा अनगढ़ और सरल हे। उसका कोई एक निश्चित रूप नहीं, उसमें अवधी, भोजपुरी, ब्रज, खड़ी बोली, राजस्थानी, अरबी, फारसी का मिश्रण है। विभिन्न बोलियों-भाषाओं के शब्दों का मिश्रण होने के कारण ही उनकी भाषा को 'सधुक्कड़ी भाषा' कहा गया है। सामान्यतः संत कवि निरक्षर थे, 'मसि कागद छुयो नहीं' वाली कबीर की बात सभी संतों पर लागू होती है। कविताई उनका उद्देश्य भी नहीं हैं, इसलिए उनके यहाँ कलात्मक सजगता, कलात्मक परिपूर्णता नहीं है। किंतु

भक्ति की तन्मयता, सीधी-सच्ची बात के कारण उनकी कविता असरदार बन पड़ी है। शैली की दृष्टि से कहीं उपदेशात्मक शैली है तो कहीं वर्णनात्मक शैली। तत्व चिंतन के समय गुरु-गंभीर शैली है तो सामाजिक कुरीतियों, बाह्याडम्बरों पर प्रहार करते, समय हास्य-व्यंग्यात्मक शैली है। भक्ति की विह्वलता के क्षणों में संतों की वाणी अत्यंत भावात्मक हो उठती है। अपने अभिप्राय को प्रकट करने के लिए जब-तब वे प्रतीकों का भी सहारा लेते है, बहुधा वे लोक जीवन से प्रतीकों को चुनते है। उलटवासियों में हमें अत्यंत प्रतीकात्मक एवं गूढ़ अर्थ व्यंजक भाषा दिखलाई पड़ती है। उनकी उलटवासियाँ कौतूहलजनक हैं। अलंकार भी संत काव्य में खूब मिलते हैं किन्तु ये पूर्वनियोजित नहीं होते, अलंकार अत्यंक स्वाभाविक रूप में आये हैं। रूपक, उपमा, दृष्टांत, उत्प्रेक्षा, श्लेष, यमक और अनुप्रास अलंकार संत काव्य में ज्यादा प्रयुक्त हुए हैं। रस की दृष्टि से शांत रस की प्रधानता है, वैसे दाम्पत्य रूपकों द्वारा भक्ति की व्यंजना में श्रृंगार रस, ब्रह्म की विराटता के वर्णन में अद्भुत रस, कर्मकाण्डों पर प्रहार करते समय हास्य रस, देह की क्षणभंगुरता, और प्रेतादि के वर्णन में वीभत्स रस, माया से जूझते हुए साधनापथ पर अग्रसर साधक के वर्णन में वीर रस को देखा जा सकता है। संत काव्य मुख्यतः साखी और 'सबद' के रूप में है। साखी की रचना दोहों में है, सबद गेय पदों में है। संत सुंदरदास ने सवैयों का भी प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है। छंद की दृष्टि सुंदरदास की रचनाएँ परिपक्व हैं। छंदशास्त्र का ज्ञान न होने के कारण संतों की रचनाओं में काफी अशुद्धियाँ भी मिलती हैं।

1.3.2 प्रमुख कवि

(1) कबीरदास- कबीर निर्गुण पंथ के प्रवर्तक है, अपने सरोकार एवं तेवर के कारण वह मध्यकाल के सबसे विद्रोही, प्रगतिशील और आधुनिक कवि है। उनके जन्म और जीवन के सम्बन्ध में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। उन्हें एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न माना जाता जिसे नीरु नामक जुलाहे ने पाला-पोसा। उन्हें रामानंद का शिष्य बतलाया जाता है, मुस्लिमों के अनुसार सूफी फकीर शेख तकी उनके गुरु थे। विद्वानों ने कबीर के जीवन को 1398-1518 ई. तक माना है। कबीर मुख्यतः संत है, तत्वज्ञानी हैं, उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की भक्ति की। उनकी भक्ति पर वैष्णवों की अहिंसा व प्रपत्ति-भावना, शंकर के अद्वैतवाद, सूफियों के प्रेमतत्व एवं सिद्धों नाथों का प्रभाव है। कबीर की भक्ति बाह्याचार मूलक न होकर आभ्यंतरिक है। उत्कट राग, अनन्यता, निष्कामता इस भक्ति के अनिवार्य अंग है। कबीर शास्त्रज्ञान की जगह स्वानुभूत ज्ञान को महत्व देते है, वह प्रेम को पोथी ज्ञान से श्रेयस्कर कहते है-पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय/ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।'

कबीर ने बाह्याचारों, कर्मकाण्डों-मंदिर, मस्जिद, व्रत-तप, रोजा-नमाज, मूर्तिपूजा, तीर्थ, यज्ञ का विरोध किया है। यही नहीं वह जातिगत भेदभाव और सांप्रदायिक वैमनस्यता का भी विरोध करते हुए मानव मात्र की एकता-समता का प्रतिपादन करते है। यही कबीर की कविता का विद्रोही और प्रगतिशील पक्ष है। वह चाहते है समाज में धर्म के नाम पर जो कुरीतियाँ, बाह्याडम्बर व्याप्त है वह समाप्त हो। सांसारिक प्रलोभनों में फंसा हुआ व्यक्ति सन्मार्ग पर अग्रसर हो, वह नैतिक व उदार बने। इसीलिए वह घर फूँकने की बात करते है। सत्य-शील-सदाचार युक्त

जीवन पर बल देते है। कबीर एक साहसी कवि है, बहुत कुछ को नकार देने का साहस है उनके पास। निर्भय होकर उन्होंने अपने समय और समाज के अन्तर्विरोधों केा सामने रखा। उनके रचनाकार व्यक्तित्व के कई आयाम है, जो उनकी रचनाओं में प्रकट होता है। डॉ0 रामचंद्र तिवारी लिखते हैं- 'गुरु के चरणों में प्रणत कबीर, आराध्य के प्रति दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव की व्यंजना करने वाले भक्त और रहस्यसाधक कबीर, सारे भेद-प्रभेदों से ऊपर उठकर समरस भाव में लीन सिद्ध कबीर, अखण्ड आत्म-विश्वास के साथ पंडित और 'शेख' पर चोट करने वाले व्यंग्यकार कबीर, अवधूत योगी की शक्ति और दुर्बलता दोनों से परिचित उसके समर्थ और सर्तक आलोचक कबीर, साधारण हिन्दू गृहस्थ के अंधविश्वासों पर निर्मम प्रहार करने वाले मस्त मौला कबीर और कथनी-करनी की एकता, निर्वैरता, निष्कामता, अनासक्तता, संतोष, निग्रह, दया, प्रेम, अहिंसा का उपदेश देने वाले सुधारक कबीर तथा अनुभव के सत्य को पाथेय बनाकर जीवन-पथ पर आगे बढ़ते हुए किसी से समझौता न करने वाले अक्खड़ कबीर के दर्शन हमें उनकी वाणियों में एक साथ होते हैं।' (कबीर-मीमांसा, पृष्ठ 151)

कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है। भाषा पर उनका जबरदस्त अधिकार है, इसीलिए हजारी प्रसाद द्विवेदी उन्हें भाषा का डिक्टेटर कहते है। 'बीजक' उनकी वाणियों का संग्रह है, जिसे उनके शिष्य धर्मदास ने संग्रहीत किया है। बीजक में 'साखी', 'सबद' और रमैनी है। कबीर मूलतः कवि नहीं है, 'मसि कागद छुयो नहीं, कलम गहयों नहीं हाथ' कहने वाले कबीर कहते हैं, 'तुम जिनि जानो गीत है, वे निज ब्रह्म-विचार' अपनी इस स्वीकारोक्ति के बावजूद कबीर हमारे सामने एक समर्थ कवि के रूप में आते हैं। उनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिए जा रहे है-

1. इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूँ जीव
लोही सींचौ तेल ज्यूँ, कब मुख देखौं, पीव।।

2. बिरह भुवंगम तव बसै, मंत्र न लागै कोइ।
नाम वियोगी ना जिवै, जिवै न बौरा होइ।।

3. संतों भाई आई ग्यान की आंधी रे
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी माया रहै न बाँधी रे।।
दुचिते की दोई थूँनि गिरानी बलेंडा टूटा।
त्रिसना छांनि परी धर ऊपरि दुरमति भाँडा फूटा।।

4. कह हिन्दु मोहि राम पियारा, तुरुक कहैं रहिमाना।
आपस में दोउ लरि मुये, मरम न काहु जाना।।

(2) रैदास- मध्यकालीन संतों में रैदास का स्थान महत्वपूर्ण है। वह कबीर की परम्परा में आते हैं। किंतु वह कबीर की तरह विद्रोही, आक्रामक, नहीं है। वह शांत, संयत और विनम्र है, कबीर की तरह उनकी वाणियों में डाँट-फटकार, हास-उपहास, व्यंग्य-प्रहार नहीं मिलता। उनके जीवन-काल के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। संभवतः उनका समय 14वीं-15वीं सदी रहा है। उनका

जन्म काशी में माना जाता है। वह चमार जाति के थे और जूता बनाने का काम करते थे। जिसका साक्ष्य उनकी रचनाओं से मिलता है। वह रामानंद के शिष्य और मीरा के गुरु कहे जाते हैं। अनुभूति की तरलता और अभिव्यक्ति की सरलता रैदास की वाणियों की विशेषता है। सिक्खों के धर्म ग्रंथ 'गुरु ग्रंथ साहिब' में उनकी रचनाएँ मिलती हैं। उनकी कवता का एक नमूना द्रष्टव्य है-

अब कैसे छूटै राम, नाम रट लागी।
प्रभु जी तुम चंदन हम पानी, जाकी अंग अंग बास समानी।
प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा।
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राती।
प्रभुजी तुम मोती हम धागा, जैसे सोने मिलत सुहागा।
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा, जैसी भक्ति करै रैदासा।

(3) नानक- नानक (1469-1538) नानक पंथ के प्रवर्तक हैं। उनका जन्म लाहौर के निकट तलवंडी नामक स्थान पर हुआ था, जो ननकाना साहब के नाम से प्रख्यात है। उनके दो पुत्र हुए- श्रीचंद ओर लक्ष्मीचंद। आगे चलकर श्रीचंद ने 'उदासी संप्रदाय' का प्रवर्तन किया। नानक घुमंत प्रवृत्ति के थे, चारों ओर खूब भ्रमण किया। उनकी रचनाएं **गुरु ग्रंथ साहिब** में संकलित है। उनकी कविता का एक नमूना नीचे दिया जा रहा हैं-

जो नर दुख में दुख नहिं मानै।
सुख सनेह अरू मय नहिं जाके, कंचन माटी जानै।।
नहिं निंदा नहिं अस्तुति जाके, लोभ, मोह अभिमाना।
हरष सोक ते रहै नियारो, नाहि मान अपमाना।।
आसा मनसा सकल त्यागि कै जग तें रहै निरासा।
काम, क्रोध जेहि परसे नाहि न तेहिं घट ब्रह्म निवासा।।
गुरु किरपा जेहि नर पै कीन्हीं, तिम्ह यह जुगुति पिछानी।
नानक लीन भयो गोविंद सों, ज्यों पानी संग पानी।।'

(4) दादू दयाल- दादू पर कबीर का गहरा प्रभाव है, उन्होंने 'दादू पंथ' नाम से अपना एक अलग पंथ चलाया। उनके जन्म और जाति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। उनका जन्म गुजरात के अहमदाबाद में हुआ, कुछ लोग उन्हें धुनिया जाति का मानते हैं, तो कुछ लोग ब्राह्मण। उनका समय 16वीं सदी है। उनके अनुयायियों में रज्जब, सुंदरदास, प्रागदास, जनगोपाल, जगजीवन जैसे प्रसिद्ध संत हैं। 'हरडे वाणी' नाम से उनकी रचनाओं का संकलन संतदास एवं जगन्नाथदास ने किया। 'अंगवधू' भी उनकी रचना है। वह प्रतिभाशाली कवि थे, निर्गुण उपासक होते हुए भी उन्होंने ईश्वर के सगुण रूप को भी स्वीकारा है। उनकी भाषा ब्रज हैं जिसमें राजस्थानी एवं खड़ी बोली का मिश्रण है। शैली सरल एवं सरस है। उनकी कविता का एक नमूना द्रष्टव्य हैं-

भाई रे! ऐसा पंथ हमारा।
द्वै पख रहित पंथ गह पूरा अबरन एक आधारा।
बाद विवाद काहु सो नाहीं मैं हूँ जग थें न्यारा।
समदृष्टि सूँ भाई सहज में आपहिं आप विचारा।
मैं, तै, मेरी यह मति नाहीं निरबैरी निरबिकारा।।
काम कल्पना कदे न कीजै पूरन ब्रह्म पियारा।
एहि पथि पहुँचि पार गहि दादू सो तब सहज संभारा।।

(5) मलूकदास- मलूकदास (1574-1682) का जन्म इलाहाबाद (उ0प्र0) में हुआ था। रतन खान और ज्ञानबोध इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। आत्मबोध, निर्गुण ब्रह्म की भक्ति, वैराग्य आदि इनकी रचनाओं के मूल विषय है। इनकी भाषा अवधी एवं ब्रज है, जिसमें अन्य बोलियों-भाषाओं का भी मिश्रण है।

(6) सुंदरदास- सुंदरदास (1596-1689) दादू के शिष्य थे, इनका जन्म जयपुर में धौंसा में हुआ। संत कवियों में सुंदरदास सर्वाधिक शिक्षित थे। इसी कारण उनकी रचनाओं में एक कलात्मक परिपक्वता दिखलाई पड़ती है। ज्ञान समुद्र और सुंदरविलास उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। तत्वज्ञान, निगुर्णोपासना, विरक्ति आदि इनकी रचनाओं के प्रधान विषय हैं।

(7) रज्जब- संत रज्जब (1567-1689) दादू के शिष्य हैं, इनका पूरा नाम रज्जब अली खाँ था। 'अंगवधू' नाम से उन्होंने दादू की रचनाओं को संकलित किया।

1.3.3 उपलब्धियाँ -

संत कवियों का सबसे बड़ा महत्व भक्ति को सरज-सरल बनाने में है। वे निचली जातियों से आए थें, उनकी जाति-पांति विरोधी और मानवतावादी विचारों से सदियों से अस्पृश्य, उपेक्षित वर्ग में एक स्फूर्ति और आत्मविश्वास का संचार हुआ। जातिभेद का विरोध करने वाले, राम-रहीम की एकता की बात करने वाले संतों की वाणियों सं समाज में मानववाद का प्रसार हुआ। संत कवियों ने सत्य-शील-सदाचार से युक्त, सांसांरिक प्रपंचों से उदासीन एंव कर्मण्य जीवन का संदेश दिया, इससे समाज को एक नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा मिली। यही नहीं उन्होंने साहित्य को लोक से जोड़ा, उनके साहित्य से जहाँ लोक को एक प्रेरणा व शक्ति मिली, वहीं लोक से जुड़कर साहित्य भी समृद्ध हुआ। संत काव्य की एक बहुत की क्रांतिकारी और प्रगतिशील भूमिका रही है।

3.4 प्रेममार्गी सूफी काव्य

निर्गुण भक्ति काव्य की दूसरी धारा जिसे प्रेमाश्रयी शाखा कहा जाता है: मुस्लिम सूफी कवियों द्वारा निर्मित है। इसमें प्रेम मुख्य तत्व है। इसमें लौकिक प्रेम कथाओं को आधार बनाकर

अलौकिक प्रेम की व्यंजना की गयी है। संत काव्य जहाँ-मुक्तक के रूप में है, वहीं प्रेममार्गी सूफी काव्य प्रबंधात्मक है। आइए इस काव्य की प्रवृत्तियों की चर्चा करें।

1.4.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ-

(क) कथा वस्तु- इन काव्यों में प्रेमकथा का चित्रण मिलता है। इन प्रेम कथाओं का आधार, पौराणिक, कथा, लोक कथा या ऐतिहासिक कुछ भी हो सकता है। प्रायः कवियों ने लोक-प्रचलित कथाओं को लिया है। लोकप्रचलित कथानक रूढ़ियों द्वारा कथा को बुना गया है जैसे- नायिका का 'वती' नाम का होना जैसे- पद्मावती, नायिका का सम्बन्ध किसी द्वीप जैसे मलयद्वीप, सिंहलद्वीप का होना, चित्रदर्शन, गुणश्रवण, स्वप्नदर्शन द्वारा नायक के हृदय में प्रेमोत्पत्ति, नायिका की खोज में नायक का साधु-संयासी के रूप में घर से निकलना एवं विभिन्न विघ्न बाधाओं का सामना करना, किसी मंदिर या फुलवारी में नायक-नायिका का मिलन, नायिका के पिता, भाई या प्रेमी से नायक का द्वन्द, देवताओं या किसी सिद्ध की सहायता से नायक को सफलता मिलना इत्यादि। इन काव्यों में इतिहास और कल्पना का मेल दिखलाई पड़ता है। रहस्य, रोमांच, संघर्ष, घटना बहुलता आदि इन कथाओं की विशेषता है।

(ख) भाव व्यंजना- इन कथाओं का आधार प्रेम होने के कारण श्रृंगार रस की प्रधानता है। संयोग, वियोग दोनों पक्ष यहाँ देखे जा सकते हैं। वियोग वर्णन अधिक है। बारहमासा में हम वियोग की अत्यंत मार्मिक व्यंजना पाते हैं। नायक को कई तरह के कष्टों-चुनौतियों से जूझना पड़ता है, जहाँ उसके शौर्य-साहस का पता चलता है।

(ग) चरित्र प्रधानता- प्रेमाख्यानक काव्य चरित्र प्रधान हैं। नायक और नायिका दोनों प्रायः उच्चकुल के और विशेष गुणों से युक्त होते है। नायक-नायिका के मार्ग में विघ्न-बाधा उत्पन्न करने वाले चरित्र भी हैं। इसके अतिरिक्त कई मानवेतर चरित्र भी यहाँ दिखलाई पड़ते हैं, जिनकी पूरी कथा में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं, जैसे-पक्षी, अप्सरा, राक्षस, देवता इत्यादि।

(घ) अलौकिक प्रेम का संकेत- इन कथाओं का आधार लौकिक है, नायक-नायिका का प्रेम लौकिक धरातल पर विकसित होता हैं, किन्तु इन कथाओं में जब-तब ईश्वरीय सत्ता की ओर संकेत, अलौकिक प्रेम की व्यंजना भी दिखलाई पड़ती है। नायक आत्मा का और नायिका परमात्मा का प्रतीक रहती है। इसी कारण इन कथाओं में प्रतीकात्मक आ गई है और भावात्मक रहस्यवाद की सृष्टि हुई है।

(ङ) वस्तु वर्णन शैली- इन काव्यों में नायिका के सौन्दर्य, बारह मासा, प्रकृति के विभिन्न दृश्यों, सरोवर, पनघट, युद्ध, बारात, ज्योनार इत्यादि का ब्यौरेवार वर्णन मिलता है। वर्णन प्रायः अतिश्योक्ति पूर्ण रहता है, इन वर्णनों में कवि की कल्पनाशीलता भी प्रकट हुई है।

(च) अभिव्यंजना पक्ष- इन प्रबंध काव्यों पर फारसी की मसनवी शैली का प्रभाव है। प्रायः दोहा-चौपाई शैली का प्रयोग किया गया है। रचनाकारों ने प्रायः अवधी भाषा को अपनाया है,

किंतु कुछ प्रेमाख्यानक ब्रज-राजस्थानी भाषा में भी रचे गए है। समासोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक इत्यादि इस काव्य में बहुप्रयुक्त अलंकार है।

1.4.2 प्रमुख कवि -

(1) मुल्ला दाऊद- मुल्ला दाऊद ने 'चंदायन' नानम प्रेमाख्यानक काव्य की रचना की है इसमें लोरिक तथा चंदा की प्रेमकथा है। चंदायन से एक दोहा उद्धृत है-

पियर पात जस बन जर, रहेउँ काँप कुंभलाई।
विरह पवन जो डोलेउ, टूट परेउँ घहराई।।'

(2) कुतुबन- कुतुबन ने 'मृगावती' की रचना की है, जिसमें चंद्रनगर के राजा गणपति देव के राजकुमार और कंचनपुर के राजा रूपमुरारि की कन्या मृगावती की प्रेमकथा का वर्णन है। ग्रंथ का समापन मृगावती और रूक्मिनी के सती होने से होता है-

रुकमिनि पुनि वैसहि मरि गई। कुलवंती सत सों सति भई।।
बाहर वह भीतर वह होई। घर बाहर की रहै न जोई।।
विधि कर चरित न जानै आनू। जो सिरजा सो जाहि निआनू।।

(3) मंझन- मंझन कृत प्रेमाख्यानक है 'मधुमालती'। इसमें कनेसर नगर के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर और महारस नगर की राजकुमारी मधुलालती के प्रेम का वर्णन है। कल्पना का सुंदर प्रयोग, विस्तृत एवं हृदयग्राही वर्णन, अलौकिक प्रेम की व्यंजना इस कृति की विशेषता है। पद्मावत के पहले मधुलालती की बहुत अधिक प्रसिद्धि थी। जैन कवि बनारसीदास ने अपनी आत्मकथा में इसका उल्लेख किया है।

(4) मलिक मुहम्मद जायसी- जायसी सूफी कवियें में सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। वह शेरशाह सूरी के समकालीन थे। उनकी तीन पुस्तकें हैं-पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम। 'अखरावट' में वर्णमाला के एक-एक अक्षर को लेकर तत्वज्ञान सम्बन्धी चौपाईयां हैं। 'आखिरी कलाम' में कयामत का वर्णन है। 'पद्मावत' जायसी की सर्वाधिक लोकप्रिय रचना है। शुक्लजी के शब्दों में- 'जायसी की अक्षय कीर्ति का आधार है 'पद्मावत', जिसके पढ़ने से यह प्रकट हो जाता है कि जायसी का हृदय कैसा कोमल और 'प्रेम की पीर' से भरा हुआ था। क्या लोकपक्ष में, क्या अध्यात्म पक्ष में, दोनों ओर उसकी गूढ़ता, गंभीरता और सरसता विलक्षण दिखाई देती है।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 65)। पद्मावत में चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहल द्वीप के राजा गंधर्व सेन की कन्या पद्मावती के प्रेम का निरूपण है। कथा के उत्तरार्द्ध का एक ऐतिहासिक आधार भी है। पद्मावत की कथा प्रतीकात्मक है एक साथ यह लौकिक एवं अलौकिक दोनों धरातलों पर चलती है। पात्रों की प्रतीकात्मकता को स्पष्ट करते हुए जायसी लिखते हैं-

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा।।

गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुर जगत को निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा।।
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू।।

कथा का अंत दुखांत है। रत्नसेन के शव के साथ उसकी दोनों रानियां नागमती और पद्मावती सती हो जाती है। पद्मावती के सौन्दर्य, नागमती के विरह, रत्नसेन के साहस, शौर्य और अवध की लोक संस्कृति की सर्जनात्मक प्रस्तुति में जायसी को अद्भुत सफलता मिली है। उत्कृष्ट कवितत्व एवं भावव्यंजना के कारण ही जायसी हिंदी के श्रेष्ठ महाकाव्यकार माने जाते हैं।

(5) उसमान- उसमान ने 'चित्रावली' की रचना की है। वह जहाँगीर के समकालीन और गाजीपुर (उ0प्र0) के रहने वाले थे। 'चित्रावली' में नेपाल के राजकुमार सुजान और रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली के प्रेम का वर्णन है। चित्रावली के रचनाविधान पर जायसी का गहरा असर है।

1.4.3 उपलब्धियाँ-

सूफी कवियों ने हिंदू घरों में प्रचलित लोक कथाओं को आधार बनाकर काव्य प्रणयन किया जिसमें हिंदू-देवी-देवताओं, रीति-रिवाजों, विश्वासों का भी उदारतापूर्वक निरूपण हैं। इससे हिंदू-मुस्लिम के बीच सांस्कृतिक सामंजस्य को बल मिला। इन कवियों की दृष्टि सेक्युलर रही है। त्याग, साहस-शौर्य, संघर्ष से भरे जिस प्रेम को इन कवियों ने सिरजा है उससे आम जनता का सिर्फ मनोरंजन ही नहीं होता, अलौकिक आशयों से युक्त होने के कारण उसे रुहानी सुकून भी मिलता है। ये कवि ईश्वर प्रेम के साथ मानववाद का भी प्रचार करते है। लोकतत्त्व की दृष्टि से यह काव्य महत्वपूर्ण है, तत्कालीन परिवेश के सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से ये रचनाएँ उपादेय हैं। साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी के निरंतर विकास में इन कवियों का योगदान अविस्मरणीय है। साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी का जो चरमोत्कर्ष तुलसीदास के यहाँ दिखलाई पड़ता है उसकी भूमिका इन्हीं सूफी कवियों ने निर्मित की थी।

3.5 रामभक्ति काव्य

राम कथा आदिकाल से ही रचनाकारों को आकर्षित करती रही है। हिंदी में राम भक्ति काव्य की शुरुआत रामानंद से होती है, जिसे आगे चलकर तुलसीदास अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचाते हैं।

1.5.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ-

(1) भक्ति का स्वरूप- राम भक्त कवियों ने विष्णु के अवतार दशरथनंदन राम को अपना उपास्य माना है। उनके अनुसार दुष्टों के दलन और साधुओं की रक्षा के लिए ही प्रभु का अवतार होता है। लोमंगल ही अवतार का कारण है। रामभक्तों की भक्ति दास्य भाव की है। प्रभु के चरणों में भक्त अपना सर्वस्व अर्पित कर भक्ति करता है। कालांतर में रामभक्ति में रसिक भावना का

समावेश होता है। रामभक्ति में वैधी भक्ति अर्थात् शास्त्र सम्मत विधि निषेधके पालन को भी स्वीकार किया गया है। भक्ति के क्षेत्र में उदार होते हुए भी तुलसी के यहाँ शास्त्र और वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति एक आदर का भाव है।

(2) समन्वय भावना- रामभक्ति काव्य में समन्वय की चेष्टा निहित है। सगुण-निर्गुण, शैव-शाक्त, वैष्णव, लोक-परलोक, शास्त्र-लोक, गार्हस्थ्य और वैराग्य इत्यादि का तुलसी समन्वय करते हैं। यह समन्वय लोक मंगल के निमित्त है।

(3) लोकपक्ष- रामभक्ति काव्य में लोकमंगल, लोक धर्म, लोकरक्षा, लोकचिंता, लोक मानस की प्रधानता है। नारायण को यहाँ एक ऐसे नर के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो शक्ति-शील-सौन्दर्य का प्रतिमान है, जो कालिकाल के दुखों को हरने वाला है। राम कथा के माध्यम से तुलसी राजा, पति, पत्नी, भाई, सेवक, शिष्य का आदर्श प्रस्तुत करते है, जनता के अंदर दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से मुक्त, सर्वसुखद रामराज्य का स्वप्न पैदा करते हैं। यही नहीं तुलसी ने अपने समय के दुख-दारिद्रय और अकाल का भी मार्मिक अंकन किया है। **'कलि बारहि बार अकाल परै', 'खेती न किसान को भिखारी को भीख बलि', 'नहिं दारिद्रय सम दुख जग माहीं'** जैसी पंक्तियाँ इसकी प्रमाण हैं। दुख-दारिद्रय का जितना वर्णन अकेले तुलसी ने किया है, उतनी अन्य किसी मध्यकालीन कवि ने नहीं किया है।

(4) नारी एवं शूद्र के प्रति दृष्टिकोण- रामभक्ति काव्य में शूद्र एवं नारी विषय दृष्टि अन्तर्विरोध युक्त है। एक तरफ तुलसी राम का निषाद राज और शवरी के प्रति प्रेम दिखलाते है, रामचरित मानस में शम्बूक-प्रसंग को स्थान नहीं देते हैं तो दूसरी तरफ उनके यहाँ **'पूजहिं विप्र सकल गुण हीना', 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी सकल ताड़ना के अधिकारी'** जैसी उक्तियाँ भी हैं। तुलसी राम के समकक्ष सीता को स्थान देते है- **'सिया राम भय सब जग जानी',** वही दुसरी ओर गुलामी को नारी की दुर्दशा का कारण मानते है, इतना ही नहीं तुलसी नारी को सकल अवगुणों की खान कहते है, स्वतंत्रता से भ्रष्ट हो जाने के कारण उसकी स्वतंत्रता का निषेध भी करते हैं।

(5) अभिव्यंजना पक्ष- राम भक्ति काव्य प्रबंध और मुक्तक दोनों रूपों में मिलता है। प्रायः अवधी और ब्रज दोनों में रामकथा का प्रणयन किया गया। अवधी में 'रामचरित मानस' और ब्रज में 'रामचंद्रिका' प्रसिद्ध है। काव्यत्व की दृष्टि से रामभक्ति काव्य समृद्ध है। गेय शैली में भी रामकाव्य को रचा गया। दोहा, चौपाई, छप्पय, कुण्डलियाँ, सोरठा-सवैया, घनाक्षरी, तोमर आदि रामभक्ति काव्य में बहु प्रयुक्त छंद हैं।

1.5.2 प्रमुख कवि-

(1) स्वामी रामानंद- रामानंद का जन्म काशी में हुआ था। इनका समय 15वीं सदी है। रामानंद के शिष्यों में सगुण मार्गी एवं निर्गुणमार्गी दोनों शामिल है। उन्होंने राम की उपासना को सर्वाधिक

महत्व दिया। **'आरती कीजै हनुमान लला की, दुष्ट दलन रघुनाथ कला की'** प्रसिद्ध प्रार्थना उन्हीं की रचना है। गोस्वामी तुलसीदास रामानंद की ही शिष्य परम्परा में आते हैं।

(2) अग्रदास- अग्रदास कृष्णदास पयहारी के शिष्य हैं। इन्होंने सखी भावना से राम की भक्ति की है। रामभक्ति परम्परा में रसिक-भावना का समावेश इन्हीं की देन है। ध्यानमंजरी, अष्टयाम, रामभजन मंजरी, इत्यादि इनकी रचनाएं हैं।

(3) नाभादास- नाभादास अग्रदास के शिष्य हैं। 'भक्तिमाल' और अष्टयाम इनकी रचनाएं है। इनकी भी भाषा अग्रदास की तरह ब्रज है।

(4) ईश्वरदास- रामकथा विषयक ईश्वरदास की दो रचनाएँ हैं- 'भरतमिलाप' और 'अंगद पैज'

(5) गोस्वामी तुलसीदास- गोस्वामी तुलसीदास राम भक्ति धारा के सबसे लोकप्रिय रचनाकार हैं। इनके जन्म और जीवन के सम्बन्ध में कई जनश्रुतियाँ है। आचार्य शुक्ल ने तुलसी विरचित बारह ग्रंथों का उल्लेख किया है-दोहावली, कवित्त रामायण, गीतावली, रामचरित मानस, रामाज्ञा प्रश्नावली, विनय पत्रिका, रामललानहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी, कृष्ण गीतावली। रामचरित मानस उनकी कीर्ति का आधार है। 'लोकमंगल' तुलसी के काव्य का केन्द्र बिंदु है। उनकी रचनाओं से भक्त हृदयों की तृप्ति ही नहीं मिलती, समाज को अपना आदर्श भी मिलता है। तुलसी के राम चरित मानस के महत्व का उद्घाटन करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- 'भारत वर्ष का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय करने का अपार धैर्य ले कर आया हो। भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियां, साधनाएँ, जातियाँ, आचार, विचार और पद्धतियाँ प्रचलित हैं। तुसलीदास स्वयं नाना प्रकार के सामाजिक स्तरों में रह चुके थे। उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। उसमें केवल लोक और शास्त्र का ही समन्वय नहीं है अपितु गार्हस्थ्य और वैराग्य का, भक्ति और ज्ञान का भाषा और संस्कृति का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भावावेग और अनासक्त चिंता का समन्वय हुआ है। 'रामचरित मानस' के आदि से अंत तक दो छोरों पर जाने वाली पराकोटियों को मिलाने का प्रयत्न है। तुलसी ने अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं में साधिकार लिखा है। प्रबंध कला, चरित्र-चित्रण, अलंकार विधान, समर्थ भाषा, लोक की गहरी समझ, भक्ति की तन्मयता, उच्च मूल्यों की प्रतिष्ठा, शैलीगत वैविध्य, सभी दृष्टियों तुलसी में अद्वितीय हैं। शुक्ल जी कवि तुलसी का महत्व बतलाते हुए कहते है कि "हम निःसंकोच कह सकते हैं कि यह एक कवि ही हिंदी को प्रौढ़ साहित्यिक भाषा सिद्ध करने के लिए काफी है।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 95)

(6) केशवदास- केशवदास (1555-1617) की रामभक्ति विषयक रचना 'रामचंद्रिका' है। 39 प्रकाशों में विभक्त इस महाकाव्य पर प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक, अनर्घराघव, कादंबरी और नैषध का प्रभाव है। कहा जाता है कि उन्होंने रामचंद्रिका की रचना तुलसी की प्रतिस्पर्धा में की। केशव दरबारी कवि हैं, चमत्कारप्रियता, पांडित्य प्रदर्शन उनकी विशेषता है। रामचंद्रिका में वह छंदों, अलंकारों के नियोजन में ही उलझकर रह जाते हैं, रामकथा के मर्म का उद्घाटन नहीं कर पाते हैं।

1.5.3 उपलब्धियाँ -

राम भक्ति काव्य ने निराशा, अवसाद, कुंठा से भरी जनता के सामने राम जैसे सर्वसमर्थ, त्राणकर्त्ता को प्रस्तुत कर उसे शक्ति और सांत्वना प्रदान किया। जीवन को धर्म भाव से जीने की प्रेरणा प्रदान की। तुलसी ने रामचरित मानस द्वारा जो आदर्श प्रस्तुत किया, उसी के आधार पर उत्तर भारत की रीति-नीति निर्मित होती है। उनके द्वारा समन्वय के प्रयत्न से बिखराव एवं वैमनस्य की क्षीण स्थितियों को एक संतुलित मार्ग का पथ प्रशस्त हुआ। साहित्य की दृष्टि से राम भक्ति काव्य ने भाव और भाषा का मानक प्रस्तुत किया, साहित्य को लोकमंगल से जोड़ा। अवधी और ब्रज दोनों को साहित्यिक परिपूर्णता प्रदान करने में रामभक्त कवियों ने अविस्मरणीय योगदान दिया।

3.6 कृष्ण भक्ति काव्य

विष्णु के अवतारी रूप कृष्ण को लेकर पूर्वमध्यकाल में प्रचुर मात्रा में काव्य रचा गया। कृष्ण के ईश्वरीय रूप की प्रतिष्ठा भागवत में होती है। जिसका रचनाकाल 6वीं और 9वीं सदी के बीच माना जाता है। दक्षिण के आलवार भक्तों के यहाँ भी कृष्णभक्ति प्रचलित थी। वल्लभाचार्य और मध्वाचार्य ने कृष्ण भक्ति को शास्त्रीय आधार दिया और उसे जनता में प्रचारित किया। कृष्ण भक्ति काव्य का आधार भागवत पुराण है। भागवत में वर्णित कृष्ण की लीलाओं की अत्यंत सरस प्रस्तुति कृष्ण भक्ति काव्य में की गई है। आइए कृष्ण भक्ति काव्य की प्रवृत्तियों का हम अध्ययन करें।

3.6.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ-

(क) लीला गायन- कृष्णभक्तिकाव्य में अवतारी कृष्ण की विविध लीलाओं का गान किया गया है। ये लीलाएं मुख्यतः कृष्ण के शिशु रूप एवं किशोर वय की है। जैसे-बालकृष्ण की विविध चेष्टाएँ, माखनचोरी, गोदोहन, गोचारण, पूतना वध, कालिया दमन, दान लीला, मान लीला, चीरहरण, लीला, रास लीला, मथुरा गमन, कंस वध, कुब्जा प्रसंग, उद्धव संदेश इत्यादि। लीलागान के क्रम में वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भाव की भक्ति प्रकट हुई है। वस्तुतः लीलागान ही कृष्ण भक्त कवियों का उद्देश्य है। कृष्ण की लीलाओं के चित्रण में इन कवियों की कल्पनाशीलता और सहृदयता अत्यंत प्रभावशाली रूप में प्रकट हुई है। इस मामले में कृष्ण भक्त कवियों में सूर अद्वितीय है। वात्सल्य और श्रृंगार की विविध मनोदशाओं, सूक्ष्म स्थितियों का उन्होंने बहुत बारीक और विशद् अंकन किया है, कोई भी पक्ष उनसे छूटा नहीं है। ईश्वर रूप श्रीकृष्ण की लीलाओं को उन्होंने लौकिक धरातल पर चित्रित किया है, जो बहुत ही आत्मीय लगता है। समूचे कृष्ण भक्ति काव्य में राग और रस की अजस्र धारा प्रवाहित होती है।

(ख) लोकरंजन- कृष्ण की लीलाओं का उद्देश्य लोकरंजन है। कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण के लोकरंजनकारी, लीला पुरुषोत्तम रूप को ही सर्वाधिक महत्व दिया है। उनके योगी और योद्धा

रूप के चित्रण में उनका मन कम रमता है। इसी कारण कृष्ण भक्ति काव्य में वात्सल्य एवं श्रृंगार का चित्रण अधिक है।

(ग) शास्त्रज्ञान की अनावश्यकता- कृष्ण भक्त कवियों ने भक्ति के लिए शास्त्रज्ञान को अनावश्यक माना है। उनकी भक्ति रागानुगा भक्ति है। इस भक्ति के लिए हरि के प्रति उत्कट राग, सच्ची समर्पणशीलता अपेक्षित है न कि ज्ञान। भ्रमरगीत प्रसंग में तो गोपियों द्वारा ज्ञान का खण्डन, शास्त्र की उपेक्षा की गई, और प्रेम को वरेण्य, सर्वथा मंगलकारी माना गया है।

(घ) निर्गुण-सगुण दोनों की स्वीकृति- कृष्ण भक्ति काव्य में ब्रह्म के निर्गुण रूप को स्वीकार करते हुए अवतारी कृष्ण को परमब्रह्म परमेश्वर के रूप में देखा गया है। निर्गुण ब्रह्म की साधना दुस्साध्य है, निर्गुण ब्रह्म अनुभवातीत है, 'गूंगे के गुड़' के समान है, इसीलिए इन भक्तों ने ब्रह्म के सगुण रूप को स्वीकार कर लीला गान किया है। ब्रह्म लीला के लिए ही धरती पर अवतरित होता है।

(ङ) अभिव्यंजना पक्ष- कृष्ण भक्ति का मुख्य केन्द्र ब्रज क्षेत्र रहा है, इसीलिए अधिकांशतः कृष्ण भक्ति परक काव्य ब्रजभाषा में रचा गया। कृष्ण के समग्र जीवन की अपेक्षा उनके जीवन के कुछ पक्षों पर केन्द्रित होने के कारण मुक्तक काव्य की रचना ज्यादा हुई। कृष्ण भक्ति काव्य गीति शैली में रचा गया। इसमें गीतिकाव्य की सभी प्रवृत्तियों भावात्मकता, संक्षिप्तता, संगीतात्मकता, सुकोमल पदावली इत्यादि विद्यमान है। छंद की दृष्टि से यहाँ कवित्त, सवैया, छप्पय, कुण्डलिया, गीतिका, हरिगीतिका का प्रयोग अधिक हुआ है।

3.6.2 प्रमुख कवि-

(1) सूरदास - कृष्ण भक्त कवियों में सर्वाधिक ऊँचा स्थान सूरदास का है। उनका जन्म 1478 में 'सीही' नामक गाँव में हुआ और देहावसान 1583 ई. में हुआ। उनके अंधत्व को लेकर अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित है। उन्होंने बल्लभाचार्य से दीक्षा ली। बल्लभाचार्य से दीक्षित होने के पूर्व उनकी भक्ति दास्य भाव की थी। बल्लभ ने उनसे लीलागान करने कहा। उन्हें 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहा जाता है। उनकी मृत्यु पर दुखी होकर विट्ठलनाथ ने कहा था- **'पुष्टिमारग को जहाज जात है सो जोको कछु लेना होय सो लेउ।'** सूरदास की तीन रचनाएं हैं-सूरसागर, साहित्यलहरी और सूरसारावली। सूरसागर की रचना भागवत की तरह द्वाद्वश स्कंधों में हुई है। 'साहित्य लहरी' में उनके दृष्टिकूट पदों का संग्रह है जिसमें प्रतीकात्मक शैली में राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन है। अलंकार निरूपण की दृष्टि से भी यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है। 'सूरसारावली' की प्रामाणिकता संदिग्ध है। सूरसागर ही सूर की सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है। कृष्ण भक्ति ही इसका मुख्य विषय है। सूर का ध्यान कृष्ण के लोकरंजनकारी रूप पर अधिक है। इसमें कृष्ण के बालकाल से लेकर कैशोरवय तक की विविध लीलाओं का अत्यंत हृदयहारी चित्रण हुआ है। आचार्य शुक्ल का कहना है-'इनके सूरसागर में वास्तव में भागवत के दशम स्कंध की कथा संक्षेपतः इतिवृत के रूप में थोड़े से पदों में कह दी गई हैं। सूरसागर में कृष्णजन्म से लेकर श्रीकृष्ण के मथुरा जाने तक की कथा अत्यंत विस्तार से फुटकल पदों में गायी गयी हैं। भिन्न-भिन्न

लीलाओं के प्रसंग को लेकर इस सच्चे रसमग्न कवि ने अत्यंत, मधुर और मनोहर पदों की झड़ी-सी बाँध दी है। इन पदों के सम्बन्ध में सबसे पहली बात ध्यान देने की यह है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्य रचना होने पर भी वे इतने सुडौल और परमार्जित हैं। यह रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यपूर्ण है कि आगे होने वाले कवियों की श्रृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठी-सी जान पड़ती है। अतः सूरसागर किसी चली आती हुई गीतिकाव्य परंपरा का-चाहे वह मौखिक ही रही हो-पूर्ण विकास सा प्रतीत होता है।' (हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ0-108) नवीन प्रसंगों की उद्भवना, भावात्मकता, अन्तर्मन का उद्घाटन, विभिन्न काव्यांगों का सुंदर प्रयोग, गीतात्मकता, प्राजंल एवं प्रवाहपूर्ण भाषा, ब्रज के लोक जीवन की जीवंत प्रस्तुति, अपूर्व रसात्मकता के कारण सूरसागर हिन्दी साहित्य की एक श्रेष्ठकृति है जो सूरदास को महाकवि के रूप में प्रतिष्ठित करती है। सूरसागर 'जीवनोत्सव' का काव्य है और सूरदास भावाधिपति हैं। बालकृष्ण की विविध लीलाएँ नंद-यशोदा का वात्सल्य, गोपियों का निर्मल और उमंग से भरा प्रेम, भ्रमरगीत-सूरसागर के उत्कृष्ट प्रसंग हैं। सूरसागर में शांत, दास्य, वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भाव की भक्ति देखी जा सकता है वैसे प्रमुखता वात्सल्य और माधुर्य भक्ति की है।

(2) नंददास- साहित्यिकता की दृष्टि से अष्टछाप के कवियों में सूरदास के बाद नंददास का स्थान आता है। उनकी रचनाएं है-अनेकार्थ मंजरी, मानमंजरी, रसमंजरी, रूपमंजरी, विरह मंजरी, प्रेम बारह खड़ी, श्याम सगाई, सुदामाचरित, रूक्मिणी मंगल, भंवर गीत, रासपंचाध्यायी, सिद्धांत पंचाध्यायी, दशमस्कंधभाषा, गोवर्धनलीला, नंददासपदावली। 'भंवरगीत' और 'रासमपंचाध्यायी' उनकी श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। उनकी भाषा अत्यंत परमार्जित है। प्रसंगानुकूल सटीक शब्दों के चयन के कारण नंददास को 'जड़िया' कहा जाता है।

(3) हितहरिवंश- हितहरिवंश (1505-1552) का जन्म उ0प्र0 के सहारनपुर जिले के देवबंद में हुआ। 'हितचौरासी' उनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। उनकी भक्ति माधुर्य भाव की है। उन्होंने राधावल्लभ संप्रदाय का प्रवर्तन किया। सरसता और भाषा का प्रांजल रूप उनकी रचनाओं की विशेषता है।

(4) स्वामी हरिदास- स्वामी हरिदास (1535-1578) ने सखी सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया, जिसे टट्टी संप्रदाय भी कहा जाता है। हरिदास एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। अकबर के दरबारी तानसेन को इन्हीं का शिष्य बतलाया जाता है। 'सिद्धांत के पद' और 'केलिमाल' उनकी रचनाएं है।

(5) मीराबाई- मीराबाई (1504-1558) चित्तौड़ के राजघराने की थी। उनका विवाह चित्तौड़ के राणा सांगा के पुत्र भोजराज से हुआ, था किंतु कुछ ही वर्षों बाद वह विधवा हो गयी। मीरा रचित ग्यारह ग्रंथ बतलाये जाते है, जिनमें केवल 'स्फुट पद' ही प्रामाणिक है। गिरधर गोपाल के प्रति अगाध प्रेम ही मीरा की रचनाओं का मुख्य विषय है। उनकी रचनायें मध्यकालीन सामंती परिवेश में नारी की पीड़ा और उसकी मुक्ति की आकांक्षा को भी प्रकट करती हैं। उनकी भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रज है।

(6) रसखान- रसखान (1533-1618) ने अत्यंत सरस और मार्मिक रचनाएँ की हैं। उन्हें वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित बतलाया जाता है। सुजान रसखान, प्रेम वाटिका, दान लीला, अष्टयाम-उनकी रचनाएं है। मुस्लिम होकर भी उन्होंने कृष्ण भक्तिपरक रचनाएं लिखी, यह उनकी उदारता का प्रमाण है।

3.6.3 उपलब्धियाँ-

कृष्ण भक्ति कवियों ने अपनी रचनाओं में कृष्ण की लीलाओं का गान किया है, उससे समाज में रागात्मकता का संचार होता है, उससे जीवन के प्रति चाह बढ़ती है। विविध संप्रदायों द्वारा कृष्ण भक्ति का विभिन्न रूपों में पल्लवन होता है जिससे साहित्य समृद्ध होता है। साहित्य और संगीत को जोड़ने में इन कवियों का योगदान महत्वपूर्ण है। विभिन्न राग-रागनियों में रचित कृष्ण काव्य में संगीत का विकास होता है। कृष्ण भक्ति काव्य की भाव सम्पदा और परमार्जित अभिव्यक्त से साहित्यिक दृष्टि से ब्रज भाषा समृद्ध होती है और वह मध्यकाल की सर्वप्रधान काव्य भाषा बन जाती है।

अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'जड़िया' नाम से विख्यात कृष्ण भक्त कवि हैं?
2. पुष्टिमार्ग के जहाज कहे जाते हैं?
3. जायसी के किस ग्रंथ में कयामत का वर्णन है?
4. 'आरती कीजै हनुमान लला की' के रचनाकार हैं?
5. 'अष्टयाम' के रचयिता हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. रामभक्ति काव्य की प्रवृत्तियों का परिचय दीजिये?
2. संतकाव्य के प्रगतिशील आयाम को स्पष्ट कीजिए।
3. प्रेममार्गी सूफी काव्य के प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

3.7 सारांश

भक्ति काव्य की चार धाराएँ है- संत काव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य, रामभक्ति काव्य और कृष्ण भक्ति काव्य। निर्गुण ब्रह्म की उपासना, अवतारवाद-बहुदेववाद का खंडन, नाम-महिमा, गुरु-महिमा, बाह्याडम्बरों एवं जाति-पांति का विरोध, सत्य-शील-सदाचार पर बल, लोकभाषा का प्रयोग इत्यादि संतकाव्य की प्रवृत्तियाँ है। कबीर, रैदास, दादू, रज्जब, नानक इत्यादि प्रमुख संत कवि है। प्रेममार्गी सूफी काव्य की प्रवृत्तियाँ हैं-लौकिक प्रेम कथाओं का आश्रय, लोकप्रचलित कथानक रूढ़ियों का प्रयोग, मसनवी शैली, प्रेम को सर्वोपरि महत्ता, लौकिक प्रेम में ईश्वरीय प्रेम की झलक, प्रबंधात्मकता, दोहा-चौपाई शैली, अवधी भाषा का प्रयोग। जायसी,

मंझन, कुतुबन, उसमान प्रमुख सूफी कवि हैं। विष्णु के अवतार राम की उपासना, ब्रह्म के सगुण-निर्गुण दोनों रूपों की स्वीकृति, दास्य भक्ति, शास्त्र एवं वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति आदर का भाव, लोकमंगल, समन्वय भावना, अवधी एवं ब्रज भाषा का प्रयोग-रामभक्ति काव्य की प्रवृत्तियाँ है। रामानंद ईश्वरदास, अग्रदास, तुलसीदास, नाभादास, केशवदास आदि इस धारा के प्रमुख कवि हैं। विष्णु अवतार श्रीकृष्ण की उपासना, लीलागान, लोकरंजन, ब्रह्म के सगुण-निर्गुण दोनों रूपों की स्वीकृति, शास्त्रज्ञान की अनावश्यकता, रामानुगा भक्ति, गीतिशैली, मुक्तक काव्य रूप एवं ब्रज भाषा का प्रयोग-कृष्ण काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ है। सूरदास, नंददास, हितहरिवंश, स्वामी हरिदास, मीरा, रसखान इस धारा के प्रमुख कवि है।

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप भक्ति कालीन कविता की विभिन्न शाखाओं से परिचित हो गए होंगे।

3.8 शब्दावली

1. अनहदनाद- विभिन्न चक्रो का भेदन करते हुए कुण्डलिनी जब अनाहत चक्र में पहुँचती है तब साधक को अनहदनाद सुनाई पड़ता है। और ब्रह्मानंद की अनुभूति होती है। अनहद नाद 'शब्द ब्रह्म' है जो समग्र विश्व में अखण्ड रूप में व्याप्त है।

2. अजपाजाप- बिना जीभ हिलाये, बाह्य साधनों का सहारा लिए बिना मन ही मन किये जाने वाला जाप अजपाजाप है। यह नाम स्मरण की उच्चतम आध्यात्मिक स्थिति है।

3. लोकमंगल एवं लोकरंजन- यह आचार्य शुक्ल की शब्दावली है, जिसका प्रयोग वह क्रमशः तुसली एवं सूर के संदर्भ में करते है। लोकमंगल का मूल भाव करुणा है, इसमें लोक रक्षा का भाव छिपा, रहता है। लोकरंजन का मूल भाव प्रेम है। कृष्ण भक्ति काव्य में लोकरंजन की प्रधानता है और रामभक्ति काव्य में लोक मंगल की।

(4) दृष्टकूट पद- सूर के 'साहित्य लहरी' में 'दृष्टिकूट पद' मिलते हैं। दृष्टकूट पद अर्थ गोपन शैली में रचे गए हैं जिसमें राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन किया गया है।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नंददास
2. सूरदास
3. आखिरी कलाम
4. रामानंद
5. नाभादास

3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शुक्ल, रामचंद, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।
2. तिवारी, रामचंद्र, कबीर मीमांसा, विश्वविद्यालय प्रकाशन।

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मिश्र, शिव कुमार, भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य
2. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहितय का इतिहास
3. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य की भूमिका
4. पाण्डेय, मैनेजर, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य
5. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, कबीर
7. सिंह, सं. उदयभानु, तुलसीदास
8. साही, विजयदेव नारायण, जायसी

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. निगुर्ण भक्ति काव्य के प्रगतिशील पक्षों का उदघाटन कीजिए।
2. सगुण भक्ति काव्य अपने काव्यात्मक औदात्य की दृष्टि से हिंदी की श्रेष्ठ कविता है। इसे तर्क द्वारा सिद्ध कीजिए।

इकाई 04 कबीर : जीवन एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 कबीर : जीवन एवं रचनाएँ
4.3.1 कबीर : जीवन परिचय
4.3.2 कबीर : रचनाएँ
4.4 कबीर : विचार एवं दर्शन
4.5 निर्गुण राम की परिकल्पना
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री
4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

यह स्नातकोत्तर स्तर के प्रथम वर्ष के द्वितीय प्रश्न पत्र के अन्तर्गत दूसरे खण्ड की पहली इकाई है। इससे पहले की इकाईयों में आपने भक्तिकाल और भक्ति कविता के उद्भव एवं विकास को विस्तापूर्वक समझा, साथ ही आपने यह भी जाना कि भक्तिकालनी कविता के भीतर विभिन्न काव्य-रूपों का विकास किस प्रकार हुआ।

प्रस्तुत इकाई में आप विस्तारपूर्वक हिंदी भक्तिकाल के सबसे महत्वपूर्ण हस्ताक्षर कबीर के व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व से परिचित होंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निर्गुण भक्तिधारा के अन्तर्गत ज्ञानमार्गीशाखा के कवि कबीर की कविता में व्याप्त साहित्यिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना के विभिन्न रूपों का आलोचनात्मक परिचय करेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- आप कबीर के जीवन एवं उनकी रचनाओं के बारे में बता सकेंगे।
- आप कबीर की काव्य चेतना में व्याप्त ज्ञान एवं दर्शन को जान सकेंगे।

- कबीर के काव्य में समाहित विभिन्न महत्वपूर्ण घटकों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- Γ कबीर की भक्ति-भावना का परिचय प्राप्त करेंगे।
- हिंदी साहित्य के अन्तर्गत कवि कबीर का महत्व प्रतिपादित कर सकेंगे।

4.3 कबीर : जीवन एवं रचनाएँ

4.3.1 कबीर : जीवन परिचय

जन्म – कबीर के जन्म को लेकर स्पष्टत: कुछ भी कहा नहीं जा सकना लगभग असंभव माना जाता है। विभिन्न विद्वानों ने कबीर के जन्म के संबंध में अलग-अलग मत प्रस्तुत किए हैं। डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल एवं आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कबीर का जन्म लगभग 1270 ई. के आस-पास माना है। डा. परशुराम चतुर्वेदी, डा. फार्कुहर एवं डा. रामकुमार वर्मा के अनुसार कबीर का जन्म 1425 ई. के पूर्व हो गया होगा। डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर का जन्म संवत् 1456 तथा डॉ.माताप्रसाद गुप्त के अनुसार इनका जन्म संवत् 1455 माना है। आधुनिक खोजों के बाद कबीर का जन्म काल संवत् 1518 (1398 ई.) को माना गया है।

स्थान – जन्मतिथि की ही तरह कबीर के जन्म स्थान को लेकर भी विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। प्राय: विद्वान कबीर का जन्म काशी में मानते हैं परन्तु कुछ विद्वानों ने उनका जन्म 'मगहर' में तथा कुछ विद्वान आजमगढ़ जिले के 'बेलहरा' गाँव में मानते हैं। उदाहरणत: श्यामसुंदर दास ने कबीर का जन्म काशी में माना है तथा डा. रामकुमार ने इनका जन्म मगहर माना है। 'बनारस डिस्ट्रिक्ट गजेटियर' के अनुसार कबीर का जन्म आजमगढ़ जिले के बेलहरा गॉव में हुआ था। विद्वानों द्वारा प्रतिपादित इन विभिन्न मतों का विश्लेषण करने पर विश्लेषकों ने काशी को ही कबीर का जन्म स्थान माना है।

जाति – जन्मतिथि एवं जन्म स्थान के साथ ही कवि कबीर की जाति के संबंध में भी विद्वानों में अब तक मतभेद बना हुआ है।

(क) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार, ''कबीरदास का संबंध जुगी नामक जाति से था। यह जाति पहले न हिंदू थी और न मुसलमान। इनका संबंध अधिकतर वर्णाश्रम धर्मविहीन नाथपंथियों से था। अत: पूर्व संस्कार अभी तक बना हुआ था। आचार्य द्विवेदी के अनुसार कबीरदास ने अपने को जुलाहा तो बार-बार कहा है किन्तु मुसलमान एक बार भी नहीं कहा है।

(ख) उनकी न हिंदू न मुसलमान वाली उक्ति उन्हीं वर्णाश्रम भ्रष्ट जुगी जाति के व्यक्तियों की ओर संकेत करती है।

(ग) कबीरदास जी ने अपनी उक्ति में यह स्वीकार किया है कि हिन्दू, मुसलमान और योगी अलग-अलग होते है।

(घ) कबीर दास के बारे में यह प्रसिद्ध है कि उनकी मृत्यु के बाद कुछ फूल बचे रहे थे जिनमें से आधे को हिन्दुओं ने जलाया और आधे को मुसलमानों ने दफनाया।

विश्लेषण के पश्चात् यह बात कही जा सकती है कि वस्तुत: कबीर जुलाहे थे जो काशी के निवासी थे। संम्भवत: उनके माता-पिता पहले हिंदू रहे हों, बाद में इस्लाम स्वीकार कर लिया होगा। कबीर के संबंध में विश्लेषण करने के पश्चात् विद्वानों ने कुछ सर्वमान्य निष्कर्ष प्रतिपादित किए जिन्हें विद्यार्थियों के ज्ञान-लाभ के लिए साभार उद्धृत किया जा रहा है।

"कबीर के संबंध में अन्त: साक्ष्य एवं बहि: साक्ष्य से उपलब्ध उपर्युक्त सामग्री के विवेचन से स्पष्ट है कि उनके विषय में इतनी पृथक्-पृथक् और परस्पर विरोधी बातें कही गयी हैं कि सर्वथा निभ्रांत एवं विवादरहित निष्कर्ष पर पहुँचना बहुत कठिन है। मोटे तौर पर उनके संबंध में यह कहा जा सकता है –

1. उनका जन्म काशी में हुआ था और जीवन का अधिकांश काशी में ही बीता था। उन्होंने अनेक स्थानों की यात्रा की थी। मगहर से भी उनका किसी न किसी प्रकार का संबंध अवश्य था।
2. उनकी जन्म तिथि तथा मृत्यु तिथि के संबंध में बहुत विवाद है। मोटे तौर पर उनका समय विक्रम की 15वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध से 16वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध प्रमाणित होता है। लगभग यही समय रामानंद (संवत् 1356-1427), नानक (सं. 1526-1515), और सिकंदर लोदी (सं. 1555-1574) का भी था। वे दीर्घजीवी थे और सौ वर्षों से अधिक जीवित रहे।
3. कबीर का जन्म चाहे जिस परिवार में हुआ हों, किन्तु वह जुलाहा-वंश में पाले गए थे। उनका पोषक-परिवार वयनजीवी था। यह परिवार ऐसा था जो मूलत: हिन्दू था, किन्तु दो पीढ़ी पूर्व मुसलमान हो गया था। कबीर यद्यपि हिन्दू-मुस्लिम संकीर्णताओं से परे थे, उनके बाह्याचार के विरोधी थे तथापि उन पर हिन्दू-संस्कारों की गहरी छाप थी। उनमें अहिंसा का स्वर निश्चित रूप से हिंदू संस्कारों का प्रभाव माना जाएगा। इसी प्रकार उन्होंने हिन्दू पौराणिक कथाओं, देवी-देवताओं और सन्दर्भों का जिस प्रकार उल्लेख किया है, वह उनके हिन्दू धर्म की गहरी जानकारी का परिचायक है।
4. कबीर के गुरू के संबंध में प्राय: रामानंद और शेख तकी का उल्लेख किया गया है। अधिकांश लेखक, रामानंद को उनका गुरू मानने के पक्ष में हैं। शेख तकी कबीर के गुरू नहीं हो सकते। कबीर ने जिस ढंग से शेख तकी को सम्बोधित किया है, गुरू के प्रति ऐसा संबोधन कोई नहीं कर सकता। अधिकांश लेखकों की यह मान्यता भी है कि शेख तकी से द्वेष के कारण सिकन्दर लोदी ने कबीर को अनेक प्रकार की यातनाएँ दी थीं। जहाँ तक रामानंद का प्रश्न है, उन्होंने कबीर को विधिवत् भले ही दीक्षित न किया हो, किन्तु उनका प्रभाव कबीर पर अवश्य था। कबीर ने गुरू का श्रद्धापूर्वक अनेक बार स्मरण किया है। उसे मार्गदर्शक सर्वश्रेष्ठ दानी और ईश्वर-तुल्य बताया है। पदों में सदगुरू की तुलना भृंग से की गई है, जो शिष्य के मनो-दोहात्मक विकारों को

दूर कर देता है। वस्तुत: साधना मार्ग में गुरू की सहायता एवं कृपा के बिना सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती। गुरू तीन प्रकार के माने गए है – मान गुरू, सिद्ध गुरू और दिव्य गुरू। ऐसा प्रतीत होता है कबीर के मानव गुरू रामानंद थे। उनसे कबीर को 'राम-नाम' का मंत्र प्राप्त हुआ था। लेकिन उनके अतिरिक्त कबीर को दिव्य गुरू का भी साक्षात्मकार हुआ था, जो स्वयं परमप्रभु ईश्वर ही थे।

मृत्यु – "अनंतदास की परचई में कबीर की आयु 120 वर्ष की बतायी गई है। सन् 1398 कबीर का जन्म-काल सिद्ध करने पर निधन-काल सन् 1518 (सं.1575) ही ठहरता है1 इसके अतिरिक्त कबीर का संकेत साखियों में जिस राणा की ओर रहा है वह भी इस समय तक अपने प्रताप की प्रखर किरणें विकीर्ण करने लगा था।" अतएव कबीर की मृत्यु तिथि सन् 1518 (सं. 1575) उचित जान पड़ता है। कबीर का यह जीवन-काल उन्हें रामानंद, सिकन्दर लोदी, पीपा, नानक तथा राणा संग्राम सिंह का समकालीन बना देता है।

4.3.2 कबीर : रचनाएँ

कबीर की रचनाओं के विषय में समय-समय पर विभिन्न अध्येताओं ने शोध किया है। इस संबंध में डा. जयदेव सिंह एवं डा.वासुदेव सिंह द्वारा किया गया विश्लेषण महत्वपूर्ण है।

''कबीर पर 18वीं शताब्दी से कार्य प्रारम्भ हो गया था, किन्तु कबीर-साहित्य की वैज्ञानिक खोज का कार्य सन् 1903 में एच.एच. विल्सन ने किया। उन्हें कबीर के नाम पर कुल आठ ग्रंथ मिले। उसके बाद बिशप जी.एच. वेस्टकॉट ने कबीर लिखित 84 पुस्तकों की सूची प्रस्तुत की। रामदास गौड़ लिखित 'हिन्दुत्व' नामक ग्रंथ में कबीर की 71 पुस्तकें गिनायी हैं। मिश्रबंधुओं ने 'हिंदी-नवरत्न' में 75 ग्रंथों की तालिका दी है। इसी प्रकार हरिऔध जी द्वारा संपादित 'कबीर वचनावली' में 21 ग्रंथों, युगलानंद द्वारा सम्पादित 'बोधसागर' मकें 40 ग्रंथों, डा. रामकुमार वर्मा के हिंदी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में 61 ग्रंथों और नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टो में 140 ग्रंथों की सूची मिलती है। कबीर द्वारा लिखित साहित्यिक रचनाओं को अध्येताओं ने तीन रूपों में विभाजित किया है (1) साखी (2) सबद अथवा पद और (3) रमैनी। कबीर के साहित्यिक संकलनों का विश्लेषण करते हुए विद्वानों ने लक्ष्य किया है कि इस दिशा में दो प्रकार के कार्य किए गए हैं एक, साहित्यिक विद्वानों द्वारा और दूसरे, कबीर पन्थी साधनों द्वारा साहित्यिक क्षेत्र में इस दिशा में सर्वप्रथम महत्वपूर्ण कार्य बाबू श्याम सुन्दरदास ने किया। उन्होंने संवत् 1985 में दो हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर 'कबीर ग्रंथावली' का सम्पादन करके, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित कराया। उनके अनुसार ''कबीरदास के ग्रंथों की इन दो प्रतियों में से एक तो संवत् 1561 की लिखी है और दूसरी संवत् 1881 की। पहली प्रति की अपेक्षा इसमें 131 दोहे और 5 पद अधिक है। इन दो प्रतियों के अतिरिक्त संवत् 1661 में संकलित 'गुरू-ग्रंथ साहिब' में सग्रंहीत कबीर के जो दोहे और पद उक्त प्रतियों में भी थे, उन्हें मूल अंश में सम्मिलित कर लिया गया है और शेष को परिशिष्ट में दे दिया गया है और शेष को परिशिष्ट में दे दिया गया है। इस प्रकार 'कबीर-ग्रंथावली' में कुल

809 साखियाँ, 403 पद और 7 रमैनियाँ संगृहीत है। इसके अतिरिक्त परिशिष्ट में 192 साखियाँ और 222 पद और दे दिए गए हैं।''

"बाबू श्यामसुंदर दास की 'कबीर ग्रंथावली' के प्रकाशन के लगभग 15 वर्षों बाद संवत् संवत् 2000 (सन् 1933) में डॉक्टर रामकुमार वर्मा ने 'संत कबीर' नाम से कबीर की रचनाओं का अन्य संस्करण निकाला। उनके मत से ''नागरी प्रचारिणी, सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'कबीर-ग्रंथावली' का पाठ संन्दिग्ध और अप्रामाणिक है1 पाठ का पंजाबीपन तो 'पूरब' निवासी कबीर की वाणी का विषय शीशे में पड़ा हुआ विकृत प्रतिबिम्ब-सा है।'' डा. वर्मा की दृष्टि में 'कबीर-ग्रंथावली' की भाषा अप्रामाणिक है ही, उसके पाठ निर्धारण में भी अनेक त्रुटियाँ है।''

कबीर साहित्य के वैज्ञानिक स्वरूप-निर्धारण का दूसरा कार्य डा. पारसनाथ तिवारी के 'कबीर-ग्रंथावली' नाम से किया है। इसके पश्चात् समय-समय विभिन्न विद्वानों ने कबीर की रचनाओं का शोधपूर्ण संकलन प्रस्तुत किया। जिनमें से कुछ प्रमुख संकलन निम्नांकित हैं।

1. कबीर ग्रंथावली – डा. माताप्रसाद गुप्त
2. कबीर वचनावली – कबीर साहब की शब्दावली
3. गोविन्द राम दुर्लभराम – ग्रंथ शब्दावली
4. मुंशी शिवव्रत लाल – सन्त कबीर की शब्दावली
5. मुंशी शिवव्रत लाल - सन्त कबीर की साखी
6. विचार दास शास्त्री – कबीर की साखी
7. हुज़ुर साहब – कबीर की साखी
8. विचारदास शास्त्री – सद्गुरू कबीर साहब का साखी ग्रंथ
9. महाराज राघवदास – सटीक साखी ग्रंथ
10. रामचंद्र श्रीवास्तव – कबीर साखी सुधा

इन संकलनों के अलावा कबीर द्वारा लिखित एक अन्य महत्वपूर्ण पुस्तक 'बीजक' भी प्राप्त होती है कबीर साहित्य के अध्येता इस पुस्तक की महत्ता को रेखांकित करते हैं स्वयं कबीर पंथी साधु एवं संकलनकार्त्ता कबीरपंथ के भीतर भी इस पुस्तक की महत्ता एवं उपयोगिता का बखान करते रहते हैं। अनेकों विद्वानों और साधुओं ने समय-समय पर 'बीजक' का संपादन एवं प्रकाशन किया है। अनेक बीजकों के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् यह बात सामने आई है कि अलग-अलग समय पर संकलित-संपादित होने के पश्चात् भी बीजक का मूल रूप अधिकांशत: समान ही है।

"कबीर का प्रमुख साहित्य तीन रूपों में विभक्त है – रमनी, साखी और सबद या पद। प्राय: यह माना जाता है कि रमैनी में जगत्, साखी में जीव और सबद में ब्रह्म-सम्बंधी विचार हैं। 'रमैनी' शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में हुआ है –

1. जिसमें संसार में जीवों के रमण का विवेचन हुआ है।
2. परमतत्व में रमण कराने वाली और
3. एक छन्द-विशेष जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती है।''

''साखी' शब्द संस्कृत के 'साक्षी' का तद्भव है। साक्षी का अर्थ होता है – गवाह। 'गवाह' के लिए संस्कृत में 'साक्ष्य' शब्द है। साक्षी वह है जिसने स्वयं अपनी ऑंखों से तथ्य देखा हो। 'साक्ष्य' का अर्थ है – ऑंख से देखे हुए तथ्य का वर्णन। हिंदी में साखी शब्द 'साक्षी' और 'साक्ष्य' अर्थात् 'गवाह' और 'गवाही' दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। कबीर ने 'सबद' का प्रयोग दो भावों को ध्यान में रखकर किया है – एक तो परमतत्व के अर्थ में और दूसरे पद के अर्थ में। ''रमैनी, साखी और सबद के अतिरिक्त कबीर के नाम से कहरा, वसत, बेलि, बिरहुली, चॉंचरि हिंडोला, चौतीसी, विप्रममीसी आदि अन्य काव्य रूपों में लिखा साहित्य भी पाया जाता है। जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है कि स्वयं कबीर द्वारा लिपिबद्ध न किए जाने के कारण तथा कबीरपन्थी भक्तों की उदारता और कबीर के नाम से प्रचुर साहित्य एकत्र हो गया हैं। उसकी प्रमाणिकता पर विभिनन विद्वानों द्वारा अद्यावधि जो अनेक श्रमसाध्य कार्य हुए है, वे भी अंतिम सत्य तक पहुँचाने वाले नहीं है। प्राय: सभी शोधकों एवं पाठालोचकों ने स्वीकार किया है कि कबीर का साहित्य यही है अथवा इतना ही है, इसे अंतिम सत्य के रूप में नहीं कहा जा सकता। वस्तुत: कबीर जैसे रमते साधुओं के संबंध में इस प्रकार का अंतिम निर्णय लिखा भी नहीं जा सकता।''

अभ्यास प्रश्न 1 –

(क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार कबीर का जन्म कब हुआ।
2. कबीर की मृत्यु किस स्थान पर हुई।
3. किवंदतियों के अनुसार कबीर के गुरू कौन थे।
4. 'कबीर वचनावली' का सम्पादक कौन है।

(ख) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कबीर का जीवन परिचय दीजिए (शब्द संख्या 200 अधिकतम)
2. कबीर साहित्य पर अपनी संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए (शब्द संख्या 200 अधिकतम)

4.4 कबीर : विचार एवं दर्शन

भारतीय धर्म साधना के इतिहास में कबीर का महत्व अन्यतम है। कबीर अपनी महान प्रतिभा को साथ लेकर अवतरित हुए थेलेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए की कि कवि कबीर की सम्पूर्ण काव्य-प्रतिभा, समाज चेतना एवं सकल संसार की दार्शनिक एवं आध्यात्मिक

व्याख्या के पीछे वस्तुत: उनका समाज दर्शन ही कार्य कर रहा था। जैसा कि माना जाता है कि कबीर निर्गुण भक्ति धारा के ज्ञानमार्गी भक्त थे। जीवन मूल्यों के विकासवादी क्रम में मध्यकालीन साहित्य के अन्तर्गत जिस मूल्य को सम्पूर्ण भारतीय चेतना ने सर्वाधिक प्रभावशाली ढंग से आत्मसात् किया, वह भक्ति का ही मूल्य था। इसी भक्ति-मूल्य की विचार एवं कलात्मक भूमि, के आधार पर ही मध्यकालीन भारतीय एवं अन्तत: मध्यकालीन हिंदी भक्ति कविता का भी विकास हुआ।

कबीरदास कवि ही नहीं थे, वे एक दार्शनिक सन्त थे। वे उस परमतत्व को अन्यन्त अलख, निरंजन, निरभै, शून्य एवं स्थूल से भिन्न, दृश्य और अदृश्य से विलक्षण मानते है। उनका 'राम' निर्गुण ब्रह्म है, जो विश्वातीत विश्वोत्तीर्ण एवं विश्वमय है। वह तो घट-घट व्यापी, अनादि, अनन्त है। वह देश-काल से परे है और जिससे प्रेम द्वारा ही मिलन संभव है। उनका निर्गुण ब्रह्म दशरथ नन्दन 'राम' नहीं है। वह ससीम नहीं वरन् असीम है। उनके मतानुसार 'आतम राम अवर नहि दूजा' अर्थात् 'आत्मा' और 'राम' एक ही है। सृष्टि कर्त्ता में ही सृष्टि है और सृष्टि में सृष्टि कर्त्ता ओत-प्रोत है। उनका जीवन दर्शन प्रेम का दर्शन है।

4.5 निगुर्ण राम की परिकल्पना

"परमार्थ के लिए, ईश्वर के लिए, परम चैतन्य के लिए कबीर ने 'राम' शब्द का प्रयोग किया है। उनका राम निर्गुण है। कुल लोगों ने शांकर वेदांत के निर्गुण ब्रह्म को ही कबीर का निर्गुण राम समझा है, किन्तु कबीर के निर्गुण राम सर्वथा शांकर वेदान्त के निर्गुण ब्रह्म के समान नहीं है। निर्गुण ब्रह्म विश्व का चैतन्य मात्र अधिष्ठान है। वह सर्वथा निष्क्रिय है। समष्टि अज्ञान अथवा माया से उपहित होकर वह सगुण ब्रह्म कहलाता है। कबीर का राम तो विश्व से अतीत है, और विश्व में व्याप्त भी है। वह विश्वोत्तीर्ण है और विश्वमय भी है। वह घट-घट में समाया हुआ है। वह अवर्ण है किन्तु सभी वर्ण उसी के हैं। वह अरूप है, किन्तु सभी रूप उसी के है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों देश से परिसीमित है। वह देश और काल से परे है। उसका न आदि है न अंत। वेदान्त के निर्गुण ब्रह्म विश्व में व्याप्त नहीं है। वेदान्त का सगुण कबीर का निर्गुण राम विश्व से परे भी है और विश्व में व्याप्त भी। (कबीर वाणी पीयूष)

कबीर साहित्य में राम का अर्थ अन्तत: सर्वसत्तावादी, सर्वरूप, सर्वव्याप्त उस परम तत्व चेतना से है जिसे सगुण सम्प्रदाय राम अथवा अन्य ईश्वरीय संज्ञा पदों से जानता है। कबीर के वहाँ 'राम' संज्ञा स्पष्ट न होते हुए भी 'राम' की अवधारणा एकदम स्पष्ट है। कविजनोचित संस्कार के कारण कबीर ने राम को अन्यान्य संज्ञा पदों से भी पुकारा है। सगुण की तरह कबीर के राम एक रूपी चरित्र न होकर सर्वव्यापी ईश्वर की काव्योचित एवं भक्तिपूर्ण अवधारणा है। (कबीर वाणी पीयूष)

4.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप –

- कबीर के प्रारम्भिक एवं उत्तरवर्ती जीवन का परिचय प्राप्त कर चुके होंगे।
- कवि, दार्शनिक एवं समाजवेत्ता के रूप में कबीर के महत्व को जान चुके होंगे।
- कबीर के साहित्यिक महतव का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।

4.7 शब्दावली

वर्णाश्रमभ्रष्ट – परम्परागत वर्ण विभाजन से अलग

अन्यतम – जिसका जैसा दूसरा कोई न हो

तुल्य – समान

अध्येता – शोधकर ज्ञान प्राप्त करने वाला

श्रमसाध्य – मेहनत द्वारा प्राप्त

सर्वव्याप्त – जो हर जगह हो, ईश्वर

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 1270
2. मगहर
3. रामानंद
4. अयोध्या प्रसाद सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कबीर वाणी पीयूष, पृष्ठ. 16,17
2. उपरोक्त , पृष्ठ.19
3. उपरोक्त , पृष्ठ.19,20
4. उपरोक्त , पृष्ठ.21
5. उपरोक्त , पृष्ठ.28
6. काव्य गरिमा पृष्ठ.26
7. कबीर वाणी पीयूष, पृष्ठ.30

4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. सिंह, डा. जयदेव, सिंह, डॉ. शुकदेव सिंह, कबीर वाणी पीयूष, 1979,विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
2. पाठक, मानवेन्द्र, काव्य गरिमा, 1991, गुरूदेव आफसेट नैनीताल।
3. दास, डा. श्यामसुंदर, कबीर ग्रंथावली 2010, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली।
4. शर्मा, प्रो.सरनाम सिंह, कबीर – व्यक्तित्त्व , कृतित्व एवं सिद्धान्त, 2011, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली।

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कवि कबीर के प्रारम्भिक एवं साहित्यिक जीवन का विश्लेषण विस्तार से कीजिए।
2. कबीर के कवि रूप का मूल्यांकन करते हुए भारतीय भक्ति क्षेत्र में अनेक महत्व का आंकलन कीजिए।

इकाई 5 कबीर: पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 कबीर की कविता: आलोचना
5.4 कबीर का काव्य: व्याख्या
5.4.1 कबीर के पद: संदर्भ एवं व्याख्या
5.4.2 कबीर के दोहे: संदर्भ एंव व्याखा
5.5 कबीर का काव्य
5.5.1 कबीर के पद
5.5.2 कबीर के दोहे
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
5.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

यह स्नातकोत्तर स्तर के प्रथम वर्ष के द्वितीय प्रश्न पत्र की पांचवी इकाई है।

इस इकाई के अध्ययन के पूर्व की इकाई में आपने कबीर एवं उनके संबंध में सविस्तार अध्ययन किया। अब तक आपने कबीर के जीवन एवं उनकी कविता की साहित्यिक विशेषताओं का परिचय प्राप्त किया प्रस्तुत इकाई में आप कबीर की कविता के विभिन्न रूपों का पाठ करेंगे तथा संदर्भ सहित कबीर काव्य की व्याख्या का अध्ययन भी करेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- कबीर के काव्य का सीधा परिचय पा सकेंगे।
- कबीर के काव्य एवं कबीर के व्यक्तित्व के महत्व को जान सकेंगे।
- कबीर के पदों तथा दोहों की ससंदर्भ व्याख्या कर सकेंगे।

5.3 कबीर की कविता: आलोचना

जिस युग में कबीर आविर्भूत हुए थे उसके कुछ ही पूर्व भारतवर्ष के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना घट चुकी थी। यह घटना इसलाम-जैसे एक सुसंगठित सम्प्रदाय का आगमन था। इस घटना ने भारतीय धर्म-मत और समाज-व्यवस्था को बुरी तरह से झकझोर दिया था। उसकी अपरिवर्त्तनीय समझी जानेवाली जाति-व्यवस्था को पहली बार जबर्दस्त ठोकर लगी थी। सारा भारतीय वातावरण संक्षुब्ध था। बहुत-से पण्डितजन इस संक्षोभ का कारण खोजने में व्यस्त थे और अपने-अपने ढंग पर भारतीय समाज और धर्म-मत को संभालने का प्रयत्न कर रहे थे।

यहाँ दो और प्रधान धार्मिक आन्दलनों की चर्चा कर लेनी चाहिए। पहली धारा पश्चिम से आयी। यह सूफी लोगों की साधना थी। मज़हबी मुसलमान हिन्दू धर्म के मर्मस्थान पर चोट नहीं कर पाये थे, वे केवल उसके बाहरी शरीर को विक्षुब्ध कर सकते थे। पर सूफी लोग भारतीय साधना के अविरोधी थे। उनके उदारतापूर्ण प्रेम-मार्ग ने भारतीय जनता का चित्त जीतना आरम्भ किया था। फिर भी ये लोग आचार-प्रधान भारतीय समाज को आकृष्ट नहीं कर सके। उसका सामंजस्य आचार-प्रधान हिन्दूधर्म के साथ नहीं हो सका। यहाँ यह बात स्मरण रखने की है कि न तो सूफी मतवाद और न योगमार्गीय निर्गुण परम-तत्व की साधना ही उस विपुल वैराग्य के भार को वहन कर सकी जो बौद्ध संघ के अनुकरण पर प्रतिष्ठित था। देश में पहली बार वर्णाश्रम-व्यवस्था को एक अननुभूतपूर्व विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा था। अब तक अब तक वर्णाश्रम-व्यवस्था का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। आचार-भ्रष्ट व्यक्ति व्यक्ति समाज से अलग कर दिए जाते थे और वे एक नयी जाति की रचना कर लेते थे। इस प्रकार सैकड़ों जातियाँ और

उपजातियाँ सृष्ट होते रहने पर भी वर्णाश्रम-व्यवस्था एक प्रकार से चलती ही जा रही थी। अब सामने एक जबर्दस्त प्रतिद्वन्द्वी समाज था जो प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक जाति को अंगीकार करने की बद्धपरिकर था। उसकी एकमात्र शर्त यह थी कि वह उसके विशेष प्रकार के धर्म-मत को स्वीकार कर ले। समाज से दण्ड पाने वाला बहिष्कृत व्यक्ति अब असहाय नहीं था। इच्छा करते ही वह एक सुसंघटित समाज का सहारा पा सकता था। ऐसे समय में दक्षिण से वेदान्त-भावित भक्ति का आगमन हुआ, जो इस विशाल भारतीय महाद्वीप के इस छोर से उस छोर तक फैल गया। डा. ग्रियर्सन ने कहा था, ''बिजली की चमक के समान अचानक इस समस्त (धार्मिक मतों के) अन्धकार के ऊपर एक नयी बात दिखायी दी। यह भक्ति का आन्दोलन है। ''इसने दो रूपों में आत्म-प्रकाश किया। पौराणिक अवतारों को केन्द्र करके सगुण उपासना के रूप में और निर्गुण-परब्रह्म जो योगियों का ध्येय था, उसे केन्द्र करके निर्गुण प्रेम-भक्ति की साधना के रूप में। पहली रसमय बनाया और दूसरी साधना ने बाह्याचार की शुष्कता को दूर करने का प्रयत्न किया। एक ने समझौते का रास्ता लिया, दूसरी ने विद्रोह का; एक ने शास्त्र का सहारा लिया, दूसरी ने अनुभव का; एक ने ऋद्धा को पथ-प्रदर्शक माना, दूसरी ने ज्ञान को; एक ने सगुण भगवान् को अपनाया, दूसरी ने निर्गुण भगवान् को। पर प्रेम दोनों का ही मार्ग था; सूखा ज्ञान दोनों को अप्रिय था; केवल बाह्याचार दोनों को सम्मत नहीं थे; आन्तरिक प्रेम-निवेदन दोनों को अभीष्ट था; अहैतुक भक्ति दोनों की काम्य थी; बिना शर्त के भगवान् के प्रति आत्म-समर्पण दोनों के विचारों में था। दोनों ही भगवान् की प्रेम-लीला में विश्वास करते थे। दोनों का ही अनुभव था कि भगवान् लीला के लिए इस जागतिक प्रपंच को सम्हाले हुए हैं। पर प्रधान भेद यह था कि सगुण-भाव से भजन करने वाले भक्त भगवान् को दूर से देखने में रस पाते रहे, जब कि निर्गुण-भाव से भजन करने वाले भक्त अपने-आप में रमे हुए भगवान् को ही परम काम्य मानते थे।

भक्त की भगवान के साथ यह जो आनन्द-केलि या प्रेम-लीला है ,वही मध्य-युग के समस्त भक्तों की साधना का के समस्त भक्तों की साधना का के भगवान के साथ यह रसमय लीला ही भक्त का परम काम्य है-लीला जिसका कोई प्रयोजन नहीं फल नहीं कारण नहीं आदि नहीं अन्त नहीं। इसी बात को मध्य-युग के अन्यतम वैष्णव भक्त विश्वनाथ चक्रवर्ती ने कहा था, 'प्रेम ही परम पुरूषार्थ है-प्रेमाः पुमर्थो महान्।' साधारणः जिनको पुरूषार्थ कहा जाता है वे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष भक्त के लिए कोई आकर्षण नहीं रखते। और कबीरदास ने इसी बात को और शक्तिशाली ढंग से कहा था:

राता- माता नाम का, पीया प्रेम अघाय ।
मतवाला दीदार का, मॉगे मुक्ति बलाय।।
और भक्ति के आदर्श की धोषणा करते हुए द्विधाहीन भाषा में कहा:
भाग बिना नहि पाइये, प्रेम - प्रीति की भक्त।
बिना प्रेम नहीं भक्ति कछु भक्ति -भरयो सब जक्त।।
प्रेम बिना जो भक्ति हैं, सो निज दम्भ-विचार।
उदर भरन के कारने, जनम गॅवायौ सार ।।

परन्तु कबीरदास अपने युग के सगुण - साधना - परायण भक्तों से कुछ भिन्न थे।

यद्यपि दोनों की साधना का केन्द्र - बिन्दु यह प्रेम - भक्ति हैं,- इसे आनन्दकेलि प्रीति ,

भक्ति ,प्रेमलीला आदि जो भी नाम दे दिया जाय,-तथापि एक बात में वे सबसे अलग हो जाते हैं। कबीरदास का रास्ता उल्टा था। उन्हें सौभाग्यवश सुयोग भी अच्छा मिला था। जितने प्रकार के संस्कार पड़ने के रास्ते हैं वे प्राय: सभी उनके लिए बन्द थे। वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे, हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे, वे साधु होकर भी साधु (=अगृहस्थ) नही थे, वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे, योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे कुछ भगवान् की ओर से ही सबसे न्यारे बनाकर भेजे गये थे। वे भगवान् की नृसिंहावतार की मानव-प्रतिमूर्ति थे। नृसिंह की भांति वे नाना असम्भव समझी जानेवाली परिस्थितियों के मिलन-बिन्दु पर अवतीर्ण हुए थे। हिरण्यकशिपु ने वर मांग लिया था कि उसकोमार सकनेवाला न मनुष्य हो न पशु; मारे जाने का समय न दिन हो न रात; मारे जाने का स्थान न पृथ्वी हो न आकाश; मार सकनेवाले का हथियार न धातु का हो न पाषाण का- इत्यादि। इसीलिए उसे मार सकना एक असम्भव और आश्यर्चजनक व्यापार था। नृसिंह ने इसीलिए नाना कोटियों के मिलन-बिन्दु को चुना था। असम्भव व्यापार के लिए शायद ऐसी ही परस्पर-विरोधी कोटियों का मिलन-बिन्दु पर खड़े थे। जहाँ से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता हैओर दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है, दूसरीओर अशिक्षा; जहाँ पर एक ओर योगमार्ग निकल जाता है, दूसरी ओर भक्तिमार्ग; जहाँ से एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है, दूसरी ओर सगुण साधना,- उसी प्रशस्त चौरास्ते पर वे खड़े थे। वे दोनों और देख सकते थे और परस्पर-विरूद्ध दिशा में गए हुए मार्गों के दोष-गुण उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे। यह कबीरदास का भगवत सौभागय था। उन्होंने इसका खूब उपयोग भी किया।

जैसा कि शुरू में ही बताया गया है, कबीरदास ने अपनी प्रेम-भक्तिमूला साधना का अभ्यास एकदम दूसरे किनारे से किया था। भगवत्-प्रेम पर उनकी दृष्टि इतनी दृढ़-निबद्ध थी कि इस ढाई अक्षर (प्रेम) को ही वे प्रधान मानते थे :

पढि पढि के पत्थर भया, लिखि लिखि भया जु ईट।
कहै कबीरा प्रेम की, लगी न एकौ छींट।।
पोथी पढि पढि जग मुआ, पंडित भया न कोइ।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होइ।।

यह प्रेम ही सब-कुछ है, वेद नहीं, शास्त्र नहीं, कुरान नहीं, जप नहीं, माला नहीं, तस्वीह नहीं, मन्दिर नहीं, मस्जिद नहीं, अवतार नहीं, नबी नहीं, पीर नहीं, पैगम्बर नहीं। यह प्रेम समस्त बाह्याचारों की पहुँच के बहुत ऊपर है। समस्त संस्कारों के प्रतिपाद्य से कहीं श्रेष्ठ है। जो कुछ भी इसके रास्ते में खड़ा होता है वह हेय है।

उन्होंने समस्त व्रतों, उपवासों और तीर्थों को एक साथ अस्वीकार कर दिया। इनकी संगति लगाकर और अधिकार-भेद की कल्पना करके इनके लिए भी दुनिया के मान-सम्मान की

व्यवस्था कर जाने का उन्होंने बेकार परिश्रम समझा। उन्होंने एक अल्लाह निरंजन निर्लेप के प्रति लगन को ही अपना लक्ष्य घोषित किया। इस लगन या प्रेम का साधन यह प्रेम ही है; और कोई भी मध्यवर्ती साधन उन्होंने स्वीकार नहीं किया। प्रेम ही साध्य है, प्रेम ही साधन-व्रत भी नहीं, मुहरम भी नहीं; पूजा भी नहीं, नमाज भी नही; हज भी नहीं; तीर्थ भी नहीं :

एक निरंजन अलह मेरा, हिन्दू तुरूक दुहूँ नहिं मेरा।
राखूँ व्रत न महरम जांनां, तिस ही सुमिरूँ जो रहै निदांनां।
पूजा करूँ न निमाज गुजारूँ, एक निराकार हिरदै मनसकारूँ।
नां हज जाऊँ न तीरथ-पूजा, एक पिछाण्यां तौ क्या दूजा।
कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन-सूँ मन लागा।

कबीर ने जो समस्त बाह्याचारों को अस्वीकार करके मनुष्य को साधारण मनुष्य के आसन पर और भगवान् को 'निरपख' भगवान् के आसन पर बैठाने की साधना की थी, उसका परिणामक्या हुआ और भविष्य में वह उपयोगी होगा या नहीं, यह प्रश्न उतना महत्वपूर्ण नहीं। सफलता महिमाकी एकमात्र कसौटी नहीं है। आज शायद यह सत्य निबिड़ भाव से अनुभव किया जानेवाला है कि सबकी विशेषताओं को रखकर मानव-मिलन की साधारण भूमिका नहीं तैयार की जा सकती। जातिगत, कुलगत, धर्मगत, संस्कारगत, विश्वासगत, शास्त्रगत,सम्प्रदायगत बहुतेरी विशेषताओं के जाल को छिन्न करके ही वह आसन तैयार किया जा सकता है जहाँ एक मनुष्य दूसरे से मनुष्य की हैसियत से ही मिले। जब तक यह नहीं होता तब तक अशान्ति रहेगी,मारामारी रहेगी, हिंसा-प्रतिस्पर्द्धा रहेगी। कबीरदास ने इस महती साधना का बीज बोया था। फल क्या हुआ, यह प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है।

कबीरदास की साधना भी न तो लोप हो गयी है, न खो गयी है। उनका पक्का विश्वास था कि जिससे साथ भगवान् हैं और जिसे अपने इष्ट पर अखण्ड विश्वास है उसकी साधना को करोड़-करोड़ काल भी झकझोरकर विचलित नहीं कर सकते :

जाके मन विश्वास है, सदा गुरू है संग।
कोटि काल झकझोर हीं, तऊ न हो चित भंग।।

('कबीर : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से साभार)

5.4 कबीर का काव्य: व्याख्या

प्रस्तुत इकाई के इस भाग में संत कबीर के काव्य जगत से चयनित पद एवं 10 दोहों की ससंदर्भ व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है। विद्यार्थी इस काव्य चयन को सावधानी पूर्वक पढ़ कर सूक्ष्म मनोयोग से इसका मनन करें।

5.4.1 कबीर के पद: संदर्भ एवं व्याख्या

1. संतौ भाई आई ग्यांन की आंधी रे।

भ्रम की टाटी सभै उड़ानी माया रहै न बांधी रे।।
दुचिते की दोह थूँनि गिरानी मोह बलेंड़ा टूटा।
त्रिसनां छानि परी घर ऊपरि दुरमति भांडा फूटा।
आंधी पाछै जो जल बरसै तिहिं तेरा जन भीनां।
कहै कबीर मनि मया प्रगासा उदे मानु जब चीनां।।

शब्दार्थ -

टाटी - टरिया या पर्दा
दुचिते - चित्त की दो अवस्थाएँ - 1. विषयासक्ति 2. बाह्याचार
थूँनि - खम्भा, स्तम्भ
बलेंडा - छाजन में बीच का बेड़ा या बल्ली, बड़ेर।
भीनां - भीग गया, रससिक्त
मनि - मन में, जन - भक्त, सेवक
खीना - क्षीण

संदर्भ - इस पद में कबीर ने बताया है कि अज्ञान का आवरण हटने पर ही ज्ञान का प्रकाश होता है और भक्ति का प्रादुर्भाव होता है। इस तथ्य को उन्होंने छप्पर, आँधी और वर्षा के रूपक द्वारा स्पष्ट किया है।

व्याख्या - इस रूपक में ज्ञान को आँधी बताया गया है। आँधी आने पर छप्पर या छाजन नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। ज्ञान की आँधी आने पर भ्रम की टटिया उड़ गई। वह टटिया माया की रस्सी से ही बँधी थी। वह रस्सी भी छिन्न-भिन्न हो गई। छप्पर को रोकने के लिए खम्बे लगे थे, वे भी आँधी के थपेड़ों से ध्वस्त हो गए। ये दो खम्भे चित्त की दो अवस्थाओं – विषयासक्ति और बाह्याचार - के थे। ज्ञानरूपी आँधी के थपेड़े से वे भी नष्ट हो गए। उस तृष्णारूपी छप्पर का मुख्य आधार मोहरूपी बड़ेर (बांस या बल्ली) भी मग्न हो गया। फलस्वरूप वह छप्पर धराशायी हो गया अर्थात् तृष्णा विनष्ट हो गई। छप्पर के गिरने पर अर्थात् तृष्णा के नष्ट होने पर कुमति रूपी बर्तन भी टूट गए। सामान्यतः आँधी के बाद वर्षा होती है। ज्ञान की आँधी के बाद प्रेम भक्ति रूपी जल की वर्षा हुई। इस प्रेमाभक्ति की वर्षा से प्रभु का भक्त रसस्नात हो गया। कबीर कहते हैं कि ज्ञानरूपी सूर्य के उदय होने पर उसके मन में दिव्य प्रकाश छा गया और उसने अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लिया।

टिप्पणी -

इससे मिलता रूपक 'धम्मपद' के एक पद में मिलता है। भगवान बुद्ध के हृदय में प्रकाश या ज्ञान का आविर्भाव होने पर उनके मुख से जो प्रथम उद्गार निकला था वह इस पद में निबद्ध है –

अनेक जाति संसारं संधाविस्सं अनिब्बिसं

गहकारकं गवेसन्ती दुक्खा जाति पुनप्पुनं
गहकारक दिट्ठोऽसि पुन गेहं न काहसि
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं बिसंखितं
बिसंखारगतं चितं तण्हानं खयमज्झगा।

मैं इस शरीररूपी घर को बनाने वाले की खोज करता हुआ अज्ञानवश अनेक जन्मों में संसार में आता हुआ दौड़ लगाता रहा। बार-बार जन्म लेना दुखदायी है। हे घर के बनाने वाले। मैंने अब तुझे देख लिया है। अब तू पुनः घर न बना पाएगा। तेरा गृहकूट (बड़ेर) विश्रृंखलित हो गया है और उसमें लगी शहतीरे मग्न हो गई हैं। चित्त में सभी संस्कार नष्ट हो गए हैं और तृष्णा का क्षय हो गया है।

2. अवधू सो जोगी गुरू मेरा
जो या पद का करै निबेरा
तखर एक मूल बिन ठाढ़ा बिन फूलॉ फल लागा
साखा पत्र कुछ नहिं वाकै अष्ट गगन मुख बागा
पग बिन निरत करां बिनु बाजा जिम्या हीना गावै
गावनहार कै रूप न रेखा सतगुर होई लखायै
पंखी का खोज मीन का मासा कहै कबीर बिचारी
अपरम्पार पार परसोतम वा मूरति की बिलहारी।।

शब्दार्थ - अवधूत = अव (उपसर्ग) + घू (धातु) + क्त **(प्रत्यय)** = जिसने अपनी सभी निम्न प्रवृत्तियों और संस्कारों को झकझोर कर बाहर फेंक दिया है। नाथ सम्प्रदाय के साधक अपने को योगी अथवा अवधूत कहते थे। कबीर ने प्रायः अवधू या योगी सम्बोधन द्वारा अपर व्यंग्य किया है। निबेरा = स्पष्टीकरण, तरवर = वृक्ष प्रकृति या माया (मायां तु प्रकृति विद्यान् - श्वेताश्वर उपनिषद), अष्ट गगन - आठ दिशाएँ अथवा अष्टद्या प्रकृति (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार)। मुख = ओर, तरफ। बागा = व्याप्त हुआ, निरति = नृत्य, खोज = मार्ग।

संदर्भ - गीता में तीन तत्वों - क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, पुरूषोत्तम - का उल्लेख मिलता है। कबीर ने इस पद में इन्हीं तीन तत्वों की ओर संकेत किया है। क्षेत्र प्रकृति अथवा माया है, जिसमें क्षेत्रज अर्थात् जीवात्मा का क्रियाकलाप चलता रहता है। पुरूषोत्तम वह तत्व है जो क्षेत्र और क्षेत्रज दोनों को अपने में समेटे हुए है।

व्याख्या -वह कहते हैं कि हे अवधू! मैं तुम मैं तुम लोगों में उस योगी को अपना गुरू मानने को तैयार हूँ जो मेरे इस पद का स्पष्टीकरण कर दे। एक ऐसा वृक्ष है जो बिना मूल के स्थित है। उसमें बिना फूल के फल लगते हैं। यहाँ वृक्ष के द्वारा प्रकृति की ओर संकेत किया गया है। प्रकृति का कोई मूल और जड़ नहीं है। वह स्वयं सभी का मूल अर्थात् आधार है। सांख्य में उसे मूल प्रकृति कहा गया है, क्योंकि उसका और कोई मूल नहीं है - मूले मूलामावादमूलं मूलमसांख्यसूत्र। उस

मूल प्रकृति रूपी वृक्ष में बिना फूल के विश्वरूपी फल लगा है अर्थात् सारा विश्व अत्यक्त प्रकृति का व्यक्त परिणाम है। यद्यपि उस वृक्ष में शाखाएँ और पत्ते नहीं है तथापि वह आठों दिशाओं में फैला है। आठ दिशाओं में अष्टधा प्रकृति (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि अहंकार) का संकेत है।

इन क्षेत्र में आत्मा अर्थात् क्षेत्रज्ञ का क्रिया कलाप चलता रहता है। वह ऐसा चेतन तत्व है कि बिना पैर के नृत्य करता है, बिना हाथों के बाजा बजाता है और बिना जिह्वा के गाता है अर्थात् सूक्ष्म रूप से ही वह सारे क्रियाकलापों का मूलभूत आधार है। उस चेतन की कोई आकृति नहीं है, केवल सद्गुरू ही उस निराकार का बोध या परिचय करा सकता है। अंतिम दो पंक्तियों में कबीर यह बताते हैं कि वह चेतन पुरूषोत्तम से किस प्रकार युक्त हो सकताहै। पुरूषोत्तम सभी सीमाओं से परे है, उसकी कोई सीमा नहीं। कबीरदास कहतेहैं ऐसा पुरूषोत्तम जो सभी सीमाओं से परे (पार) है, मैं उसके प्रति आत्मसमर्पण करता हूँ। उससे युक्त होने के दो मुख्य मार्ग हैं - बिहंगम मार्ग और मीन मार्ग।

टिप्पणी - सिद्धों और योगियों द्वारा मुक्ति या परमार्थ के तीन मार्ग बताये गए है - पिपीलिका मार्ग, विहंगम मार्ग और मीन मार्ग पिपीलिका का अर्थ है - चींटी। चींटी धीरे-धीरे क्रम से चलती है। वह न कूद सकती है और न उड़ सकती है। जिस साधना द्वारा क्रयमुक्ति प्राप्त होती है, उसे पिपीलिका मार्ग कहते है। यहाँ कबीर ने मुक्ति के लिए केवल दो मार्गों - विंहगम मार्ग और मीन मार्ग को चुना है।

विंहगम मार्ग के दो मुख्य लक्षण हैं -

1. विहंगम अर्थात् पक्षी अपने गन्तव्य स्थान को उड़कर पहुँचता है।
2. उसके गमन का कोई पद-चिन्ह नहीं रह जाता है।
3. पक्षी की उड़ान के द्वारा सद्योमुक्त का संकेत किया गया है और दूसरे लक्षण द्वारा आत्मा के परमात्मा तक गमन की रहस्यात्मकता को व्यक्त किया गया है।

मीन मार्ग के भी दो लक्षण है। मछली के जल में गमन का कोई चिन्ह नहीं रह जाता। यह लक्षण विंहगम मार्ग के ही समान है, किन्तु मीन की दूसरी विशेषता यह है कि वह जलधारा के विपरीत चलती है। इसके द्वारा यह संकेत किया गया है कि जीव की विषयों के प्रति जाने की जो पराड्.मुखी प्रवृत्ति होती है, परामात्मा तक जाने के लिए उसे उलटकर प्रत्यड्.मुखी बनाना होगा।

अलंकार - विभावना

राग - रामकली

3. तननां बुननां तज्यौ कबीर
राम नाम लिखि लियौ सरीर
मुसि मुसि रोवै कबीर की माई

ए बारिक कैसे जीवहिं खुदाई
जब लगि तागा बाहौं बेहि
तब लगि बिसरै राम सनेही
कहत कबीर सुनहु मेरी माई
पूरनहारा त्रिभुवनराई।

शब्दार्थ - मुसि मुसि = (सं0 मुषित) ठगी-सी। ए-यह। बारिक = बालक, लड़का। बाहौ = भरूँ। बेहि = वेध। छिद्र। पूरनहारा = आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला।

व्याख्या - कबीर ने वस्त्र बुनने का कार्य छोड़ दिया। उनके रोम-रोम में राम नाम भर गया। इस कारण कबीर की मॉ ठगी सी रोती है और कहती है कि हे प्रभु। यह बालक कैसे जीवन निर्वाह करेगा ? कबीर माँ को समझाते हुए कहते हैं कि मैं एक क्षण भी प्रिय राम को नहीं भुला सकता। मैं जब नली के छेद में तागा भरता रहूँगा, तब तक राम नाम बिसरा रहेगा। ऐ माँ! तू मेरे लिए चिन्ता मत कर। प्रभु सबकी आवश्यकाओं की पूर्ति करने वाला है।

टिप्पणी - यह पद कबीर के जीवन पर प्रकाश डालता है। कपड़ा बुनना उनका व्यवसाय था। किन्तु उनके उपर राम नाम की ऐसी घुन सवार थी कि वह एक क्षण भी उस नाम को बिसार नहीं सकते थे। उन्होंने अपनी माता को आश्वासन भी दिलाया था कि वह उनके लिए चिन्ता न करें। प्रभु उनके योग क्षेत्र का ध्यान रखेगा।

4. पिया मेरा मिलिया सत्त गियांनी
सब में व्यापक सबकी जांनै ऐसा अन्तरजामी
सहज सिंगार प्रेम का चोला सुरति निरति भरि आनी
सील संतोख पहिरि दोइ कंगन होई रही मगम दिवांनी
कुमति जराइ करौ मैं काजर पढ़ी प्रेम रस बांनी
ऐसा पिय हमं कबहुँ न देखा सूरति देखि लुभानी
कहै कबीर मिला गुर पूरा तन की तपनि बुझांनी।।

शब्दार्थ - सत्त = सत्य। गियानी = ज्ञानी। चोला = वस्त्र। सुरति = प्रेमपूर्णध्यान। निरति = प्रेमपूर्ण ध्यान की उत्कृष्टावस्था।

व्याख्या - उपनिषदों, में कहा गया है कि ब्रह्मवाचक इन्हीं तीनों शब्दों का अपने ढंग से प्रयोग करते है कि मेरा प्रियतम मुझे मिल गया, जो कि सत्य है, ज्ञान रूप है और सबमें व्यापता है। वह ऐसा अन्तर्यामी है कि सबके भीतर विद्यमान रहते हुए, सभी की शुभ-अशुभ वासनाओं और कर्मो को जानता रहता है।

अपने प्रियतम से मिलने के लिए मैंने सहज श्रृंगार किया है। मैंने प्रेमपूर्ण ध्यान और लवलीनता के सुन्दर वस्त्र में अपने को सुसज्जित किया है। हाथों में शील और संतोष के दो कुंगन धारण कर मैं प्रेम में उन्मत्त हो रही हूँ। मैं कुमति को जलाकर उसके काजल से अपने नेत्रों

को सजाऊँगी। मैंने प्रियतम को रिझाने के लिए प्रेम रस से परिपूर्ण वाणी भी सीख ली है। मेरा प्रिय अनुपम है। उसके प्रथम दर्शन मात्र से मैं उसकी ओर आकृष्ट हो गई। कबीर कहते हैं कि मुझे वह रहस्य ज्ञात हो गया जिससे मैं प्रियतम को प्राप्त कर अपने त्रिताप को बुझाने में सफल हो गई हूँ।

अलंकार - सांग रूपक

राग - बिहंगड़ो (बिहागड़ा)

5.4.2 कबीर के दोहे: संदर्भ एंव व्याखा

1. **कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गये ब्रह्म महेस**
   राम नाम ततसार है, सब काहू उपदेस

शब्दार्थ - कथि = कह। ततसार = सारतत्व

व्याख्या - कबीर कहते है कि ब्रह्मा और शिव ने सारे संसार को एक मुख्य उपदेश दिया है और मैं भी वही कहता हूँ कि राम नाम ही वास्तव में सार वस्तु है। यह उपदेश सबके लिए है अर्थात् बिना वर्ण, जाति, सम्प्रदाय और लिंग के भेद के राम की भक्ति का अधिकार सबको है।

2. **तूँ तूँ करता तू भया मुझ मैं रही न हूँ**
   वारी फेरी बलि गई जित देखौं तित तूँ ।।

शब्दार्थ - वारी = वरना, बलिहारी जाना

फेरी = भाँवरी, चक्कर

बलि गई = न्यौछावर होना।

व्याख्या - तू तू याद करते हुए मैं स्वयं 'तू' हो गया। मुझमें मेरा पन न रह गया अर्थात् मेरा अंहभाव समाप्त हो गया। मैं पूर्वरूप से तेरे उपर न्यौछावर हो गया हूँ और अब जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू दिखलाई देता है अर्थात् सारा जगत ब्रह्ममय हो गया है।

टिप्पणी - दूसरी पंक्ति का अन्य पाठ इस प्रकार मिलता है -

- 'वारी तेरे नाऊँ पर' इसका भी अर्थ वही है कि मैंने तेरे नाम पर अपने को न्यौछावर कर दिया। 'वारीफेरी बलि गई' का एक दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है - वारी फेरी अर्थात संसार में चक्कर काटते रहना, आवागमन, बोलि गई बल गया, जल गया, नष्ट हो गया। मेरा पृथक भाव जाता रहा। संसरण समाप्त हो गया। अब जिधर देखता हूँ, तू ही तू दिखलाई देता है।

अलंकार - तद्गुण

3. बिरहा - बुरहा जिमि कहा बिरहा है सुलतान
जा घट बिरह न संचरै सो घट सदा मसान

शब्दार्थ - बुरहा = विरह

सुलतान = राजा, श्रेष्ठ

मसान = श्मशान।

व्याख्या - विरह को बुरा मत कहो। बिरह तुच्छ, नहीं श्रेष्ठ है। जीवन का राजाधिराज है। वह सदा श्मशान के समान है अर्थात् जिस व्यक्ति में विरह का भाव नहीं है, वह मृत समान है, निर्जीव है।

टिप्पणी - तुलनीय - बिरहा-बिरहा आखिये, बिरहा है सुलतान फरीदा,
जिमुतन बिरह न उपजै, सोतणु जाणुमसाणु

4. कबीर माया पापिनी, फंद ले बैठी हाटि
जब जन तौ फन्देपरा, गया कबीरा काटि।।

शब्दार्थ - पापिनी = पाप में ले जाने वाली, दुष्टा

फंद = फंदा, पाश।

हाटि = बाजार में

काटि = काटकर।

कबीर कहते हैं कि पाप में ले जाने वाली माया इस संसार रूपी बाजार में फंदा लिए बैठी है। संसार के सारे लोग उसी पाश में फंस गए केवल कबीर (प्रभु-शरण में) उस फंदे को काटकर निकल गया अर्थात् उसके प्रलोभन से बच गया और परमार्थ को प्राप्त कर लिया।

अलंकार - व्यतिरेक।

5. सहजैं सहजैं सब गए, सुत वित कामिनि काम
एकमेव है मिलि रहा, दास कबीरा राम।

शब्दार्थ - सहजै-सहजै = सरलतापूर्वक।

सुत = पुत्र

वित = सम्पत्ति

कामिनि = स्त्री

व्याख्या - इस साखी में 'सहजैं-सहजैं' पारिभाषिक अर्थ में नहीं प्रयुक्त हुआ है यहाँ 'सहज' का अर्थ है - सरलतापूर्वक, स्वत: साधना दो प्रकार की होती है - एक तो नाना प्रकार की यन्त्रणाओं से इन्द्रियों की प्रवृत्तियों को बलपूर्वक दबाना और दूसरे प्रभु में इतना तीव्र अनुराग हो जाना कि विषयों का आकर्षण स्वतः घूट जाय। कबीरदास की साधना इसी दूसरे प्रकार की थी और उसी दृष्टि से वह कहते हैं कि मेरी पुत्र, धन, कामिनी और काम में आसक्ति सहज भाव से अर्थात! सरलतापूर्वक चली गई और मैं राम से एकरस हो गया। मैं तो इसी को 'सहज' कहता हूँ।

अलंकार - पुनरूक्तिप्रकाश।

5.5 कबीर का काव्य

कबीर की कविताई के संबंध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा ''उनकी वाणियों में सबकुछ को छाकर उनका सर्वजयी व्यक्तित्व विराजता रहता है। कबीर की वाणी का अनुकरण नहीं हो सकता। अनुकरण करने की सभी चेष्टाएँ व्यर्थ सिद्ध हुई है। इसी व्यक्तित्व के आकर्षण को सहृदय समालोचक संभाल नहीं पाता और रीझकर कबीर को कवि कहने में संतोष पाता है। ऐसे आकर्षक वक्ता को कवि न कहा जाए तो और क्या कहा जाए। परंतु यह मूल नहीं जाना चाहिए कि यह कवि रूप धतुण् में मिली वस्तु है। कबीर ने कविता लिखने की प्रतिज्ञा करके अपनी बाते नहीं कही थी।''

कबीर का कवि व्यक्तित्व बहुत महत्वपूर्ण है प्रसंगवश इतना कहना होगा कि हिंदी साहित्य के बहुमान्य समालोचकों ने कबीर की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए भी कवि के रूप में कबीर की प्रतिष्ठा कम ही ऑकी है। इकाई के इस भाग में विद्यार्थियों के अभ्यास हेतु कवि कबीर की कविताओं के कुछ चयनित अंश शब्दार्थों के साथ दिए जा रहे हैं जिन्हें विद्यार्थियों द्वारा स्वाध्याय द्वारा व्याख्यायित किया जाना है।

5.5.1 कबीर के पद (अभ्यास)

1. माया महागिनी हम जानी
तिरगुण फॉसि लिए कर डालै
बोलै मुधुरी बानी
केसव के कवंला होई बैठी
सिव कै भवन भवानी
पंडा कै मूरति होई बैठी
तीरथ हूँ मैं पानी
काहूँ के कौड़ी कानी
जोगी के जोगिनि होई बैठी
राजा के घरि रानी
मंगतां के भगतिनि होई बैठि

तुरकां के तुरकांनी
दास कबीर साहेब का बंदा
जाकै हाथ बिकानी।

शब्दार्थ - तिरगुण = तीन गुणों वाला (सत, रज, तम)
केसव = विष्णु
कवंला = लक्ष्मी
तुरकां = तुर्क
बिकानी = बिक गई, दास बन गई।

2. **हम न मेरें मरि है संसारा**
हम कूँ मिल्या जियावन हारा
अब न मरौ मरनै मन माना
तई मुए जिनि राम न जाना
साकत मेरे संत जन जीवै
भरि-भरि राम रसायन पीवै।
हरि भरि है तो हमदूँ मरि है।
हर न मेरे मेरें हम काहू कू मरि है।
कहै कबीर मन मनहि मिलावा
अमर मये सुख सागर पावा।

शब्दार्थ - जियावन = जीवन देने वाला

नई मुए = वो मरेंगे

साकत = शाक्त मतावलम्बी

रसायन = सार तत्व

3. **माघौ कब करिहौ दाया**

काम क्रोध हंकार बिआपें ना छूटै माया

उतपति बिदुं भयौ जा दिन तैं कबहूँ सचुनहि पायौ
पंच चोर संग लाइ दिए हैं
इन संगि जनम गॅवायौ
तन मन डस्यौ मुजंग भांमिनी
लहरइं वार न पारा
गुरू गारडू मिल्यौ नहि कबहूँ
पसन्यो बिरव बिकरारा

कहै कबीर दुख कासौं कहिए
कोई दरद न जानै
देहु दीदार बिकार दूरि करि
तब मेरा मन मानै।

शब्दार्थ - हंकार = अंहकार
बिआपै = व्याप्त होना
बिन्दु = वीर्य
सचु = आनंद
भामिनी = कामिनी
लहरे = विष के प्रभाव का झोंका
वार न पारा = ओर-छोर
गारडू = सर्प का विष उतारने वाला
बिकरारा = बिकराल
दीदार = दर्शन
बिकार = अवगुण
मन मानै = मन संतुष्ट होना।

5.5.2 कबीर के दोहे (अभ्यास के लिए)

1. मेरा मन सुमिरै राम, मेरा मन रामहिमाहि
अब मन रामहिं है रहा, सीस नवावौं काहि

सुमिरै = स्मरण करता है

माहि = में

नवावौं = नवाऊँ , झुकाऊँ

काहि = किसे।

2. नैन हमारे बावरे, छिन छिन लौरे तुज्झ
नाँ तूँ मिलै न मैं सुखी ऐसी वेदन मुज्झ

लौरै - लपकते हैं, उत्सुक होते हैं

तुज्झ - तुझे

वंदन - वंदना, पीड़ा

मुज्झ - मुझे

3. सुर नर थाके मुनि जनां ,जहाँ न कोई जाइ
मोटे भाग कबीर के , तहाँ रहे घर छाइ।

शब्दार्थ - जनाँ - लोग
मोटे - बड़े
छाइ - बना कर

4. कबीरा मन मिरतक मया
दुरबल मया सरीर
पाछै-पाछै हरि फिरै
कहत कबीर - कबीर

शब्दार्थ – मिरतक - मृतक तुल्य
दुरबल - दुर्बल

5. सुखिया सब संसार है
खायै अरू सौवै
दुखिया दास कबीर है
जागै अरू रोवै

अभ्यास प्रश्न

(क) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए -

1. कबीर की कविता का संग्रह.....है।
2. कबीर के कविता के.....भाग है।
3. साखी का अर्थ.....है।
4. सबद में.....हैं।
5. साखी.....छन्द में है।

5.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- कबीर के कवि व्यक्तित्व से परिचय प्राप्त कर चुके होंगे।
- कबीर द्वारा लिखित पदों एवं दोहों की सविस्तार व्याख्या को समझ चुके होंगे।
- कवि कबीर के कवि, दार्शनिक एवं सामाजिक रूप से चेतन व्यक्तित्त्व का साहित्यिक साक्ष्य प्राप्त कर चुके होंगे।

5.8 शब्दावली

आविर्भूत - प्रकट हुआ

विषयासक्ति - विषयों में आसक्ति

सम्प्रदाय - धर्म मत

क्रियाकलाप - विभिन्न प्रकार के कार्य

त्रिताप - तीन प्रकार के ताप (दैहिक दैविक, भौतिक)

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) 1. बीजक

2. तीन

3. गवाह

4. पद

5. दोहा

5.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, सरनाम सिंह, कबीर, व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त, 2011, कल्पना प्रकाशन,दिल्ली।
2. अग्रवाल, पुरूषोत्तम, कबीर-साखी और सबद, 2007, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया नई दिल्ली।
3. दास, श्यामसुंदर, कबीर ग्रंथावली, 2010, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली
4. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, (सम्पादक - मुकुदं द्विवेदी) 1981, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

5.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, काशीनागरी प्रचारिणी सभा, बनारस

2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

3. अग्रवाल, पुरूषोत्तम, अकथ कहानी प्रेम की, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

4. वंशी, बलदेव, कबीर एक पुनर्मूल्यांकन आधार प्रकाशन पंचकूला

5.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. कबीर का जीवन परिचय देते हुए उनके काव्य की सविस्तार समालोचना कीजिए।
2. भारतीय धर्मसाधना में कबीर के महत्व पर प्रकाश डालते हुए अपने विचार सविस्तार रूप से लिखिए।

इकाई 6 : सूरदास : साहित्य एवं आलोचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 सूरदास : जीवन परिचय एवं रचनाएँ
6.3.1 सूरदास: जीवन
6.3.2 सूरदास: रचनाएँ
6.4 सूरदास : काव्यकला एवं विचार
6.4.1 सूरदास: काव्यकला
6.5 सूरदास: आलोचना
6.6 सूरदास: पाठ एवं व्याख्या
6.7 सारांश
6.8 शब्दावली
6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.11 सहायक पाठ्य सामग्री
6.12 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

स्नातकोत्तर प्रथम वर्ष के द्वितीय प्रश्न पत्र के अंतर्गत यह छठी इकाई है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने क्रमश:भक्ति काव्य के उदय, उसके विकास को समझा तथा सूरदास से पूर्व मध्यकालीन भक्ति कविता के प्रमुख कवि संत कबीर के जीवन एवं काव्य को गंभीरता से समझा होगा। प्रस्तुत इकाई में आप कविवर सूरदास के जीवन एवं साहित्यिक का परिचय प्राप्त करेंगे। साथ ही उनके साहित्य संसार में से चयनित कुछ प्रतिनिधि पदों का पाठ एवं व्याख्या का अध्ययन भी हो इस इकाई में करेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- सूरदास के जीवन का क्रमिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- सूरदास के काव्य का क्रमबद्ध विकासात्मक अध्ययन कर सकेंगे।

- सूरदास के सघन रसात्मक पदों की ससंदर्भ व्याख्या कर सकेंगे।
- मध्यकालीन भक्ति कविता के अंतर्गत महाकवि सूरदास के महत्व को समझ सकेंगे।

6.3 सूरदास:जीवन परिचय एवं रचनाएँ

भारत वर्ष की महान प्रतिभाओं का लौकिक जीवन साधारण अर्थों में अज्ञात है। महाकवि सूरदास का जीवन भी इतिहास के किसी अज्ञात कोने में छिपा हुआ है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'यह अन्धा गायक कौन था' नामक निबंध में लिखा है, "यह अन्धा मनुष्य जो महाप्रभु वल्लभचार्य की शरण में गया था, जो अपने को 'सब पतितन कौ टीको' जनमत ही कौ पातकी बताकर व्याकुल वेदना से घिघिया उठा था (स्वयं महाप्रभु ने ही इस शब्द का प्रयोग किया था) और अपने को भगवत्-लीला के विषय में अन्जान बताया था, वह कौन था? वह किन अवस्थाओं में अन्धा हुआ था; कहाँ-कहाँ भटकता हुआ गऊघाट पहुँचा था; कितना अपमान, कितनी अवहेलना, कितना तिरस्कार पा चुका था, इसका कुछ भी पता नहीं है। बड़भागी माता पिता ने उसको जन्म दिया था, किन निदारूण परिस्थितियों में उनका यह लाला दर-दर भटकने को मजबूर हुआ था, उसे कोई नहीं जानता। किसी ने जानने की परवाह भी नहीं की। जिसका दृढ़ विश्वास हो गया था कि 'मैं जनमत ही कौ पतित' हूँ, 'सब पतितन कौ नायक' हूँ, वह कितना उपेक्षित हो चुका होगा; कितना अपमानित जीवन बिता चुका होगा – हमें बिल्कुल नहीं मालूम।" महाकवि सूरदास के संदर्भ में आचार्य द्विवेदी का यह कथन महत्वपूर्ण है। हालाकि महाकवि के जीवन से संबंधित बहुत सी जानकारियाँ विभिन्न शोध अध्येताओं एवं विचारकों ने खोज निकाली हैं परन्तु यहाँ यह कह देना महत्वपूर्ण है कि महाकवि के जीवन से संबंधित यह तथ्य अन्त: साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्यों पर आधारित है तथा कभी-कभी यह कल्पना की सीमा तक पहुँच जाते हैं।

अन्त:साक्ष्य के अन्तर्गत स्वयं कवि द्वारा लिखित उन पदों को रखा जा सकता है जिनके आधार पर हमें महाकवि के जीवन संबंधी तथ्यों की जानकारी प्राप्त होती है। हालांकि स्वयं ऐसे पदों की प्रमाणिकता पर भी विभिन्न विद्वानों ने संदेह प्रकट किया है। इसी तरह बहिर्साक्ष्यों के अन्तर्गत विद्वानों ने विभिन्न साहित्यिक एवं इतिहासपरक साक्ष्यों, प्रमाणों को सम्मिलित किया है । उदाहरण: (1) वार्ता साहित्य (2) साम्प्रदायिक साहित्य (3) समकालीन एवं परवर्ती भक्ति-साहित्य (4) ऐतिहासिक ग्रंथ (5) आलोचना एवं शोध।

6.3.1 सूरदास : जीवन

जन्म :- जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की तरह कविवर सूरदास का जन्म भी इतिहास के गर्त में छिपा हुआ है। विभिन्न विद्वानों ने शोधपूर्ण अध्ययन के पश्चात् महाकवि की जन्म तिथि, जन्म स्थान, जन्म स्थिति, प्रारम्भिक एवं उत्तरकालीन जीवन स्थितियों का विवरण दिया है। मध्यकालीन भक्ति साहित्य के अन्तर्गत महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले वल्लभ सम्प्रदाय के आधार पर कुछ विद्वान महाकवि सूरदास का जन्म सं0 1535, वैशाख शुक्ल पंचमी, मंगलवार को मानते हैं। इस

संदर्भ में मध्यकालीन भक्ति कविता के विशेषज्ञ डा. दीनदयाल गुप्त का विश्लेषण महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार पुष्टिमार्ग के आचार्य वल्लभ सूरदास से आयु में 10 दिन बड़े थे। महाप्रभु वल्ल्भाचार्य की जन्म तिथि सं0 1535 वि0 वैशाख कृष्ण एकादशी, रविवार मानी जाती है, इस आधार पर डा. दीनदयाल गुप्त एवं अन्य कई शोधकर्ता डा. सूरदास की जन्मतिथि वैशाख सुदी पंचमी को मानते हैं। वल्लभ सम्प्रदाय के एक अन्य वार्ताकार श्री गोकुल दास की पुस्तक 'निजवार्ता में भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है, उन्होंने लिखा है, ''सो श्री आचार्य जी सो दस दिन छोटे हुते।''

जन्म स्थान :- जैसा की पहले कहा जा चुका है कि सूरदास के जीवन की अन्य स्थितियों की ही तरह जन्म स्थान के संबंध में भी तथ्यात्मक घटाटोप बना हुआ है। विभिन्न विद्वानों ने समय-समय पर शोध के आधार पर अलग-अलग स्थानों को सूरदास का जन्मस्थान माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, ''सूरदास जी का वृत्त 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' से केवल इतना ज्ञात होता है कि वे पहले गऊघाट (आगरे और मथुरा के बीच) पर एक साधु या स्वामी के रूप में रहा करते थे और शिष्य करा करते थे।'' इसी प्रकार डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने वर्तमान ग्वालियर को 'गोपाचल' नामक स्थान मानकर वहाँ सूरदास का जन्म निश्चित किया है। हालांकि रामचंद्र शुक्ल ने गऊघाट को सूरदास का निवास स्थान माना है परन्तु वे रूनकता को सूरदास का जन्म स्थान मानते हैं। "डा. मुंशीराम शर्मा ने 'साहित्यलहरी' में उल्लिखित, 'गोपाचल' और जनश्रुति में प्रचलित 'रूनकता' को गऊघाट या गौघाट बताया है जो आगरा मथुरा से 24 मील दूर है।" जो भी हो परन्तु इतना निश्चित है गऊघाट पर ही सूरदास और वल्लभाचार्य की भेंट हुई ओर वल्लभाचार्य की ही प्रेरणा से सूरदास ने भागवत की कथा को गेय पदों में परिवर्तित किया। आचार्य शुक्ल के अनुसार, इसके पश्चात् ही "उनकी सच्ची भक्ति और पदरचना की निपुणता देख वल्लभाचार्य जी ने उन्हें अपने श्रीनाथ जी के मंदिर की कीर्तन सेवा सौंपी।" कुछ विद्वान सीही नामक स्थान को भी सूरदास का जन्म स्थान मानते हैं।

जीवन स्थिति :- महाकवि सूरदास के जीवन से संबंधित एक तथ्य पर अधिसंख्य विद्वान एकमत हैं - वह तथ्य है कवि का जन्मान्ध होना। स्वयं सूरदास द्वारा लिखित कई पदों में कवि के अन्धे होने का उल्लेख मिलता है। परन्तु कुछ विद्वान मानते है कि कवि सूरदास अंधे अवश्य थे,परन्तु जन्म से नहीं। प्रसिद्ध पुस्तक 'भक्तमाल', चौरासी वार्ता एवं गोस्वामी हरिराय के भावप्रकाश के अनुसार भी सूरदास जन्मान्ध थे। कवि की शिक्षा के संबंध में भी लगभग यही स्थिति है। सम्पूर्ण सूर-काव्य का अवगाहन करने के पश्चात् यह बात आसानी से कही जा सकती है कि सूरदास काव्य-ज्ञान के आधार पर शिक्षा सम्पन्न व्यक्तित्व के स्वामी थे। उनकी रचनाओं को पढ़कर यह अनुभव होता है कि सूरदास को न केवल काव्यशास्त्र का अपितु संगीतशास्त्र का भी ज्ञान था। सूरदास का अनुभव क्षेत्र बृहद था यह बात भी सूरदास के पाठकों को भली प्रकार समझ में आ जाती है। हालांकि सूरदास की शिक्षा के संबंध में सभी अन्त: एवं बाह्य साक्ष्य मौन है तदापि सूरदास के काव्य को पढ़कर उनके विशिष्ट शास्त्रीय ज्ञान एवं व्यावहारिक अनुभव को जानना कठिन नहीं है।

मृत्यु :- महाकवि सूरदास के जीवन के अंतिम चरण पर प्रकाश डालते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि 'सूरसागर' समाप्त करने पर सूर ने जो 'सूरसागर सारावली' लिखी है उसमें अपनी अवस्था 67 वर्ष की कही है – 'गुरू परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन'। तात्पर्य यह कि 67 वर्ष के होने के कुछ पहले वे 'सूरसागर' समाप्त कर चुके थे। सूरसागर समाप्त होने के थोड़ा ही पीछे उन्होंने 'सारावली' लिखी होगी। एक और ग्रंथ सूरदास का 'साहित्य लहरी' है, जिसमें अलंकारों और नायिका भेदों के उदाहरण प्रस्तुत करने वाले कूट पद है। इसका रचनाकाल सूर ने इस प्रकार व्यक्त किया है –

मुनि सुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरीनंद को लिखि सुबल सम्बत पेख।।

इसके अनुसार संवत् 1607 में 'साहित्य लहरी' समाप्त हुई। यह तो मानना ही पड़ेगा कि साहित्यक्रीड़ा का यह ग्रंथ 'सूरसागर' से छुट्टी पाकर ही सूर ने संकलित किया होगा।

उसके दो वर्ष पहले यदि 'सूरसारावली' की रचना हुई तो कह सकते हैं कि संवत् 1605 में सूरदास जी 67 वर्ष के थे। अब यदि उनकी आयु 80 या 82 वर्ष की मानें तो उनका जन्मकाल सं0 1540 के आसपास तथा मृत्युकाल, सं0 1620 के आसपास अनुमानित होता है। डा. मुंशीराम शर्मा के अनुसार सूरदास संवत् 1628 एवं 'सूर-निर्णय' के लेखकों के अनुसार संवत् 1640 तक वर्तमान थे। सभी विद्वानों के शोधों का विश्लेषण करने पर यह अनुमित किया जा सकता है कि महाकवि सूरदास की मृत्यु संवत् 1635 से 1642 के मध्य कभी हुई होगी। सूर-साहित्य के अन्यतम विद्वान प्रोफेसर व्रजेश्वर वर्मा ने सूरदास के जीवन का आकलन करते हुए ठीक ही लिखा है कि, ''सूरदास उच्च कोटी के भक्त थे। महाप्रभु से भेंट होने के पूर्व से ही वे विरागी और संभ्रांत भक्त के रूप में भगवतद्भजन करते हुए गऊघाट पर रहते थे। उस समय भी वे पद-रचना और संगीत में पर्याप्त निपुण थे। वे इतने विज्ञ और अनुभवी थे कि उन्होंने तीन-चार दिन में ही 'श्रीमद्भागवत' और 'सुबोधिनी' का वास्तविक भाव हृदयंगम कर लिया और तत्संबंधी आशु पद-रचना से महाप्रभु पर गंभीर प्रभाव डाल दिया। यद्यपि दार्शनिक वादों के संबंध में उनका दृष्टिकोण पंडितों-जैसा नहीं था और न उन्होंने अपने काव्य में दार्शनिक विचारों का प्रतिपादन या विवेचन किया है, फिर भी भक्ति-भाव के प्रकाशन के प्रसंगों से विदित होता है, कि उन्हें तत्कालीन दार्शनिक सिद्धान्तों की भक्ति-भावना का जैसा विशद और व्यावहारिक रूप उनके काव्य में मिलता है, वैसा कदाचित् अन्यत्र दुर्लभ है।''

6.3.2 सूरदास : रचनाएँ

सूरदास वास्तविक अर्थों में 'महाकवि' की पदवी धारण करने के अधिकारी हैं। 'महाकवि' के स्तर पर पहुँचने के लिए अनेकानेक वृहद काव्य ग्रंथों का निर्माता होना आवश्यक नहीं होता। 'सूरदास' की एकमात्र प्रमाणिक कृति 'सूरसागर' सूरदास को महाकवि कहने की प्रवृत्ति को प्रमाणिक बना देती है। अध्येताओं ने माना है कि 'सूरसागर' सूरदास की सर्वाधिक प्रमाणिक रचना है। इसके अतिरिक्त 'सूरसारावली' एवं 'साहित्य लहरी' नामक अन्य दो

पुस्तकों को भी कुछ अध्येताओं ने सूरदास की पुस्तक माना है। हालांकि सूरदास के नाम से कतिपय अन्य पुस्तकें भी प्राप्त हुई हैं। **सूरसागर**–परम्परानुसार यह माना जाता रहा है कि महाकवि सूरदास द्वारा मूल रूप में लिखित 'सूरसागर' में सवा लाख पद थे, परन्तु वर्तमान में सूरसागर इतने वृहद रूप में प्राप्त नहीं होता है। 'सूरसागर' के एक परिमार्जित संस्करण का विस्तृत विवेचन करते हुए प्रोफेसर ब्रजेश्वर वर्मा ने निम्न तालिका प्रस्तुत की है –

स्कंध	**पद-संख्या**	**पृष्ठ-संख्या**
विनय के पद तथा प्रथम स्कंद	223+120=343	114
द्वितीय स्कंध	38	13
तृतीय स्कंध	13	10
चतुर्थ स्कंध	13	12
पंचम स्कंध	04	05
षष्ठ स्कंध	08	07
सप्तम स्कंध	08	08
अष्टम स्कंध	17	10
नवम् स्कंध	174	75
दशम स्कंध –पूर्वार्ध	4160	1392
दशम स्कंध –उत्तरार्ध	149	71
एकादश स्कंध	04	03
द्वादश स्कंध	05	04
	4936	1724

इससे स्पष्ट है कि यद्यपि दशम स्कंध-पूर्वार्ध अन्य स्कंधों की अपेक्षा आकार में बड़ा है, फिर भी उसमें दशम स्कंध-उत्तरार्ध से केवल 11, तृतीय से 48, चतुर्थ से 48 ओर एकादश से 61 पृष्ठ अधिक है। दशम स्कंध–पूर्वार्ध की पृष्ठ संख्या शेष स्कंधों की सम्मिलित पृष्ठ-संख्या का लगभग छठा भाग है। विस्तार की दृष्टि से दशम स्कंध- उत्तरार्ध का दूसरा, नवम् का सातवाँ और प्रथम का आठवाँ स्थान है।''

वर्तमान सूरसागर जिस रूप में मिलता है उसे दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

1. द्वादश स्कन्धात्मक
2. संग्रहात्मक

वैकटेश्वर प्रेस, मुम्बई द्वारा प्रकाशित 4578 पदों वाला 'सूरसागर' एवं नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा प्रकाशित कुल 5206 पदों वाला 'सूरसागर' द्वादश स्कन्धात्मक है एवं नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित 'सूरसागर' संग्रहात्मक संस्करण है। इसके अतिरिक्त भी इलाहाबाद एंव वाराणसी के कुछ मान्य प्रकाशनों ने 'सूरसागर' के कुछ विशिष्ट संस्करणों

का प्रकाशन किया है। सूरसागर की रचना अवधि सम्वत् 1567 से 1600 तक स्वीकृत है। इसका प्रेरणा-स्रोत श्रीमदभागवत है और उसी की भाँति इसमें भी द्वादश स्कन्ध हैं। श्रीमदभागवत को सूरदास ने अपनी प्रतिभा से पल्लिवित किया है। अत: सूरसागर को उसका अनुवाद कदापि नहीं माना जा सकता है। सम्पूर्ण सूरसागर एक मुक्तक के रूप में रचित है। संगीतात्मकता, नाद-सौन्दर्य, भावों की एकता विभिन्न रागरागनियाँ, विभिन्न रसों का प्रयोग तथा अद्भुत भावाभिव्यक्ति आदि न जाने कितनी विशेषताएँ इस ग्रंथ में एक साथ सिमट कर आ गई हैं। इसमें ब्रजभाषा की जो प्रांजलता है, वह घनानंद को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ है। सूरसागर का दशमस्कन्ध तो रीढ़ रज्जु है।

सूरसागर-सारावली :- इस रचना की कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति आज तक नहीं मिली है। बंबई तथा लखनऊ से प्रकाशित 'सूरसागर' की प्रतियों में यह रचना मिलती है। परन्तु इसका आधार कौन सी हस्तलिखित प्रति है, इसका उल्लेख कहीं नहीं हुआ है। वैंकटेश्वर प्रेस, मुंबई द्वारा प्रकाशित 'सूरसागर' के साथ प्रकाशित 'सूर-सागर सारावली' का शीर्षक 'अथ श्री सूरदास जी रचित सूरसागर सारावली तथा सवा लाख पदों का सूचीपत्र' है। ''आरम्भ में 'बन्दौ श्री हरिपद सुचादाई की टेक के साथ तनिक हेरफेर से 'सूरसागर' का प्रारंभिक वंदना वाला प्रसिद्ध पद है। तदनंतर 'सार' और 'सरसी; केवल दो छन्दों का प्रयोग किया गया है। प्रत्येक छंद के बाद उसकी संख्या लिखी हुई है, जो 1107 है। छंद संख्या 1102 और 1103 में बताया गया है कि "कर्मयोग, ज्ञान और उपासना के भ्रम में भटकने के बाद श्री बल्ल्भ गुरू ने तत्व सुनाया और लीला-भेद बताया। उसी दिन से 'एक लक्ष पद बंद' में हरि लीला गाई। उसका 'सार' 'सुरसारावली' अति आनन्द से गाते हैं।'' इस प्रकार इस रचना का विषय 'सूरसागर' के पदों की सूची अथवा सार कहा गया है। पद-संख्या 966 के बाद 'इति दृष्टकूट सूचनिका सम्पूर्ण' से भी यही सूचित होता है।"

हालांकि अधिसंख्य विद्वान 'सूरसागर' एवं 'सूरसागर सारावली' में अभिन्नता का भाव बताते हैं परन्तु वस्तुनिष्ठ विश्लेषण के पश्चात् यह बात साफ हो जाती है कि अधिकांश में अभिन्नता होते हुए भी 'सूरसागर' एवं 'सूर-सारावली' में पारस्परिक भिन्नता विद्यमान है। सूर-सागर सारावली एक स्वतंत्र रचना है। इस कृति का रचनाकाल विद्वानों ने संवत् 1602 स्वीकार किया है, किन्तु डा. गोवर्द्धन नाथ शुक्ल को यह स्वीकार्य नहीं है। उन्होंने इसका रचनाकाल संवत् 1634 निर्धारित किया है। उनका कथन है –"जब सागर में ही सूर उसके रचनाकाल का संकेत नहीं दे सके, तो 1107 युग्मों की रचना तो उनके लिए खिलवाड़ मात्र थी। फिर भी संवत् 1602 की अपेक्षा 1634 कहीं अधिक जँच सकता, किन्तु कवि का लक्ष्य सारावली का प्रणयन-संवत् देना है ही नहीं, क्योंकि गुरूप्रसाद का महतव 1634 नहीं, अपितु 1567 में है।"

साहित्य लहरी :- 'सूरदास' के नाम पर एक अन्य काव्य–रचना को विद्वानों ने प्रमाणिक माना है, वह रचना है 'साहित्य-लहरी'। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार इस पुस्तक का रचना काल सं0 1607 वि0 है परन्तु डा. मुंशीराम शर्मा एवं डा. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार उक्त रचना का निर्माणकाल क्रमश सं0 1627 या सं0 1617 है। 'साहित्यलहरी' का विषय अलंकार और

नायिका भेद है। इन्हीं के साथ कुछ संचारी एवं स्थायी भाव का विश्लेषण भी किया गया है "दृष्टि कूट शैली में स्वयं रूपकातिश्योक्ति अलंकार माना जाता है। रूपकातिश्योक्ति को आधार बनाकर अन्य अलंकारों तथा नायिका, रस, भाव आदि के उदाहरण देने का विचार अत्यन्त विलक्षण है।" हालाकि सूरसाहित्य के गंभीर अध्येताओं ने 'साहित्य-लहरी' की विषय-वस्तु की सूरदास की महान काव्य-प्रतिभा एवं काव्य-कला की अपेक्षा कमतर माना है और सूरदास की कृति के रूप में साहित्यलहरी की प्रमाणिकता को संदिग्ध माना है। इस पर भी साहित्य के कुछ मर्मज्ञ समालोचकों ने 'साहित्य-लहरी' को सूरदास की मौलिक रचना माना है। 'साहित्य लहरी की विषय-वस्तु पर संक्षिप्त टिप्पणी करते हुए डा. अंकुर ने लिखा है, 'साहित्य-लहरी' एक चमत्कारपूर्ण रचना है। इसका सृजन 'दृष्टिकूट' पदों में हुआ है। दृष्टिकूट एक ऐसी रचना है, जिसमें चमक, श्लेष एवं अन्योक्ति के माध्यम से वाचक अर्थ या प्रसंग की कल्पना की जाती है। साथ ही अनेकार्थवाची विशिष्ट शब्दों का प्रयोग भी इसमें अपेक्षित है। श्रीमदभागवत में ऐसी रचना को 'वाच-कूट' की संज्ञा दी गई है। श्री प्रभुदयाल भीत्तल का कथन है कि ऐसी रचना किसी विशिष्ट उद्देश्य से की जाती है। 'दृष्टिकूट' का शाब्दिक अर्थ है – दृष्टि को छलने वाला। अर्थात् ऐसे शब्द जिनका अर्थ गोपनीय हो या लक्षणा-व्यंजना का आवरण लिए हुए हों उन्हें दृष्टिकूट कहते हैं।

महाकवि सूरदास एवं उनकी काव्य सामग्री का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है- "पहले कहा गया है कि श्री वल्लभाचार्य जी की आज्ञा से सूरदास जी ने श्रीमद्भागवत की कथा को पदों में गाया। इनके सूरसागर में वास्तव में भागवत के दशम स्कंध की कथा संक्षेपत: इतिवृत्त के रूप में थोड़े से पदों में कह दी गई है। सूरसागर में कृष्णजन्म से लेकर श्रीकृष्ण के मथुरा जाने तक की कथा अत्यंत विस्तार से फुटकल पदों में गाई गई है। भिन्न-भिन्न लीलाओं के प्रसंग को लेकर इस सच्चे रसमग्न कवि ने अत्यंत मधुर और मनोहर पदों की झड़ी सी बांध दी है । इन पदों के संबंध में सबसे पहली बात ध्यान देने की यह है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्य रचना होने पर भी ये इतने सुडौल और परिमार्जित हैं। यह रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यपूर्ण है कि आगे होने वाले कवियों की श्रृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठी सी जान पड़ती है। अत: सूरसागर किसी चली आती हुई गीतकाव्य परम्परा का – चाहे वह मौखिक ही रही हो – पूर्ण विकास सा प्रतीत होता है।"

अभ्यास प्रश्न

(क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न –

i. सूरदास का जन्म कब हुआ था ?
ii. सूरदास की सर्वाधिक प्रमाणिक रचना कौन सी है ?
iii. सूरदास की तीन रचनाओं के नाम बताईए।

(ख) सही/गलत चुनिए –

i. सूरदास जन्मान्ध थे (सही/गलत)

ii. सूरसागर की कथा श्रीमद्भागवदपुराण पर आधारित है (सही/गलत)

iii. सूरसागर एकादश स्कन्धों में विभाजित है (सही/गलत)

6.4 सूरदास : काव्यकला एवं विचार

महाकवि सूरदास की काव्य कला को उसकी पृष्ठभूमि में समझाते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है - "जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूषधारा, जो काल की कठोरता में दब गई थी, अवकाश पाते ही लोकभाषा की सरलता में परिणत होकर मिथिला की अमराईयों में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील कुंजों के बीच फैले मुरझाए मनों को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झनकार अन्धे कवि सूरदास की वीणा की थी।"

6.4.1 सूरदास : काव्यकला

किसी भी कवि का विश्लेषण करने के लिए शास्त्रज्ञ आचार्यों द्वारा काव्य को दो अलग-अलग अवयवों में विभाजित किया गया है। इसे काव्य का आंतरिक एवं वाह्य विभाजन भी कहा जाता है। इस विभाजन में एक तरफ जहाँ काव्य की वस्तु का विश्लेषण किया जाता है वहीं दूसरी तरफ काव्य के स्वरूप की समीक्षा की जाती है। सूरदास की काव्य कला के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस विश्लेषण प्रक्रिया को निम्नांकित आधार से समझाने का प्रयास किया है। "कवि कर्म विधान के दो पक्ष होते हैं – विभाव पक्ष और भाव पक्ष। कवि एक ओर तो ऐसी वस्तुओं का चित्रण करता है, जो मन में कोई भाव उठाने या उठे भाव को और जगाने में समर्थ होते हैं, और दूसरी ओर उन वस्तुओं के अनुरूप भावों के अनेक स्वरूप शब्दों द्वारा व्यक्त करता है। एक विभाव पक्ष है दूसरा भाव पक्ष है। कहने की आवश्यकता नहीं कि काव्य में ये दोनों अन्योन्याश्रित है, अत: दोनों रहते हैं। जैसे नायिका के रूप का नखशिख का कोरा वर्णन लें, तो उसमें भी आश्रय का रतिभाव अव्यक्त रूप में वर्तमान रहता है।"

विभाव पक्ष के अंतर्गत वस्तुएँ दो रूपों में लाई जाती है – वस्तु रूप में और अलंकार रूप में; अर्थात् प्रस्तुत रूप में और अप्रस्तुत रूप में। आचार्य शुक्ल द्वारा प्रदान किया गया आधार महाकवि सूरदास की काव्यकला को विश्लेषित करने हेतु महत्वूपर्ण प्रतिमान की तरह कार्य करता है। विभिन्न विद्वानों ने इसी आधार पर सूरदास की काव्यकला का एकनिष्ठ विवेचन किया है। विद्वानों के अनुसार प्रथम अर्थात् भाव पक्ष के अंतर्गत भक्ति-भावना, विचार, दर्शन, प्रकृति व्यंजना, वात्सल्य, श्रंगार आदि तत्वों एवं काव्य अवयवों का समावेश किया गया है तथा दसरे अर्थात् विभाव पक्ष में काव्य सौष्ठव एवं सौन्दर्यशास्त्रीय तत्वों का विश्लेषण किया गया है। इसके अन्तर्गत भाषा, लालित्य, छंद, रस एवं अलंकार, शैली इत्यादि तत्वों का समावेश किया गया है।

(क) भाव पक्ष (अनुभूति पक्ष) – महाकवि सूरदास की अनुभूति या भावपक्ष के अन्तर्गत भक्ति भावना, वात्सल्य, श्रृंगार, प्रकृति-चित्रण, दर्शन, व्यंग्य–विनोद, आदि तथ्यों पर विचार करना समीचीन प्रतीत होता है।

भक्ति-भावना – महाकवि सूरदास ने इस प्रपंचात्मक संसार से छूटने का एकमात्र उपाय हरि-भक्ति ही स्वीकार किया है । सूरदास की रचनाओं का सम्यक् अनुशीलन करने पर हमारे सामने दो प्रकार के पद आते हैं। एक तो विनय-भक्ति के पद और दूसरे सख्य-भक्ति के पद। विनय से आप्लावित भक्ति मुख्य रूप से दास्य भाव पर आधारित है। इस कोटि की भक्ति में भक्त कवि सूर ने अपने को निरीह, अंकिचन और पापी की सरणी में रखा है। अपने अराध्य की श्रेष्ठता को उन्होंने पग-पग पर स्वीकार किया है।

"श्रीमद्भागवत की नवधा भक्ति में से सूर ने अन्तिम तीन को ही मुख्य रूप से ग्रहण किया है, जिसमें आत्म-निवेदन, दास्य एवं सख्य के नाम उल्लेख्य है।" सूरदास के काव्य में समाविष्ट संपूर्ण भक्ति तत्व का आधार उपासक एवं उपास्य के बीच अनन्य प्रेमपूर्ण काव्य का केन्द्र बिन्दु है। यही पारस्परिक प्रेम एक तरफ सूर के काव्य में माधुर्य ओज एवं लालित्य का सृजन करता है वहीं दूसरी तरफ श्रृंगार और वात्सल्य के सभी पारम्परिक एवं मौलिक तत्वों का समावेश कराता है।

वात्सल्य – सूरदास का काव्य प्रारम्भिक स्तर पर अधिकांशत: उपास्य की बाल सुलभ चेष्टाओं का मौलिक काव्यात्मक उदाहरण कहा जा सकता है। वात्सल्य के अंतर्गत दो काव्य रूप हमारे सामने हैं -

(1) संयोग वात्सल्य (2) वियोग वात्सल्य

(1) संयोग वात्सल्य के अन्तर्गत कृष्ण के जन्म से लेकर बाल्यकाल की संपूर्ण चेष्टाएँ अत्यन्त काव्यात्मक एंव मौलिक रूप से सूरदास की कविता में समाविष्ट है।

कृष्ण जन्म, गोकुल प्रवेश, जन्मोत्सव से होते हुए सम्पूर्ण बाल्यकाल, कृष्ण का बाल रूप में वर्णन, बाल-चष्टाएँ, पारम्परिक बाल केलियाँ, माँ एवं शिशु का मनोवैज्ञानिक संबंध, शिशु की उत्तरोत्तर बढ़ती चेष्टाएँ बाल-लीला, माखन चोरी एंव शिशुत्व का अद्भुद समागम, सूर के काव्य को स्वयं में एक प्रतिमान बना देते हैं।

वियोग वात्सल्य - सूर के वात्सल्य-वर्णन का संयोग पक्ष जितना मार्मिक एवं अद्वितीय बन पड़ा है, वियोग पक्ष उतना ही हृदयद्रावक और अनूठा हो चला है। वियोग वात्सल्य की सबसे सुन्दर झलक श्रीकृष्ण के माथुरागमन के अवसर पर लक्षित होती है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि वात्सल्य रस के अन्तर्गत सूरदास के विश्लेषकों ने लक्षित भी किया है, सूर बाल-लीला-वर्णन में अपना सानी नहीं रखते हैं। उन्होंने वात्सल्य के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का बड़ा ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। इस क्षेत्र में अन्य कवि उनकी सरणी में बैठने में असमर्थ हैं। तभी तो आचार्य शुक्ल को कहना पड़ा है – "वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक

उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया है, उतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का वे कोना-कोना झाँक आये।"

श्रृंगार - वात्सल्य की ही तरह सूरसागर में वर्णित श्रृंगार भावना का चित्रण भी अद्वितीय है। यह भी सूरदास ने पारम्परिक श्रृंगार भावनाओं -संयोग श्रृंगार एवं वियोग श्रृंगार - का चित्रण बेहद सधे हुए पारम्परिक एंव नवीन उद्भावनाओं वाले मौलिक रूप से किया है। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की विवेचना प्रस्तुत की जा सकती है।

श्रृंगार एवं वात्सल्य के क्षेत्र में सूर की समता को और कोई कवि नहीं पहुँचा है। श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का इतना प्रचुर विस्तार और किसी कवि में नहीं मिलता। वृन्दावन में कृष्ण और गोपियों का सम्पूर्ण जीवन क्रीड़ामय है और वह सम्पूर्ण क्रीड़ा संयोगपक्ष है। उसके अन्तर्गत विभागो की परिपूर्णता, कृष्ण और राधा के अंगप्रत्यंग की शोभा के अत्यन्त प्रचुर और चमत्कारपूर्ण वर्णन में तथा वृन्दावन के करील कुंजों, लताओं, हरेभरे कछारों, खिली हुई चाँदनी,कोकिल कूजन संचारियों का इतना बाहुल्य कहाँ मिलेगा। सारांश यह कि संयोगमुख के जितने प्रकार के क्रीड़ाविधान हो सकते हैं, वे सब सूर ने लाकर इकट्ठे कर दिए हैं। यहाँ तक कि कन्धे पर चढ़कर फिरने का राधा का आग्रह जो कुछ कम रसिक लोगों को अरूचिकर स्त्रैणता प्रतीत होगी।

सूर का संयोगवर्णन एक क्षणिक घटना नहीं है, प्रेम संगीतमय जीवन की एक गहरी चलती धारा है, जिसमें अवगाहन करने वाले दिव्य माधुर्य के अतिरिक्त और कहीं कुछ नहीं दिखाई पड़ता। राधाकृष्ण के रंग रहस्य के इतने प्रकार के चित्र सामने आते हैं कि सूर का हृदय प्रेम की नाना उमंगों का अक्षय भण्डार प्रतीत होता है। प्रेमोदयकाल की विनोदवृत्ति और हृदयप्रेरित भावों की छाया चारों ओर छलक पड़ती है। कहने का सारांश यह कि प्रेम नाम की मनोवृत्ति का जैसा ज्ञान सूरदास को था वैसा किसी अन्य कवि को नहीं। इनका सारा संयोगवर्णन लम्बी चौड़ी प्रेमचर्या है जिसमें आनन्दोल्लास के न जाने कितने स्वरूपों का विधान है। रासलीला, दानलीला, मानलीला इत्यादि सब उसी के अन्तर्गत हैं। सूर के संयोग वर्णन की बात हो चुकी, इनका विप्रलम्भ भी ऐसा ही विस्तृत और व्यापक है। वियोग की जितन अन्तर्दशाएँ हो सकती है, जितने ढंगों से उन दशाओं का साहित्य में वर्णन हुआ है और सामान्यतः हो सकता है, वे उसके भीतर मौजूद हैं। आरम्भ वात्सलय रस के वियोगपक्ष से हुआ है। आगे चलकर गोपियों की वियोगदशा का जो धाराप्रवाह वर्णन है उसका तो कहना ही क्या है। न जाने कितनी मानसिक दशाओं का संचार उसके भीतर है। कौन गिना सकता है ? संयोग और वियोग दो अंग होने से श्रृंगार की व्यापकता बहुत अधिक है। इसी से वह रसराज कहलाता है। इस दृष्टि से यदि सूरसागर को हम रससागर कहें तो बेखट के कह सकते हैं।

विप्रलम्भ श्रृंगार का उत्कृष्टतम रूप सूरदास के काव्य में अभिव्यक्त हुआ है। उन्होंने विरह-दशा के अन्तर्गत सभी अन्तर्दशाओं का चित्रण किया है। इसमें गोपियों के निश्छल हृदय एवं सहज प्रेम आत्मानुभूति का विषय बन गया है, प्रिय का अतीन्द्रिय स्वरूप आत्मानुभव से ही

ग्राह्य है। प्रिय और प्रिया का, भक्त और भगवान का, ज्ञाता और ज्ञेय का यह पूर्ण एकात्म्य ही प्रेम, भक्ति और ज्ञान की सिद्धावस्था है। इस प्रकार सूर का श्रृंगार वर्णन रम्य, मौलिक और संपूर्ण विश्व-साहित्य के लिए अद्भूत है।

प्रकृति - सूरदास के काव्य में प्रकृति की उपस्थिति अनिवार्य चरित्र के रूप में है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लक्षित करते हुए लिखा है, ''सूरदास जी का विहार स्थल जिस प्रकार घर की चाहरदीवारी के भीतर तक ही न रहकर यमुना के हरे-भरे कछारों, करील के कुंजों और वनस्थलियों तक फैला है, उसी प्रकार उनका विरह विर्णन भी 'बैरिन भइँ रतियाँ' और 'साँपिन, भई सेजिया' तक ही न रहकर प्रकृति के खुले क्षेत्र के बीच दूर-दूर तक पहुँचता है। मनुष्य के आदिम वन्य जीवन के परम्परागत मधुर संस्कार को उद्दीप्त करने वाले इन शब्दों में कितना माधुर्य है – 'एक बन ढूँढ़ि सकल बन ढूँढौ, कतहूँ न श्याम लहौं।' ऋतुओं का आना-जाना उसी प्रकार लगा है। प्रकृति पर उनका रंग वैसा ही चढ़ता-उतरता दिखाई पड़ता है। भिन्न-भिन्न ऋतुओं की वस्तुएँ देख जैसे गोपियों के हृदय में मिलने की उत्कंठा उत्पन्न होती है वैसे ही कृष्ण के हृदय में क्यों नहीं उत्पन्न होती ? जान पड़ता है कि ये सब उधर जाती है नहीं, जिधर कृष्ण बसते हैं। अपनी अर्न्तदशा को ऋतु-सुलभ व्यापारों के बीच बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप में देखना भावमग्न अन्तः करण की एक विशेषता है। इसके वर्णन में प्रस्तुत अप्रस्तुत का भेद मिट सा जाता है।" सूरदास के काव्य में प्रकृति आलम्बन एवं उड़पीन दोनों रूपों में विद्यमान रही है। संयोग के क्षणों में जो प्रकृति सुखदायिनी होती है, वियोग पक्ष में वही प्रकृति दुखदायिनी बनकर प्रकट होती है।

कला पक्ष:

भाषा - भाषा के रूप में महाकवि सूरदास ने ब्रजभाषा को अपनी साहित्य रचना का आश्रय बनाया। भाषा के सभी आंतरिक एवं बाह्यगुणों का उद्घाटन हमें सूरदास की कविता में दृष्टिगोचर होता है। भाषा की भावात्मकता, लालित्य, गीतात्मकता एवं सहज प्रांजल प्रवाह का उत्कृष्टतम उदाहरण महाकवि सूरदास की भाषा है। सूरदास की कविता में पाठक को ब्रज भाषा के लगभग सभी गुण एवं रूप देखने को मिलते है। शब्दों के तत्सम रूप तद्भव रूप, अप्रस्तुत योजना के लिए मौलिक शब्द विन्यास, लोकोक्तियों एवं मुहावरे का प्रयोग, सहजता, उक्ति वैचित्रय, शब्द की तीनों शक्तियों-अमिधा, लक्षणा एवं व्यंजना - का उत्कृष्ट प्रयोग आदि कुछ सूरदास की काव्य-भाषा की मौलिक विशेषताएँ हैं। सूरदास जी ने जन-प्रचलित लोकभाषा को साहित्यिक क्षेत्र में अवतरित किया। फलस्वरूप उनकी भाषा में विभिन्न प्रकार के शब्द आ गए। सबसे अधिक शब्द उन्होंने संस्कृत से लिए। बोलचाल में संस्कृत शब्दों के विकृत रूप प्रयुक्त होते रहते हैं। सूरदास ने संस्कृत के इन तद्भव शब्दों की बहुलता है। इसके अतिरिक्त सूरदास ने अन्य प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों तथा अरबी-फारसी जैसी विदेशी भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है। इस प्रकार सूरदास द्वारा प्रयुक्त शब्द-समूह को निम्नांकित रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है:-

1. तत्सम, 2. तद्भव, 3. देशज या ग्रामीण शब्दावली, 4. प्रान्तीय भाषाओं के शब्द तथा 5. विदेशी शब्द।

सूरदास जी ने तत्सम शब्दों का प्रयोग सबसे अधिक सिद्धान्त निरूपण, स्तोत्र रचना तथा अप्रस्तुत योजना के प्रसंगों में किया है। इसके अतिरिक्त सूर-साहित्य में सर्वाधिक प्रयोग तद्भव शब्दों का ही मिलता है। सूरदास ने देशज शब्दों का भी प्रचुर परिमाण में प्रयोग किया है। कुछ देशज शब्द इस प्रकार हैं- बगदाइ, मोट, डहकावै, मॉड़ी, विगोवै आदि। सूर ने ब्रज भाषा के शब्द-भण्डार को समृद्ध करने के लिए गुजराती, पंजाबी, राजस्थानी, अवधी आदि प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है। यथा -

(क) गुजराती - बियौ = दूसरा

'काके सरन जाऊं जदुनन्दन नाहिंन और वियौ।

(ख) राजस्थानी - पूरबली = पूर्वकालीन

'विभीषन को लंका दीन्ही पूरबली पहिचानि।'

(ग) पंजाबी - बिरियाँ = बेला, समय

'आवहु कान्ह सांझ की बिरियाँ '

(घ) अवधी - इहाँ - उहाँ = यहाँ - वहाँ

'हरि बिनु सुख नहिं न उहाँ '

सूर-काल में फारसी-अरबी अनेक भाषाओं के शब्द सामान्य हो गए थे। सूरदास ने ब्रज-भाषा को साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रदान करने के लिए फारसी और अरबी शब्दों का स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग किया है किन्तु उन्होंने इन शब्दों के तत्सम रूप की सुरक्षा की चिन्ता नहीं की। यथा -

(अ) 'साँची सो लिखहार कहाबै'

(ब) 'हरि हौ ऐसा अमल कमायौ।'

(स) 'जनम साहिबी करत गयो।' आदि ऐसे पद हैं कि जिनमें कवि ने फारसी-अरबी शब्दों की भरमार कर दी है।

रस एवं छंद - जैसा की पहले कहा गया है कि वात्सल्य (उसके दोनों रूप संयोग वात्सल्य एवं वियोग वात्सल्य) एवं श्रृंगार (दोनों रूप) दोनों ही रस-क्षेत्रों में सूरदास का काव्य अपना मौलिक स्वरूप प्रकट करता है, इसे 'रस-तत्व' के संबंध में भी समझा जा सकता है। अध्येताओं के अनुसार, ध्यातव्य है कि कविवर सूर ने अपने सृजन में जिन रसों की निबन्धना की है, उनमें वात्सल्य और श्रृंगार ही प्रमुख हैं। अन्य रस तो प्रसंगवश ही आ गये हैं। इसका प्रमुख कारण है

कि सूर की दृष्टि जीवन की विविधता की ओर नहीं गई है। उनकी दृष्टि बाल-क्रीड़ा, प्रेम के रंग-रहस्य और उसकी अतृप्त वासना तक ही परिसीमित है। जहाँ तक वात्सलय और श्रृंगार का प्रश्न है, मैंने पीछे इसका विस्तृत वर्णन कर दिया है। अब शेष अन्य रसों पर दृष्टिपात कर लेना है, जो सूर-साहित्य में प्रयुक्त हुए हैं।

कविवर सूर विनोदी प्रकृति के व्यक्ति हैं। कृष्ण की बाल-छवि एवं क्रिया-कलापों तथा राधा की सरल सामान्य उक्तियों में हास्य रस के सुन्दर परिपाक को देखा जा सकता है। नटवर नागर कृष्ण दही की चोरी के निमित्त किसी के घर में घुस जाते हैं ओर चोरी करते हुए ग्वालिन के द्वारा रंगे हाथ पकड़ जाते हैं। इनकार कर पाने की स्थिति न देखकर कृष्ण फौरन बात को घुमा देते हैं। उनका कथन हास्यास्पद है कि मैं अपना ही घर समझकर यहाँ आ गया थ। दही में चींटी देखकर उसे निकालने लगा। कृष्ण की इस प्रकार की चतुरतापूर्ण बातें सुनकर ग्वालिन के अधरों पर मुस्कान थिरक उठती है। प्रमाण के लिए उदाहरण दृष्टव्य है –

मैं जान्यौ यह मेरो घर है, ता धोखे में आयौ।
देखत ही गोरस में चींटी, काढ़न को करनायौ।।

इसी प्रकार संयोग और वियोग वर्णन में हास्यरस के अनेकानेक चित्र 'सूर-सागर' में विद्यमान हैं। 'भहरात झहरात दावानल आयौ' वाले पद में भयानक रस की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। दावानल-प्रसंग के अन्य पदों में करूण रस का भी सुन्दर परिपाक हुआ है। 'प्रथमहिं देउँ गिरिहि बहाइ' वाले पद में रौद्ररस तथा 'आजु हौं हरिहि न सरल बहाऊँ' जैसे पदों में वीररस, 'नन्दहिं कहत जसोदा रानी' वाले पद में अद्भुत रस तथा 'को को न तरयो हरिनाम' या 'मेरो मन अनत कहाँ सुखपावै' जैसे पदों में भक्तिरस की व्यंजना देखी जा सकती है।

कविवर सूर एक रससिद्ध कवि हैं। वात्सल्य और श्रृंगार रस के वर्णन में तो उन्होंने अपना सानी नहीं छोड़ा है। साथ ही अन्य रसों का यथाक्रम प्रवेश भी न्यूनाधिक रूप में अपने सृजन में कराया है। इस प्रकार रस की बूँदा-बाँदी से 'सूरसागर' सराबोर हो गया है।

अलंकार - अत: अलंकारों का सम्यक् विवेचन हो जाने के पश्चात् अब हम आलोच्य कवि सूर के अलंकार-विधान को देखना चाहेंगे। वस्तुत: अलंकारों का सर्वोत्तम प्रयोग उनकी स्वाभाविकता है। भावों के उद्रेक में स्वत: आये हुए अलंकार ही उत्तम माने जाते हैं। अलंकारों का सायास प्रयोग अच्छा नहीं है। इससे कविता का महत्व घट जाता है। कविवर सूर को अलंकारों के प्रति कोई विशेष मोह नहीं दिखाई पड़ता है। फिर भी सृजन-काल में अगर कोई अलंकार स्वभावत: आ गया है तो उन्होंने उसका उपयोग कर लिया है। वैसे सौंदर्य-चित्रण में उन्होंने अलंकारों का प्रयोग कुछ अधिक ही किया है। वर्णन को प्रभावेत्पादक और हृदयग्राही बनाने के लिए सादृश्यमूलक अलंकार अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं। यही कारण है कि कविवर सूर ने राधा-कृष्ण तथा गोपियों के रूप-सौंदर्य के वर्णन में रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक, अपह्नुति, समासोक्ति तथा दृष्टान्त आदि अलंकारों का प्रयोग बहुतायत से किया है।

रूपक अलंकार का प्रयोग करते हुए कवि ने कई स्थलों पर भावों में चमत्कार उत्पन्न किया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है –

प्रीति कर दीन्ही गरे छुरी।
जैसे बधिक चुगाइ कपट-कन पाछे करत बुरी।
मुरली मधुर चेंप काँपा करि, मोर चन्द्र फँदवारि।
बंक विलोकनि, लगौ लोभबस, सकी न पंख पसारि।
तरुत छाँडि गये मधुवन कौ, बहुरि न कीन्ही सारि।
सूरदास प्रभु संग कलप तरू, उलटि न बैठी डारि।।

सादृश्यमूलक अंलकारों में उपमा का प्रमुख स्थान है। सूर ने कुछ पदों में परम्परागत उपमा का प्रयोग किया है और कुछ नवीन उपमाओं की उद्भावना भी की है। 'ज्यों जलहीन मीन तरुत त्यों व्याकुल प्रान हमारौ', 'उर भयो कुलिस समान', तथा 'लोचन चातक ज्यों हैं चातक' आदि पदों में उपमा के सुन्दर प्रयोग को देखा जा सकता है। इसी प्रकार 'जसुदा मदन गोपाल सोवावै', 'देखियत काजिन्दी अति कारी' तथा 'देखियत चहुँ दिसि तैं घनघोरे' आदि छन्दों में उत्प्रेक्षा की छटा दर्शनीय है। रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग कवि ने वहाँ पर किया है, जहाँ गुह्यांगों या श्रृंगारिक अवसर आया है। 'अद्भुत एक अनूपम बाग' वाला पद रूपकातिशयोक्ति का अच्छा उदाहरण है। इसी प्रकार 'सखी री चातक मोहि जियावत' तथा 'हमारै हृदय कुलिसहु जीत्यौ' वाले पदों में प्रतीक तथा 'नैना सावन भादौं जीते' एवं 'ऊधौ अब हम समुझि भई' जैसे पदों में व्यतिरेक की सुन्दर निदर्शना हुई है। 'चातक न होइ कोइ बिरहिन नारि' वाला पद अपह्नाति का अच्छा उदाहरण है। 'बिनु पावस-पावस करि राखी' वाले पद में विभावना तथा 'ऊधौ तुम हौ अति बड़भागी जैसे पदों में विशेषोक्ति की छटा दर्शनीय है। विरोध मूलक अलंकारों में विभावना, विशेषोक्ति के साथ परिकर आदि अलंकारों की भी गणना होती है। इसमें साभिप्राय शोभा बढ़ाने-हेतु विशेषण का प्रयोग किया जाता है। 'सखी इन नैनति ते घन हारे' वाला पद परिकर अलंकार का अनुपम उदाहरण है।

6.5 सूरदास: आलोचना

महाकवि सूरदास का समग्र काव्य-जगत अत्यन्त कलात्मक एवं भावूपर्ण है। इसमें उनकी अनूठी उद्भावनाएँ हैं। संयोग श्रृंगार रस की तरह विप्रलम्भ श्रृंगार भी अत्यन्त विस्तृत, व्यापक एवं सर्वांग पूर्ण है। 'भ्रमरगीत सार' की भूमिका में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि ''वियोग की जितनी अन्तर्दशाएँ हो सकती है, जिनते ढंगों से उनका साहित्य में वर्णन हुआ है और सामान्यत: हो सकता है, वे सब उसके भीतर मौजूद हैं।'' उनका विरह-वर्णन इतना गहन और व्यापक है कि वह देश-काल और पात्र-मुक्त बन गया है। वास्तव में, सूर के विरह-वर्णन में एक दर्द है, टीस है, कसक है और विह्वलता है। सूरदास के वात्सल्य-भाव के पदों की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्हें पढ़कर पाठक जीवन की नीरस और जटिल समस्याओं को विस्मृत कर उनमें तन्यम हो जाता है। सूर ने यदि वात्सल्य को अपने काव्य का विषय चुना तो वात्सलय ने

भी सूर को ही अपना एक मात्र आश्रय बनाया है। उनके वात्सल्य रस के आलम्बन है – बालकृष्ण। उनका बाल मनोहर स्वरूप एवं बाल सुलभ चेष्टाएँ-उद्दीपन हैं, आश्रय हैं – यशोदा और नन्द। इस क्षेत्र में सूर ने इतने भावों, अनुभवों और संचारी भावों की योजना की है कि वे साहित्य-शास्त्र को भी पीछे छोड़ गए हैं। आचार्य शुक्ल का मत है कि 'जिस क्षेत्र को सूर ने चुना है, उस पर उनका अधिकार अपरिमित है, उसके वे सम्राट है।''

सामान्य रूप से देखा जाए तो वात्सलय रस के दो रूप है- संयोग वात्सलय और वियोग वात्सल्य। सूर की अनुभूतियाँ अत्यधिक सहज, सरस, सुकुमार और सत्य के निकट हैं। उन्होंने अपने काव्य में बाल सुलभ हृदय की चपलता, स्पर्धा, ईर्ष्या आदि सभी बालोचित गुण, क्रिया-व्यापार और सामान्य मातृहृदय के वात्सल्यमय स्नेह की समस्त अवस्थाओं का नैसर्गिक सौन्दर्य प्रस्तुत किया है। उनके वात्सलय रस युक्त पदों में एक माता के हृदय का मधुर स्पन्दन है। सूर के वात्सल्य वर्णन पर रीझकर ही श्री वियोगी हरि ने उचित ही कहा है कि ''सूर का दूसरा नाम वात्सल्य है और वात्सलय का दूसरा नाम है सूर। दोनों का अन्योन्याश्रय संबंध है।'' सूरदास के भाव पक्ष का विश्लेषण करते हुए तथा उन्हें मधुर एवं कोमल भावनओं के चतुर चितेरे, रस के आक्षय स्रोत, आध्यात्मिक प्रेम के प्रवीण पारखी बताते हुए डा. सावित्री शुक्ला का मत है कि ''सूरदास भारतीय संस्कृति का सहज रूप से कलात्मक उद्घाटन करते हुए आज भी सरसता, अभिनवता, सुचारूता और मनोवैज्ञानिकता को रसज्ञों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं।''

श्री कृष्ण के अनन्य भक्त सूर ने भगवत् अनुग्रह की प्राप्ति हेतु हृदयस्थ भावों की अभिव्यक्ति जिस रूप में की है, वह भक्ति का रूप है। सूर के काव्य में प्रत्यक्ष ओर परोक्ष रूप में भक्ति के महत्व एवं उसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन दृष्टिगत होता है। उनके विनय संबंधी पदों में भक्ति योग के शरणगति-सिद्धान्त की षड् विधियों के अलावा वैष्णव सम्प्रदाय की दैन्य, मान-मर्षता, भय दर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारण सप्त भूमिकाओं का निदर्शन हुआ है। विनय के पदों में अनन्यता, आत्मनिवेदन और वैराग्य-भावना के साथ-साथ उपालम्भ, साग्रह निवेदन तथा उद्बोधन के भावों का भी समावेश है। सूर की भक्ति सख्य भाव की है। अत: उन्होंने एक सखा के नाते कृष्ण के अन्तरंग जीवन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों को अपना स्वर दिया है। 'सूरसागर' में सख्य-भक्ति का दो रूपों में प्रस्फुटन हुआ है। पहला रूप है-ग्वाल-बालों के साथ कृष्ण का सखारूप में विचरण करना और दूसरा रूप है-ब्रजांगनाओं का श्रीकृष्ण के प्रति सहज प्रेम-भाव। सूरदास की काव्य-कला के दो पक्ष हैं- अनुभूति पक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष। अनुभूति पक्ष तो सूर-काव्य का प्राण है। अनुभूति पक्ष ही उनकी सफलता है, सिद्धि है और सुख्याति है। उनकी अनुभूतियाँ अत्यन्त सहज, सरल, सुकुमार और सत्य के निकट हैं। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के जिन मौलिक विषयों ने उनकी काव्य-कला का श्रृंगार किया है, उन्हें तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-बाल-लीला, राधा-कृष्ण तथा गोपी-लीला और भ्रमरगीत। सूरदास एक भाषानिष्ठ कलाकार थे। जिस भाषा को उन्होंने अपने काव्य का माध्यम बनाया, वह उस क्षेत्र की जनभाषा थी। पारसौली, गोबर्द्धन, मथुरा तीनों ही ब्रजभाषा क्षेत्रों में स्थित है। ब्रजभाषा को ही सूर ने अपनी प्रतिभा एवं कला के द्वारा सरस, संगीतमय,

सुमधुर एवं सम्पन्न बना दिया। सूरदास जी के समय से पूर्व ब्रजभाषा का प्रयोग लोकगीतों में तो अवश्य हुआ होगा, किन्तु उनसे पहले की ब्रजभाषा में लिखी हुई कोई महत्वपूर्ण साहित्यिक रचना उपलब्ध नहीं होती। इससे प्रकट होता है कि सर्वप्रथम सूरदासजी ने ही ब्रजभाषा को साहित्यिक महत्व प्रदान किया। आचार्य शुक्ल ने स्पष्ट शब्दों में कहा है-''इन पदों के सम्बन्ध में सबसे पहली बात ध्यान देने योग्य है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्यिक रचना होने पर भी ये इतने सुडौल और परिमार्जित हैं। यह रचना प्रगल्भ और काव्यांगपूर्ण है कि आगे होने वाले कवियों की उक्तियाँ सूर की जूठन-सी जान पड़ती है।''

6.6 सूरदास : पाठ एवं व्याख्या

1. जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलरावै मल्हावै जोई सोई कछु गावै।
मेरे लाल कौ आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै।
तू काहे नहिं बेगि सों आवै ताहे कौं कान्ह बुलावै।।
के बहुँ पलक हरि मूंद लेत हैं, अधर कबहुँ फटकावै।
सोवत जानि मौन है बैठी कर-कर सैन बतावै।।
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरै गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नंद भामिनि पावैं।।

संदर्भ – प्रस्तुत पद सूर द्वारा रचित 'सूरसागर' से लिया गया है।

प्रसंग – माता यशोदा घर के काम-काज निबटाने हेतु बालक श्री कृष्ण को पालने में झूला, झूलाकर सुलाने का प्रयास कर रही है। बालक माता का सानिध्य पाने के लिए सोने और जागने का बहाना करता है। इस पद में माता का पुत्र के प्रति और पुत्र का माता के प्रति स्नेह भाव देखते ही बनता है।

व्याख्या – सूरदास जी कहते हैं कि माता यशोदा कृष्ण को पालने में झूला, झूला कर सुला रही है इस क्रम में कभी पालने को हिलाती है, कभी बच्चे को पुचकारती है, हवा करती है साथ ही लोरी गाती हुयी नींद से आग्रह करती है कि तुझे कोई साधारण बालक नहीं अपितु मेरा कान्हा तुम्हें बुला रहा है अत: जल्दी से आकर मेरे बालक को क्यों नहीं सुला देती। बाल सुलभ क्रीड़ा में बाल भगवान कृष्ण कभी अपनी पलक बंद कर लेते हैं, और कभी अपनी पलकों को अधखुला सा कर लेते हैं। माता यशोदा सोचती हैं कि बालक को नींद आ गयी है तब पालना हिलाना व गाना बन्द कर देती है तब-तब बालक इशारा कर-करके बताता है कि अभी मैं सोया नहीं हूँ। इस प्रकार की बाल लीला देखकर माता का हृदय ममत्व भाव से भर उठता है, कवि सूरदास जी कहते

हैं कि यह वह सुख है जो माता यशोदा प्राप्त कर रही है जैसा अमर मुनियों को भी दुर्लभ है।

शब्दार्थ – दुलराई-प्यार करना, निंदरिया-नींद, सोवत-सोता, सैन-इसारा, अन्तर-हदय, नंद यामिनि-नंद की पत्नी (यशोदा)

विशेष –

1. बाल सुलभ चेष्टाओं का सुन्दर चित्र प्रस्तुत हुआ है।
2. वात्सल्य रस एवं माधुर्य गुण का समावेश हुआ है।
3. माता के हृदय को ममत्व भाव का अगाद्य सुख प्राप्ति हुई है।
4. ब्रजभाषा में तुकान्त शैली का लयात्मक क्रम है।

2. मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरै मुख लपटायौ।।
देखि तु हि सींके पर भाजन ऊँचैं धरि लटकायौ।
हौं जु कहत नान्हे कर अपने, छींका केहि विधि पायौ।।
मुख दधि पौंछि, बुद्धि इक कीन्ही, दोना पीठि दुरायौ।
डारि साँटि, मुसुकाय जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ।।
बाल-विनोद मोद मन मोह्यो, भक्ति-प्रताप दिखायौ।
सूरदास जसुमत को यह सुख, सिव बिरंचि नहिं पायौ।।

शब्दार्थ – ख्याल-खेलना, भाजन-बर्तन, नान्हे-नन्हें, छोटे, दुरायो-छिपना, सींके-छींका, कर-हाथ, साँटि-छड़ी, सिव-शिव भगवान, बिरंचि-ब्रह्मा।

प्रसंग – श्री कृष्ण माखन चोटी करते रंगें हाथों पकड़े गये, तब ग्वालिन उलाहना लेकर माता यशोदा के पास जाती है, माता यशोदा रोज-रोज शिकायत से तंग आकर बालक कृष्ण को मारने के लिए छड़ी उठाती है, बालक किस चतुरता से माँ की मार से बचने के लिए अपनी सफाई पेश करता है।

व्याख्या - सूरदास जी कहते हैं कि श्री कृष्ण अत्यन्त दुलार भरी वाणी में अपनी माता यशोदा से अनुनय विनय करने लगे कि माता मैंने मक्खन की चोरी नहीं की और न ही मैंने मक्खन खाया। मेरे साथ सखा खेलते हैं उनमें बड़े लड़के मक्खन की चोरी करते हैं और मुझ जैसे छोटे बच्चे के मुख पर पकड़े जाने के भय से लिपटा देते हैं। अब तू ही बता कि छोटी बाँहों वाला बच्चा हूँ, मैं इतने ऊँचे पर लटके छींके के बर्तन तक कैसे पहुँच सकता हूँ, प्रयास करने पर भी छींके तक नहीं पहुँच सकता। इतनी सफाई देने पर

भी जब माँ का क्रोध शान्त नहीं हुआ तब कृष्ण का ध्यान अपनी शारीरिक स्थिति पर गया तब बड़ी चतुरता से उन्होंने शीघ्रता से मुँह पर लिपटा मक्खन पौंछा और हाथ में पकड़ा हुआ मक्खन से भरा दोना पीठ के पीछे छिपा दिया। कृष्ण के इस बाल सुलभ भेले नटखट रूप का कौतुक देख कर यशोदा हृदय में पुत्र के प्रति स्नेह से भर गयी, सारा क्रोध विस्तृत कर उन्होंने कृष्ण को गले लगा लिया। कृष्ण ने बाल सुलभ क्रीड़ाओं के आनन्द से माँ का मन मोह लिया और भक्ति के प्रताप का यशोदा को दर्शन करा दिए। अन्त में सूर कहते हैं कि बाल-लीला का जो सुख यशोदा को प्राप्त हुआ वह वात्सलय सुख ब्रह्मा और शिव भी नहीं पा सके। यह सुख तो अवर्णनीय और हृदय से अनुभूत करने वाला है।

विशेष –

1. मेया मोरी मैं.....में अनुप्रास अलंकार है।
2. इस पद में बाल लीला के मक्खन चोरी प्रसंग का सहृदयता एवं विद्वग्धता से बिंब या भव-चित्र उपस्थित हुआ है।
3. इस पद में बालकों की अन्तवृत्तियों का प्रकृत स्वभाव निरूपित हुआ है।
4. इस पद में लाक-चेतना का संकेत हुआ है।
5. ब्रजभाषा की लोक संगीत परम्परा का प्रभाव भी इस पद में देखा जा सकता है।

3. ऊधो, मन नाहीं दस-बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम संग, को आराधै ईस।।
देह अति शिथिल सबै माधव बिनु, जथा देह बिन सीस।
स्वासां अटकि रही आसा लगि, जीवहिं कोरि-बरीस।।
तुम तो सखा स्याम सुन्दर के, सकत जोग के ईस।
'सूरदास' रसिकन की बतियाँ, पुखौ मन जगदीश।।

शब्दार्थ – ऊधौ-उद्धव (कृष्ण का मित्र), हुतो, जो पास था, स्याम-श्री कृश्ण, आरौ-आराधना, सीस-सिर, स्वासौ-श्वास, जीवहिं-जी रही हैं सखा-मित्र, रसिकन-प्रेम पूर्ण, बलियाँ-बातें।

संदर्भ- प्रस्तुत पद सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' से लिया गया है।

प्रसंग – उद्धव निर्गुण ज्ञान के प्रसाद हेतु ब्रज में आता है और गोपियों से श्री कृष्ण के निर्गुण रूप की अराधना की बात कहता है। उसका उत्तर गोपियाँ इस पद में देती है।

साथ ही अपने लौकिक प्रेम की स्थापना करती है। उद्धव के निर्गुण ज्ञान को ग्रहण न करने की विवशता भी दर्शाती हैं।

व्याख्या – सूरदास गोपियों के माध्यम से कहते हैं कि हे उद्धव, हमारे पास तो केवल एक ही मन था, हमारे पास दस-बीस मन होते तो एक मन हम तुम्हें भी देती, निराश नहीं करती किन्तु हमारी इस विवशता पर भी आप ध्यान देवें। हमारे पास जो एक मन था वो तो श्री कृष्ण अपने साथ मथुरा ले गये, फिर निर्गुण कृष्ण की अराधना बिना मन हम कैसे करें। श्री कृष्ण के लौकिक प्रेम के कारण हम कितनी कमजोर हो गयी हैं मानो बिना सूर के हमारे पास शरीर शेष रह गया है। इस शरीर में श्वास अटकी हैं वो भी उनके आने की आशा से, उनके आने की बात तो हम करोड़ों वर्षों तक करती रहेंगी। हे उद्धव तुम तो श्री कृष्ण के मित्र हो उनसे तुम्हारा लौकिक सम्बन्ध भी है, तुम्हारी ये कठोर बातें हमारे पल्ले नहीं पड़ेगी। अन्त में सूरदास जी कहते हैं कि गोपियों को श्री कृष्ण के लौकिक प्रेम की बातें करने से ही हमारे द्वारा हमारे इष्ट की सच्ची अराधना है।

विशेष –

1. इस पद में निर्गुण भक्ति पर सगुण भक्ति की विजय दर्शायी गयी है।
2. वैष्णव परम्परा की सगुण भक्ति में लीला वर्णन में आनन्द का जो स्रोत फूटता है – वह जनता के मन को स्पर्श करता है। इसी स्थिति के कारण सगुण भक्ति ही श्रेष्ठ है।
3. लौकिक प्रेम के प्रति पूर्णशक्ति का भाव चित्रित हुआ है।
4. बोलचाल की ब्रजभाषा में शब्दों का लयात्मक क्रम मिलता है।

4. लरिकाई कौ प्रेम, कहौ अलि, कैसे, करिकै छूटत?
कहा कहौं ब्रजनाथ-चरित अब, अन्तरगति यों लूटत।।
चंचल चाल मनोहर चितवन, वह मुसुकाति मंद धुन गावत।

नटवर भेस नंदनंदन को, वह विनोद गृह इनतें आवत।।

चरनकमल की सपथ करति, हौं, यह संदेश मोहि विष सम लागत
सूरदास मोहि निमिष न बिसरत, मोहन मूरति सोवत जागत

सन्दर्भ : प्रस्तुत पद वात्सल्य रस के सम्राट महाकवि सूरदास द्वारा रचित है।
प्रसंग - गोपियाँ बाल साहचर्य-संभूत प्रेम की एकनिष्ठता का मार्मिक वर्णन कर रही हैं।
व्याख्या – गोपियाँ उद्धव से कहती है कि, हे उद्धव! यह बताओ कि बाल साहचर्य से उत्पन्न प्रेम किस प्रकार छूट सकता है। हम ब्रज के स्वामी कृष्ण की लीलाओं का कहाँ तक वर्णन करें ? उनकी लीलाओं का ध्यान हमारे मन

को सहज रूप से उनकी ओर आकर्षित करता रहता है। अर्थात् उनका स्मरण आते ही हम अपनी सुध-बुध खो बैठती हैं। उनकी वह चंचलता से युक्त चाल, वह मनोहर दृष्टि, वह मधुर मुस्कान और धीमे-धीमे स्वर में गाना हमें कभी भी नहीं भूलता। उनका वह नटवर का वेश धारण करके विनोद करते हुए वन से घर को लौटना-हमारी स्मृति में सदैव छाया रहता है।

हम श्रीकृष्ण के चरण-कमलों की सौगन्ध खाकर करती हैं कि उनका यह संदेश (उन्हें भूलकर ब्रह्म की आराधना करने का संदेश) हमें विष के समान घातक लगता है। हमें तो सोते और जागते हुए कृष्ण की वह मोहक मूरति एक पल के लिए भी नहीं भूलती है।

शब्दार्थ - लरिकाई-बचपन। अन्तरगति-मन, चित्त की वृत्ति।

निमिष-पलभर को भी। बिसरत-भूलना।

विशेष -

1. यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि बचपन के संस्कार अमिट रहते हैं।
2. 'लरिकाई कौ प्रेम' में एक अद्भुत मार्मिकता और हृदय को छू लेने की क्षमता है।
3. 'स्मृति' संचारी भाव का चित्रण हैं
4. विप्रलंभ श्रृंगार रस है।
5. अनुप्रास, उपमा व रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है।

5. निरगुन कौन देस को बासी ?

मधुकर! हंसी समुझाय, सौंह दै बूझति सांच , न हांसी ।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि को दासी।।
कैसो बरन, भेस है कैसो, केहि रस में अभिलासी।।
पवेगो पुनि कियो आपनो, जो रे कहैगो गाँसी ।
सुनत मौन रह्यो ठग्यो सौ, सूर सबै मति नासी।।

संदर्भ - प्रस्तुत पद सगुण उपासक, कृष्ण के अनन्य भक्त महाकवि सूरदास द्वारा रचित 'भ्रमर गीत सार' में से लिया गया है।

प्रसंग - प्रस्तुत पद्यांश में सूरदास ने गोपियों के माध्यम से निर्गुण ब्रह्म की उपेक्षा और सगुण ब्रह्म की स्थापना का प्रयास किया है।

व्याख्या – गोपियाँ निर्गुण ब्रह्म पर व्यंग्य करती हुई उद्धव से पूछती हैं कि, हे उद्धव! तुम्हारा निर्गुण किस देश का रहने वाला है। (हम तो अपने सगुण कृष्ण का निवास जानती है) हे मधुकर! हमें हँसकर अर्थात प्रसन्न मन से यह सब समझा दो। हम तुम्हें सौगंध देकर सच-सच पूछ रही हैं। तुम्हारे साथ मजाक नहीं कर रही हैं। अब यह बताओं कि तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म का पिता कौन है, उनकी माँ कौन हैं, कौन उनकी पत्नी है और उनकी सेवा करने वाली

दासी कौन है? उसका रंग और वेश-भूषा कैसी है और उसे कौन सा रस अच्छा लगता है ?

फिर गोपियाँ भ्रमर के माध्यम से कहती हैं कि - हे भ्रमर! यदि तूने कोई कपट की बात कही, झूठ कहा तो तुझे अपनी करनी का फल भुगतना पड़ेगा। गोपियों के मुख से निकली इन बातों को सुनकर उद्धव मौन हो गए और ठगे से रह गए। ऐसा लग रहा था कि जैसे उनकी सारी बुद्धि ही नष्ट हो गई। अर्थात् वह किंकर्त्तवविमूढ़ हो कुछ भी उत्तर नहीं दे सके।

शब्दार्थ - सौंह-सौगन्ध, कसम। बरन-वर्ण, रंग। गाँसी-गाँस सा कपट की बात। ठग्यो सौ-ठगा हुआ सा, स्तम्भित। नासी-नष्ट हो गई।

विशेष -

1. प्रस्तुत पद में व्यंग्यात्मक शेली में निर्गुण ब्रह्म का खण्डन किया गया है।
2. गोपियों का वाग्वैदग्ध दृष्टव्य है।
3. उपनिषदों ने जिस ब्रह्म के संबंध में नेति-नेति कहा है, उस ब्रह्म का निरूपण बेचारे उद्धव कैसे कर पाते!

6. अंखियाँ हरि-दरसन की भूखी।
कैसे रहें रूपरसराची ये बतियाँ सुनि रूखी।
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब एती नहीं झूखी।
अब इन जोग-संदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखी।।
बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी।
सूर सिकत हठि नाव चलायो ये सरिता है सूखी।।

संदर्भ - प्रस्तुत पद रागानुराग भक्ति के उपासक, कृष्ण प्रेम व सौन्दर्य के चितेरे महाकवि सूरदास द्वारा रचित है।

प्रसंग - गोपियों की कृष्ण के प्रति प्रेम की अनन्यता एवं एकनिष्ठता का महाकवि सूर ने हृदयस्पर्शी चित्रण किया है।

व्याख्या – गोपियाँ उद्धव से कहती है कि हमारे ये नेत्र सदैव कृष्ण दर्शन के लिए लालायित रहते हैं। ये आँखे कृष्ण के रूप और उनके प्रेम रस में पगी हुई हैं, उनमें ही पूर्णतः अनुरक्त है। फिर तुम्हारे नीरस योग की बातें सुनकर ये कैसे धैर्य धारण कर सकती हैं? जब ये आँखे कृष्ण के लौटकर अपने की अवधि का एक-एक दिन गिनती हुई टकटकी बाँधे मार्ग की ओर देखा करती थीं, उस समय भी इतनी संतप्त नहीं हुई थी। परन्तु अब तुम्हारे इन योग के संदेशों को सुनकर व्याकुल और दुःखी हो उठी हैं। हमारी तुमसे केवल यही प्रार्थना है कि हमें कृष्ण के उस मुख के एक बार दर्शन करा दो, जिस मुख से वह पत्ते के दोने में दूध दुहकर पान किया करते थे। तुम हमें योग का उपदेश देकर वैसा ही

असंभव कार्य करने का प्रयत्न कर रहे हो, जैसे कोई सूखी हुई नदी की बालू में हठपूर्वक नाव चलाने का प्रयत्न करे। अर्थात कृष्ण-प्रेम में अनुरक्त हमारे हृदय पर तुम्हारे योग का प्रभाव पड़ना असंभव है।

शब्दार्थ - भूखी-व्याकुल। रूपरस राची-रूप के रस में पगी हुई। गनत-गिनते हुए। झूखी-संतप्त, दुखी। बारक-एक बार। दुहि-दुहकर। पय-दूध। पतूखी-पत्ते का दोना। सिकत-रेत, बालू।

विशेष -

1. वल्लभ सम्प्रदाय की पुष्टिमार्गीय विचारधारा का प्रभाव है।
2. रागानुराग भक्ति में उपास्य के रूप और रस की प्रधानता रहती है।
3. सूखी नदी में नाव चलाने का प्रयत्न करने के लौकिक व्यवहार के उदाहरण द्वारा निर्गुण ब्रह्म का निराकरण और संभाव्यता प्रदर्शित की गई है।
4. बारक.....पतूखी में स्मरण अलंकार,
   सूर.....सूखी में निदर्शना अलंकार
5. 'ये सरिता है सूखी' में रूपकातिश्योक्ति अलंकार है।

7. हमारे हरि हारिल की लकरी

मन-बच-क्रम नंद नंदन सों, उर यह दृढ़ करि पकरी।।
जागत, सोवत, सपने, सौंतुख, कान्ह-कान्ह जकरी।
सुनतहि जोग लगत ऐसौ अलि! ज्यों करूई ककरी।।
सोई व्याधि हमें लै आए, देखी, सुनी न करी।
यह तौ सूर तिन्हें लै दीजै, जिनके मन चकरी।।

संदर्भ - प्रस्तुत पद महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य, अष्टछाप के प्रमुख कवि, दिव्य दृष्टि संपन्न महाकवि सूरदास द्वारा रचित है।

प्रसंग - सूरदास ने कृष्ण के प्रति गोपियों के एकनिष्ठ व दृढ़ प्रेम का मार्मिक चित्रण किया है।

व्याख्या - गोपियाँ उद्धव से कहती है कि कृष्ण तो हमारे लिए हारिल पक्षी की लकड़ी के समान बन गए हैं। अर्थात् जिस प्रकार हारिल पक्षी, चाहे किसी भी स्थिति में हो, वह सदैव अपने पंजों में लकड़ी को पकड़े रहता है। उसी प्रकार हम भी निरन्तर कृष्ण का ही ध्यान करती रहती हैं। हमने मन, वचन और कर्म से नन्द नन्दन रूपी लकड़ी को, अर्थात् कृष्ण के रूप और उसकी स्मृति को अपने मन द्वारा कसकर पकड़ लिया है। अब उसे हमसे कोई नहीं छुड़ा सकता। हमारा मन जागते, सोते, स्वप्न या प्रत्यक्ष में, चाहे किसी भी दशा में क्यों न हो, सदैव 'कृष्ण-कृष्ण' की रट लगाये रहता है, उन्हीं का स्मरण करता रहता है।

हे उद्धव! तुम्हारी योग की बातें सुनते ही हमें ऐसा लगता है, मानो कड़वी ककड़ी खा ली हो। अर्थात् योग की बातें हमें नितान्त अरूचिकर लगती हैं। तुम हमारे लिए योग रूपी ऐसा बीमारी ले आए हो, जिसे हमने न कभी देखा, न सुना और न कभी भुगता ही है। इसलिए तुम अपनी इस बीमारी को तो उन लोगों को जाकर दो, जिनके मन चकई के समान सदैव चंचल रहते हैं। योग का उपदेश तो अस्थिर मन वालों को दिया जाता है, जबकि हमारे मन तो पहले से ही कृष्ण प्रेम में स्थिर हैं।

शब्दार्थ - हारिल की लकरी-एक पक्षी, जो अपने पंजों में सदैव कोई-न-कोई लकड़ी का टुकड़ा या तिना दृढ़ता से पकड़े रहता है। क्रम-कर्म। सौंतुख-प्रत्यक्ष। जक-रट,धुन। करूई-कडवी। ककरी-ककड़ी। व्याधि-बीमारी। चकरी-चंचल, चकई के समान सदैव अस्थिर रहने वाला।

विशेष -

1. यहाँ निर्गुण के उपदेश को 'व्याधि' कहकर उसकी अवहेलना की गई हैं
2. विरह की प्रलापावस्था का चित्रण हैं
3. ब्रजभाषा का माधुर्य है।
4. सुनतहि.....ककरी में उपमालंकार, हारिल की लकरी में रूपक अलंकार है।

8. अति मलीन वृषभानु कुमारी
हरि-श्रमजल अंतर-तनु भीगो, ता लालच न धुआवति सारी।
अधोमुख रहति उरध नहिं चितवति, ज्यों हारे थकित जुआरी।
छूटे चिहुर, बदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी।
हरि-संदेस सुनि सहज मृतक भई, इक बिरहिनि दूजे अलि जारी।
सूर स्याम बिनु यों जीवति है, ब्रजबनिता सब स्याम दुलारी।

संदर्भ - प्रस्तुत पद हिंदी साहित्याकाश के सूर्य, भगवान कृष्ण की माधुर्यमयी लीलाओं के चितेरे महाकवि सूरदास द्वारा रचित है।

प्रसंग - कवि ने कृष्ण विरह में सन्तप्त राधा की अत्यन्तज दीन-हीन दशा का मार्मिक चित्रण किया है।

व्याख्या – गोपियाँ उद्धव से कहती है कि वृषभानु कुमारी राधा कृष्ण के विरह में अत्यन्त मलीन रहने लगी हैं। यह अपने वस्त्रों को साफ नहीं करतीं, मैली साड़ी पहने रहती है। इसका कारण है कि कृष्ण के साथ केलि-क्रीड़ा करते समय प्रेमावेश के कारण कृष्ण के शरीर से निकले हुए पसीने से राधा का सर्वांग और साड़ी भीग गई थी। इसी लालच के कारण वह उस साड़ी को नहीं धुलवाती। वह सदैव मुख नीचा किए हुए उन्हीं पूर्व मधुर स्मृतियों में खोई

रहती है, कभी मुख उठाकर ऊपर नहीं देखती। उसकी दशा उस जुआरी के समान हो गई है, जो जुए में अपनी सारी पूँजी हार गया हो और नीचा मुख किए उदास बैठा हो।

उसके बाल बिखरे रहते हैं और मुख कुम्हलाया रहता है। उसकी दशा उस कमलिनी के समान निष्प्रभ और दयनीय हो उठी है, जिस पर पाला पड़ गया हो। वह एक तो पहले ही कृष्ण की विहिरणी बनी हुई थी, उस पर भौंरा बार-बार उसके पास आकर अपने रूप और गुण-सादृश्य द्वारा कृष्ण का स्मरण कराकर उसे व्यथित करता रहता है। एक तो उसका यह दुःख ही असहनीय था, ऊपर से उद्धव द्वारा लाए गए संदेश को सुनकर तो वह मृतप्राय हो गई है। ऐसी विषम स्थिति उस अकेली राधा की ही नहीं है, कृष्ण की दुलारी सभी ब्रजवनिताओं की भी ऐसी ही स्थिति है।

शब्दार्थ - मलीन-मैली, उदास। हरि श्रमजल-कृष्ण के साथ की गई प्रेम-क्रीड़ओं के समय शरीर से निकला हुआ पसीना। गथ-पूँजी। चिहुर-केश। बदन-मुख। नलिनी-कमलिनी। हिमकर-ओस।

विशेष -

1. विरहिणी राधा की स्थिति का मार्मिक चित्रण किया गया है।
2. विरह की अन्तिम अवस्था 'मरण' का चित्रण है।
3. उपमा, उत्प्रेक्षा अलंकारों की छटा दर्शनीय है।

(एम0ए0एच0डी-01
प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य- 2, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा-से साभार)

6.7 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- महाकवि सूरदास के जीवन एवं उनकी कृतियों से परिचित हो चुके होंगे।
- महाकवि सूर के जन्म स्थान, उनकी जन्म तिथि तथा उनकी रचनाओं की प्रमाणिकता के विवादों एवं सर्वमान्य तथ्यों से परिचित हो चुके होंगे।
- महाकवि सूरदास की रस प्रवाहिनी काव्य कला का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।
- महाकवि सूरदास के ललित पदों का आनंद प्राप्त कर चुके होंगे।

6.8 शब्दावली

पतितन	-	पापी
निदारूण	-	कष्टकारी
अन्त:साक्ष्य	-	भीतर के प्रमाण
बड़भागी	-	भाग्यशाली
उत्तरकालीन	-	बाद के समय की
जन्मांध	-	जन्म से अन्धा
स्कंध	-	अध्याय
द्वादश	-	बारह
शात्रज्ञ	-	शास्त्र जानने वाला, विद्वान

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न

i. संवत् 1535
ii. सूरसागर
iii. सूरसागर, सूर सारावली, साहित्यलहरी

(ख) सही उत्तर चुनिए

i. सही
ii. सही
iii. गलत

6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. संचयिता हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 222
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रंथावली, खण्ड 01, पृष्ठ 257
3. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, पृष्ठ 9
4. शुक्ल, रामचन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 105
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रंथावली, खण्ड 1, पृष्ठ 259
6. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, पृष्ठ 10
7. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, पृष्ठ 41-42
8. अंकुर, ए0 अजी़ज, कविवर सूर सृष्टि और दृष्टि, पृष्ठ 15-16
9. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, पृष्ठ 61

10. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, पृष्ठ 61
11. डा. गोवर्द्धन नाथ शुक्ल, (सम्पा), पृष्ठ 22
12. डा. हरवंश लाल शर्मा, पृष्ठ 83
13. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, पृष्ठ 84
14. अंकुर, ए0 अजी़ज, कविवर सूर : सृष्टि और दृष्टि/19-20
15. शुक्ल, रामचन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास/109
16. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रंथावली-1/286
17. उपरोक्त/288
18. अंकुर, ए0 अजी़ज, कविवर सूर: सृष्टि और दृष्टि
19. कविवर (उपरोक्त/26)
20. उपरोक्त/27
21. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रंथावली-1/295-296
22. उपरोक्त/300
23. ग्रंथावली-1/301

6.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिंदी साहित्य का इतिहास एवं सूरदास काशी नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस।
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य की भूमिका एवं सूर-साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. वाजपेयी, नंद दुलारे, सूरदास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

6.12 निबंधात्मक प्रश्न

(क) महाकवि सूरदास का सम्पूर्ण जीवन परिचय देते हुए उनकी काव्य कृतियों की प्रमाणिकता का विश्लेषण कीजिए।

(ख) 'महाकवि सूरदास हिंदी भक्ति कविता के सूर्य है' इस संबंध में अपना समालोचनात्मक दृष्टिकोण प्रतिपादित कीजिए।

इकाई 7 जायसी-जीवन एवं साहित्यालोचना

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 जायसी का परिचय
    7.3.1 सामान्य सूचनाएँ
    7.3.2 रचनाकार व्यक्तित्व
    7.3.3 रचनाएँ
7.4 सूफ़ी मत एवं निर्गुण भक्ति की प्रेममार्गी शाखा
    7.4.1 सूफी मत का उद्भव और विकास
    7.4.2 निर्गुण भक्ति की प्रेममार्गी शाखा का उद्भव और विकास
    7.4.3 निर्गुण भक्ति की प्रेममार्गी शाखा से जुड़ी रचनाएँ
7.5 सारांश
7.6 शब्दावली
7.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
7.8 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पहले आप हिन्दी-साहित्य के इतिहास में वर्णित काल-विभाजन और नामकरण तथा भक्ति-काल के उद्भव और विकास से परिचित हो चुके हैं। यहाँ दी गई पाठ-सामग्री को पढ़कर आप मलिक मुहम्मद जायसी के व्यक्तित्व और उनकी रचनाओं के साथ-साथ प्रेमाश्रयी शाखा के साहित्य और सूफ़ी मत तथा इनके पारस्परिक सम्बन्ध का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। भक्ति-काल में निर्गुण धारा की प्रेमाश्रयी शाखा के साहित्य का विकास, लौकिक प्रेमगाथाओं की सुदीर्घ परम्परा पर आधारित है। आचार्य शुक्ल ने इस प्रसंग को स्पष्ट करते हुए लिखा है -''दूसरी शाखा प्रेममार्गी सूफ़ी कवियों की है जिनकी प्रेम-गाथाएँ वास्तव में साहित्य कोटि के भीतर आती हैं। इस शाखा के सब कवियों ने कल्पित कहानियों के द्वारा प्रेममार्ग का महत्त्व दिखाया है। इन साधक कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने उस 'प्रेमतत्व' का आभास दिया है जो प्रियतम ईश्वर से मिलाने वाला है। इन प्रेम कहानियों का विषय तो वही साधारण होता है अर्थात् किसी राजकुमार का किसी राजकुमारी के अलौकिक सौन्दर्य की बात सुनकर उसके प्रेम में पागल होना और घर-बार छोड़कर निकल पड़ना तथा अनेक कष्ट और आपत्तियाँ झेलकर अन्त में उस राजकुमारी को प्राप्त करना; पर 'प्रेम की पीर' की जो व्यंजना होती है, वह ऐसे

विश्वव्यापक रूप में होती है कि वह प्रेम इस लोक से परे दिखाई पड़ता है। हमारा अनुमान है कि सूफ़ी कवियों ने जो कहानियाँ ली हैं वे सब हिन्दुओं के घर में बहुत दिनों से चली आती कहानियाँ हैं जिनमें आवश्यकतानुसार उन्होंने हेरफेर किया है। कहानियों का मार्मिक आधार हिन्दू है।''

भारतीय प्रेमकथा परम्परा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत यह है कि -''गोस्वामी तुलसी दास जी के पहले लोक भाषा में प्रेमकथानकों का ऐसा साहित्य काफ़ी अधिक संख्या में लिखा गया था जिसके कथा-अंश का आधार लोक-प्रचलित कथानक थे। कभी-कभी ये काव्य किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के नाम के साथ जुड़े होते थे और कभी इनमें के चरित-नायक बिल्कुल कल्पित व्यक्ति हुआ करते थे। जब तुलसी दास ने कहा था, '' कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना, सिर धुनि गिरा लागि पछिताना'' तो उनके मन में दोनों प्रकार की रचनाएँ थीं। उन दिनों मधुमालती, मृगावती, हीर और राँझा, ढोला और मारू, सारंगा और सदावृक्ष आदि निजंधरी नायक-नायिकाओं की प्रेम-कहानियाँ आजकल के सस्ते ढंग के उपन्यासों का काम करती थीं। इन प्रेम-सम्बन्धी कहानियों को लोग बड़े चाव से पढ़ते थे।'' जायसी का सृजनशील व्यक्तित्व सामान्यतः भक्ति-आन्दोलन और विशेषतः प्रेमाश्रयी शाखा से जुड़ी प्रवृत्तिगत विशिष्टताओं का प्रतिनिधि माना जाता है। वे अपने रचना-संसार के आधार भूत घटकों में सम्प्रदायबद्ध संकीर्णता तथा शास्त्रीय और मान्य (प्रतिष्ठित) जीवन-विधि को छोड़कर सहज मानवीय उदारता; लोक-परम्परा द्वारा प्रदत्त तथा स्वीकृत मान्यताओं और मूल्यों; लोक-रुचि और लोक-भाषा को स्थान देते हैं। यह विशेषता सामान्य और साधारण को महत्व देने के उस ऐतिहासिक रचनात्मक सन्दर्भ से उपजी है जो भक्ति-साहित्य की विविध रूपी धाराओं की सामान्य विशेषता है। यही रचनात्मक सन्दर्भ, वह उपजाऊ जमीन है जिससे 'प्रेम की पीर' की बेल रस पाती है। इसी रस ने जायसी और उनकी सृजनात्मकता को तब से अब तक न केवल जीवित बल्कि जीवन्त बनाए रखा है। यह उस रचना-भूमि की उर्वरता है जिसने जायसी जैसा महाकवि और पद्मावत जैसा महाकाव्य दिया और जिसे समझे बिना न केवल भक्ति-साहित्य की स्वरुपगत समग्रता को समझना असम्भव है बल्कि समसामयिक भारत में सांस्कृतिक समंजस की सम्भावना को भी।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास के अन्तर्गत पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) की रचनाओं में मिलने वाली भक्ति की प्रवृत्ति को मुख्यतः दो धाराओं में वर्गीकृत किया जाता है- सगुण और निर्गुण। इनमें पारस्परिक भेद का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार ब्रह्म के स्वरुप की धारणा में पाया जाने वाला मतान्तर है। सगुण धारा के अनुसार ब्रह्म निर्गुण निराकार न होकर सगुण साकार है तो अन्य के अनुसार निर्गुण निराकार। कहना न होगा कि इन दोनों धारणाओं के निश्चित सामाजिक और राजनैतिक प्रभावों की ऐसी श्रंखला है जो सामाजिक परिवर्तन की धारा को दिशा-गति देने की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण रही है। साथ ही यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र के विस्तार और विविधता की दृष्टि से इसमें सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक और सांसकृतिक परिवर्तन की प्रस्तावना करने वाली किसी भी विचार-धारा में अनिवार्य रुप से इतना लचीलापन होना ही था जितना भक्ति में है। यह मात्र संयोग नहीं कि भक्ति-संसार के दिक्पालों में

कबीर, जायसी, सूर और तुलसी जैसे विलक्षण सृजनात्मक बोध के महान रचनाकार एक ही मंच पर आ खड़े हुए हैं।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत अध्ययन के उपरान्त आप –

- मलिक मुहम्मद जायसी के संक्षिप्त जीवन परिचय को जान सकेंगे।
- भक्ति की निर्गुण धारा के अन्तर्गत प्रेमाश्रयी शाखा के साहित्य का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- सूफ़ी मत का संक्षिप्त परिचय जान सकेंगे।
- प्रेमाश्रयी शाखा के साहित्य और सूफ़ी मत के पारस्परिक सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
- हिन्दी-साहित्य की प्रेमगाथा परम्परा का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- हिन्दी-साहित्य की प्रेमगाथा परम्परा में पद्मावत और जायसी को समझ सकेंगे।
- जायसी-साहित्य के प्रधान आलोचकों के अभिमत से परिचित हो सकेंगे।

7.3 जायसी का परिचय

7.3.1 परिचय

पद्मावत के रचयिता मलिक मुहम्मद वर्त्तमान उत्तरप्रदेश में अमेठी के पास जायस के रहने वाले थे, इसी से इन्हें जायसी के नाम से जाना जाता है। इनकी रचनाओं में मिले साक्ष्यों के आधार पर इनके जन्म तथा जीवन-प्रसंग के बारे में अनेक अनुमान किये गये हैं। पर ध्यान में रखना चाहिए कि इनकी रचनाओं में उपलब्ध होने वाले इन साक्ष्यों के आधार पर कोई साफ़ तस्वीर बना पाना आसान नहीं है। बहरहाल 936 हिजरी (सन् 1528 ई.) के आस-पास इनके द्वारा लिखी गयी पुस्तक 'आखिरी कलाम' के आधार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का अभिमत निम्नलिखित है -''इस पुस्तक में मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने जन्म के संबंध में लिखा है - 'भा अवतार मोर नवसदी, तीस बरस ऊपर कवि बदी'। इन पंक्तियों का ठीक तात्पर्य नहीं खुलता। 'नवसदी' ही पाठ मानने से जन्म काल 900 हिजरी अर्थात 1452 ई. के आस-पास ठहरता है। दूसरी पंक्ति का अर्थ यही निकलेगा की जन्म के तीस वर्ष बाद जायसी अच्छी कविता करने लगे। जायसी का प्रसिद्ध ग्रंथ है पद्मावत, जिसका निर्माण-काल इस प्रकार दिया है -

''सन् नौ सै सत्ताइस अहा। कथा अरंभ बैन कवि कहा।।''

इसका अर्थ होता है पद्मावत कथा के प्रारंभिक वचन 'आरंभ बैन' कवि ने सन् 927 हिजरी यानी सन् 1520 ई. के लगभग कहे थे। पर ग्रंथ के आरंभ में कवि ने मसनवी की रूढ़ि के

अनुसार शाह-ए-वक्त शेरशाह की प्रशंसा की है। जिसके शासन-काल का आरंभ 947 हिजरी अर्थात 1540 ई. से हुआ है। इस दशा में यही जान पड़ता है कि कवि ने कुछ थोड़े से पद 1520 ई. में बनाये थे पर ग्रंथ को 19 या 20 वर्ष पीछे शेरशाह के समय में पूरा किया।'' इस प्रसंग में वासुदेव शरण अग्रवाल का मानना है कि -''9वीं सदी हिजरी (1398 ई. से 1494 ई.) के बीच में किसी समय जायसी का जन्म हुआ। नवसदी से यह अर्थ लेना कि ठीक 900 हिजरी अर्थात 1494 ई. में जायसी का जन्म हुआ था, कवि के जीवन की अन्य तिथियों से संगत नहीं ठहरता। पद्मावत की रचना 1527-1540 ई. के बीच किसी समय हुई। उस समय वे अत्यन्त वृद्ध हो गये थे। अतः 1494 को उनका जन्म संवत मानना कठिन है। आखिरी कलाम का निर्माण उन्होंने 1535 ई. अर्थात 936 हिजरी में किया। उससे पहले बादशाह बाबर दिल्ली के सिंहासन पर बैठ चुके थे। जिसका उल्लेख कवि ने किया है। इसी प्रसंग में उन्होंने यह संकेत भी किया है कि उनके जन्म के आस-पास एक बड़ा भूकम्प आया था।'' मनेर शरीफ (बिहार) वाले ख़ानकाह के पुस्तकालय से मिली अखरावट की प्रति के आधार पर प्रोफेसर सैयद हसन असकरी ने अखरावट का रचनाकाल 1505 ई. माना है। 1505 ई. में 30 वर्ष का समय घटाकर 1475 ई. को जायसी का जन्म वर्ष माना जा सकता है। इसी क्रम में 910-11 हिजरी के उस प्रचंड भूकम्प की चर्चा भी की जा सकती है जिसका उल्लेख 'तारीख़ दाउदी' (अब्दुल्लाह) तथा बदायूँनी की 'मुनतख़वुल तारीख़' आदि में है।

उपरलिखित विवरणों से स्पष्ट है कि जायसी के जन्म संवत को लेकर किसी ठोस निर्णय पर पहुँचना बहुत मुश्किल है। अतः जायसी को 15वीं सदी के मध्य में कभी जन्मा हुआ मानने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं बचता। विवाद इस बात को लेकर भी है कि इनका जन्म जायस में हुआ था या ये कहीं और से आकर वहाँ बस गये थे। पद्मावत में उन्होंने अपने चार मित्रों की चर्चा भी की है। इन मित्रों में युसूफ मलिक को पंडित के रूप में, सालार तथा मियाँ सलोने को वीर योद्धा के रूप में तथा बड़े शेख़ को वे सिद्ध के रूप में याद करते हैं। जनश्रुतियों में इनका एक आँख और एक कान से हीन होना साथ ही कुरूप होना प्रसिद्ध है। इन बातों की चर्चा उन्होंने स्वयं रचना-प्रसंगों के भीतर भी की है। पर यह स्पष्ट नहीं है कि ये चुनौतियाँ उन्हें जन्म से ही मिली थीं या बाद में। इन्होंने अनेक सिद्ध गुरुओं की चर्चा की है जिनकी सहायता से जायसी को वह रास्ता मिला जिसकी उन्हें तलाश थी। इनमें सैयद अशरफ, शेख़ हाज़ी, शेख़ मुबारक और शेख़ कमाल आदि का नाम लिया है। इनके अलावा मौहदी या महदी गुरु शेख़ बुरहान की चर्चा भी की है। इस प्रसंग में उपलब्ध साक्ष्य यह बताते हैं कि जायसी ने शास्त्रीय ज्ञान के लिये कम से कम दो या दो से अधिक धाराओं से संबंध रखने वाले सूफ़ी संतों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की है। इससे स्पष्ट है कि वे किसी सम्प्रदाय की सीमा में बँधने की जगह जीवनानुभूति और अभिव्यक्ति के क्षेत्र में उदारता के हामी हैं। उनकी यही उदारता संस्कृतियों के संगम पर खड़े उनके विलक्षण संश्लेषक कवि-व्यक्तित्व की आधारशिला है।

7.3.2 रचनाकार व्यक्तित्व

मलिक मुहम्मद जायसी हिन्दी साहित्य परम्परा में विलक्षण रचनाकार हैं। ये भक्ति-काव्य की निर्गुण धारा की प्रेमाश्रयी शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। प्रेमाश्रयी शाखा के कवियों ने कथ्य के आधार के रूप में लोक में प्रचलित प्रेम-कथाओं को अपनाया है। इसी आधार पर उन्होंने अपनी जीवन-दृष्टि को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रेममार्गी भक्ति शाखा और जायसी का परिचय देते हुये हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि -''कुतबन, जायसी आदि इन प्रेम कहानी के कवियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन-दशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक सा प्रभाव दिखायी पड़ता है। हिन्दू हृदय और मुसलमान हृदय आमने-सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियाँ, हिन्दुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुयी परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी, यह जायसी द्वारा पूरी हुयी।'' इस प्रसंग की तह तक पहुँचते हुए आचार्य शुक्ल निर्गुण भक्ति की दानों धाराओं को तुलनात्मक दृष्टि से देखकर अपना निष्कर्ष इस प्रकार देते हैं -''कबीर ने अपनी झाड़-फटकार के द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों के कट्टरपन को कम करने का जो प्रयास किया वह अधिकतर चिढ़ानेवाला सिद्ध हुआ, हृदय को स्पर्श करनेवाला नहीं। मनुष्य-मनुष्य के बीच जो रागात्मक संबंध है वह उसके द्वारा व्यक्त न हुआ।'' जाहिर है कि आचार्य शुक्ल इस काल की रचनाओं के माध्यम से उस समय और समाज के परिदृश्य को उसकी समग्र अन्विति में विश्लेषित करने का प्रयास कर रहे हैं। इस क्रम में कबीर के बारे में उनके मन्तव्यों के अतिरेक से सहमत होना सम्भव नहीं है किन्तु, जायसी के सृजनात्मक अवदान के महत्व के विषय में उनके द्वारा व्यक्त की गयी दिशा बहुत महत्वपूर्ण है। इसका संकेत देते हुये जायसी ग्रंथावली की भूमिका में उन्होंने लिखा है -''बहुत दिनों तक एक साथ रहते-रहते हिन्दू और मुसलमान एक-दुसरे के सामने अपना-अपना हृदय खोलने लग गये थे, जिससे मनुष्यता के सामान्य भावों के प्रवाह में मग्न होने और मग्न करने का समय आ गया था। जनता की प्रवृत्ति भेद से अभेद की ओर हो चली थी। मुसलमान हिन्दुओं की रामकहानी सुनने को तैयार हो गये थे और हिन्दू मुसलमान का दास्तानहमज़ा।'' यहाँ आचार्य शुक्ल मध्यकालीन भारतीय समाज के तमाम अन्तस्संघर्षों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान और उससे भी बढ़कर हार्दिक एकता के बोध की सम्भावना का संकेत करते हैं -''सूफी मुसलमान फकीरों के सिवा कई सम्प्रदायों (जैसे गोरखपंथी, रसायनी, वेदान्ती) के हिन्दू साधुओं से भी उनका बहुत सत्संग रहा, जिनसे उन्होंने बहुत सी जानकारी प्राप्त की। .....इसी उदार सार ग्राहिणी प्रवृति के साथ ही साथ उन्हें अपने इस्लाम धर्म और पैगम्बर पर भी पूरी आस्था थी। यद्यपि कबीरदास के समान उन्होंने भी उदारता पूर्वक ईश्वर तक पहुँचने के अनेक मार्गों का होना तत्वतः स्वीकार किया है।'' जायसी के रचनात्मक अवदान के प्रसंग में उनकी निभ्रांत धारणा यह है कि -''पद्मावत को पढ़ने से यह प्रकट हो जाएगा कि जायसी का हृदय कैसा कोमल और 'प्रेम की

पीर' से भरा हुआ था। क्या लोकपक्ष में और क्या भगवत् पक्ष में, दोनों ओर उनकी गूढ़ता और गम्भीरता विलक्षण दिखायी देती है।''

कहना न होगा कि, मलिक मुहम्मद जायसी को भक्ति-काव्य-धारा में अत्यंत गौरवपूर्ण स्थान दिया गया है, जो सर्वथा उपयुक्त है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि -''सूफी कवियों में सर्वश्रेष्ठ मलिक मुहम्मद जायसी थे, जो कहीं बाहर से जायस में आए थे और इसी धर्म-स्थान को अपना निवास-स्थान बना लिया था। इनकी प्रसिद्ध रचना पद्मावत है; अखरावट और आखिरी क़लाम नामक दो और रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। भगवान ने इन्हें रूप देने में बड़ी कंजूसी की थी किन्तु शुद्ध निर्मल और प्रेमपरायण हृदय देने में बड़ी उदारता से काम लिया था।'' जायसी के कवि व्यक्तित्व की विशेषता को रेखांकित करते हुए डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि -''जायसी के संदर्भ में यह बात फिर उभर कर आती है कि कविता-मात्र साम्प्रदायिक नहीं होती। मुसलमान होकर हिन्दू शौर्य की गाथा - दिल्ली के सुल्तान के विरुद्ध - एक नाज़ुक प्रसंग है। पर जायसी पद्मावत के चित्रण में एकदम खरे उतरते हैं। यहाँ दोनों पक्षों का पूरे आदर और आत्मीयता के साथ उल्लेख हुआ है -'हिन्दू तुरक दुवौ रन गाजे।' और अगर आत्मीयता कहीं कुछ अधिक है तो चित्तौड़ के साथ न कि दिल्ली के।'' मलिक मुहम्मद जायसी और उनके रचना कर्म को देखने और दिखाने की पारंपरिक दृष्टि को सीधी चुनौती देते हुये विजयदेवनारायण साही ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'जायसी' में लिखा है -''उन्होंने (आलोचकों ने) जायसी को सैयद मुहम्मद महदी का चेला तो माना, लेकिन बिना इसकी छानबीन किये कि महदियत के चरित्र और तसव्वुफ़ के चरित्र में क्या अन्तर है, जायसी को उसी गुरु-परम्परा के आधार पर सूफ़ी मान लिया। यहाँ तक कि यह हिन्दी की लगभग बद्धमूल धारणा हो गयी है कि पद्मावत एक सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्य है और इसकी चर्चा हिन्दी कविता के उस कोने में होनी चाहिए जहाँ जायसी के समकक्ष कुतबन और मंझन दिखते हैं। हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों की शृंखला कबीर, जायसी, सूर और तुलसी की है, यह दृश्य अक्सर आँखों से ओझल हो जाता है।'' बहुत से ठोस तर्कों एवं प्रमाणों के आधार पर एक व्यवस्थित विवेचन प्रक्रिया विकसित करते हुये उन्होंने जायसी के कवि व्यक्तित्व की मूलभूत विशेषताओं को सामने लाया है। वे जायसी के काव्य की विशेषताओं का उद्घाटन करने के क्रम में जायसी या पद्मावत पर सूफ़ी प्रभाव का प्रयास पूर्वक निषेध करते हैं। उनकी स्पष्ट धारणा है कि जायसी का महत्व उनकी रचनात्मकता पर सूफ़ी प्रभाव को लेकर नहीं बल्कि उनके कवित्व को लेकर है।

सामान्यतः सभी कवियों और विशेषतः भक्ति-काव्य के प्रतिनिधि कवियों के बारे में बार-बार यह प्रश्न सामने आता है कि उनकी विशेषता का आधार उनकी वह चिंतन-धारा है जिससे वे आमतौर पर जुड़े हुये माने जाते हैं, या फिर उनका कवित्व। परम्परा और परिवर्तन को उसकी समग्रता में पहचानने का इतिहासधर्मी दबाव, कई बार रचनाकार या रचना के रचनात्मक परिप्रेक्ष्य अथवा वैयक्तिक वैशिष्ट्य की पहचान में बाधा बन जाता है। कवित्व का परिचय सामने आता तो है पर दबा-सहमा सा। वहाँ दर्शन की गरिमा साहित्यिक सृजनात्मकता पर भारी पड़ती है। जायसी बड़े सूफी संत हैं या नहीं ? वे महान समाजसुधारक हैं या नहीं ? ये प्रश्न साहित्य के

विद्यार्थी के लिए भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं; लेकिन उनके कवित्व की असंदिग्ध प्रभावकता हमारे लिए निश्चय ही अधिक महत्वपूर्ण है।

7.3.3 रचनाएँ

जायसी की अनेक रचनाओं का उल्लेख किया जाता है। इनमें पद्मावत, अखरावट और आखिरी क़लाम को प्रामाणिकता प्राप्त है। इनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है।

पद्मावत - मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा ठेठ अवधी में रचित यह रचना हिन्दी-साहित्य के प्रेमाख्यानकों की परम्परा का उत्कृष्ट ग्रंथ है। इसका रचना-काल, विद्वानों के बीच विवाद का विषय रहा है। कुछ ने इसे 1521 इसवी तो कुछ अन्य ने 1540 इसवी के आस-पास का माना है। इसमें चित्तौड़ के राजा रतनसेन, उसकी रानी नागमती, सिंहल द्वीप की राजकुमारी पद्मावत तथा अन्य अनेक पात्रों और आनुषंगिक कथाओं के कुशल संयोग से इस महाकाव्य की रचना की गई है। इसके रचना-विधान पर फारसी की मसनवी शैली का स्पष्ट प्रभाव है। पद्मावत के प्रसंग में अधिकांश आलोचकों का मानना है कि यह सूफ़ी प्रभाव से प्रेरित और सूफ़ी जीवन-दर्शन को प्रस्तुत करने वाली रचना है। इस बद्धमूल धारणा का आधार निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं जिन्हें पाठ-कुंजी माना जाता रहा है-

''तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल, बुधि पद्मिनी चीन्हा।।
गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा।।
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू।।
प्रेम कथा एहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जौ बूझै पारहु।।''

डॉक्टर माताप्रसाद गुप्त ने इन पंक्तियों को प्रक्षिप्त सिद्ध किया है। विजयदेवनारायण साही ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'जायसी' में जायसी और पद्मावत को सूफ़ी प्रभाव से अलग करके देखने की पुरजोर वक़ालत की है। जायसी ने पद्मावत में लोक-जीवन के विविध अनुषंगों (लोक-कथा, लोक-भाषा, लोकोक्ति, लोकाचार आदि) का आधार लेकर न केवल कथा-सूत्र विकसित किया है, बल्कि अपना रचनात्मक संदेश भी इन्हीं आधारों पर सृजित किया है। ऐसा कहने और मानने का कारण यह है कि पद्मावत के कथ्य और उसके रूप से उसके परिवेश की पारस्परिक अन्विति बेजोड़ है। ऐसा किसी रचना या कवि के प्रसंग में तभी संभव हो पाता है जबकि रचनाकार का न केवल अपने कथ्य से, न केवल उस कथ्य के संप्रेषण के घटकों से, बल्कि उस परिवेश और अभीप्सित पाठक-श्रोता समुदाय से भी गहरा तादात्म्य हो। जायसी की सृजनात्मक क्षमता का पुष्ट प्रमाण देता हुआपद्मावतपद्मावत यह भी साबित करता है कि उसे अपनी असंदिग्ध ताकत को प्रमाणित करने के लिए साहित्य से इतर किसी और सहारे की आवश्यकता नहीं। यहाँ कही गयी बातों को अगली इकाई में पद्मावत के मूल पाठ के विवेचन-विश्लेषण के क्रम में व्यावहारिक रूप से जाना जा सकता है।

अखरावट - अखरावट में जायसी का कथ्य सैद्धान्तिक है। जीवन और जगत की संरचना तथा इसके आधार के रूप में सक्रिय उस मूल सत्ता के स्वरूप और भूमिका को स्पष्ट करने वाली यह पुस्तक न केवल जायसी बल्कि उनके समय की प्रचलित धारणाओं को सामने लाती है। आचार्य शुक्ल ने इसके बारे में लिखा है -''अखरावट में वर्णमाला के एक-एक अक्षर को लेकर सिद्धान्त सम्बन्धी, तत्वों से भरी चौपाइयाँ कही गयी हैं। इस छोटी सी पुस्तक में ईश्वर, सृष्टि, जीव, ईश्वर-प्रेम आदि विषयों पर विचार प्रकट किये गये हैं।'' उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं।

दोहा

गगन हुता नहिं महि हुती, हुते चंद नहिं सूर।
ऐसेइ अंधकूप मँह रचा मुहम्मद नूर।।

सोरठा

साईं केरा नाँव, हिया पूर, काया भरी।
मुहमद रहा न ठाँव, दूसर कोइ न समाइ अब।।
आदिहु ते जे आदि गोसाईं। जेइ सब खेल रचा दुनियाई।।
जस खेलेसि तस जाइ न कहा। चौदह भुवन पूरि सब रहा।।
एक अकेल न दूसर जाती। उपजे सहस अठारह भाँती।।
जौ वै आनि जोति निरमई। दीन्हेसि ज्ञान, समुझि मोहिं भई।।
औ उन्ह आनि बार मुख खोला। भइ मुख जीभ बोल मैं बोला।।
वै सब किछु, करता किछु नाहीं। जैसे चलै मेघ परिछाहीं।।
परगट गुपुत बिचारि सो बूझा। सो तजि दूसर और न सूझा।।

आख़िरी क़लाम - 'आखिरी क़लाम' में कयामत के समय अल्लाह के फैसले का विशद वर्णन है। विजयदेवनारायण साही ने इस प्रसंग में लिखा है कि -''आख़िरी कलाम की कयामत वह भावनात्मक और वैचारिक धुरी है जिस पर हमारे पुण्य, ईमान और बेइमानियाँ चक्कर काटते हैं - कल या परसों घटित होने वाला इतिहास नहीं।'' यह भी अवश्य याद रखना चाहिए कि जायसी के जीवन और उनकी रचनाओं के बारे में प्राप्त अधिकतर तथ्य परक सूचनाओं का आधार 'आखिरी क़लाम' ही है।

7.4 सूफ़ी मत एवं निर्गुण भक्ति की प्रेमाश्रयी शाखा

7.4.1 सूफ़ी मत का उद्भव और विकास

व्यक्तित्व का विकास उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों से संसर्ग का ही प्रतिफल है। कवि जायसी के ठीक पहले और उनके रचना-काल की परिस्थितियों के अध्ययन से यह पता चलता है कि इस दौर में सूफ़ी जीवन-दर्शन अत्यन्त महत्वपूर्ण बनकर सामने आया। इसके महत्वपूर्ण होने के पीछे ठोस ऐतिहासिक कारण थे। भारत में हिन्दू और मुसलमान अपनी तमाम आन्तरिक विविधताओं, विचित्रताओं और विरोधों के साथ आमने-सामने खड़े थे। इनमें परस्पर सांस्कृतिक आदान-प्रदान स्वाभाविक ही नहीं अनिवार्य भी था। यह आदान-प्रदान न तो आकस्मिक था और न इतना नया ही। परन्तु इतने व्यापक पैमाने पर यह परिस्थिति पहली बार बनी थी, इसमें संदेह नहीं। दोनों-जन समूहों की परस्पर अन्तर्क्रिया से भारतीय संस्कृति को एक नयी दिशा और नया स्वरूप मिलना था। यह तभी सम्भव था जब दोनों जन-समूह अपने जीवन-दर्शन के स्तर पर एक हद तक उदार होते। हिन्दी समाज और साहित्य में सूफ़ी मत, इस्लाम के इसी उदार वैचारिक पहलू का प्रतिनिधि है। 'भारतीय चिन्तन परम्परा' में के. दामोदरन ने लिखा है -''सामंत काल में सूफ़ी सम्प्रदाय रहस्यवाद की सर्वाधिक महत्वपूर्ण धाराओं में से एक था। इसका उदय उन क्षेत्रों में हुआ, जिन्हें आठवीं अथवा नवीं शताब्दी में मुसलमानों ने जीत लिया था। भारत में इस्लाम का प्रसार होने के साथ ही सूफ़ी मत का भी तेज़ी से प्रसार हुआ। भारत में आने से पहले भी सूफ़ी मत बौद्ध धर्म और हिन्दू विचारधारा से परिचित था और उसने भारतीय आदर्शवाद के कुछ तत्वों को आत्मसात कर लिया था।''

सूफ़ी साधकों और संतों ने सादग़ी और एकनिष्ठता को साधना का आधार बनाया। वे वास्तविकता की सही पहचान के लिए साधक के जीवन में अनेक कठिन शर्तों के पालन को अनिवार्य मानते हैं। पारम्परिक इस्लाम के झंडाबरदारों में, इस्लाम के औपचारिक स्वरूप के प्रति जो कट्टरता दिखाई देती है, सूफ़ियों में उसका आभाव है। वे इस्लामी जीवन-विधि के दृश्यपक्ष को खास महत्व न देते हुए उसके आन्तरिक अनुशासन के प्रति समर्पित हैं। जहाँ परमानंद की प्राप्ति लक्ष्य है और इसके लिए एकनिष्ठ प्रेम ही इसका साधन है। सूफ़ी मत की व्याख्या के प्रसंग में अनेक विद्वानों ने वेदान्त-दर्शन से इसकी समानता को रेखांकित किया है। इस्लाम का मूल सिद्धांत -'सिर्फ एक ईश्वर का अस्तित्व है'- सूफ़ियों के यहाँ आकर -'खुदा के अलावा और कुछ नहीं खुदा ही सब जगह'- हो जाता है। इसे वहदतुलवजूद के रूप में जाना गया। सूफ़ी मत के बारे में कुछ विद्वानों का मानना यह है कि इसका जन्म मुहम्मद साहब के द्वारा प्रस्तुत की गई इस्लाम की अवधारणा के साथ ही हुआ। कुछ अन्य विद्वान इसे अपेक्षाकृत थोड़े बाद का मानते हैं। इस प्रसंग में ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि इस्लाम की पारम्परिक अवधारणा जहाँ बाहरी क्रिया कलापों तथा रोजा, नमाज़ आदि के प्रति एकनिष्ठ प्रतिबद्धता को महत्व देती है। वहीं सूफी मत इस्लाम के रूप में प्रतिपादित धर्म के अन्तर्निहित रूपों, भावात्मक आधारों को लेकर विकास पाता है। मुहम्मद गोरी द्वारा भारत विजय के समय भारत में प्रविष्ट होने से पूर्व यह अनेक

सिलसिलों में विभाजित हो चुका था। इनमें से बारह सिलसिले मुख्य माने जाते हैं। भारत में इन बारह सिलसिलों में से केवल चार ही अपना विस्तार पा सके। इनके नाम क्रमशः चिश्तिया, सोहरावर्दी, कादरी, नक्सबंदी हैं। इनमें भी ज्यादा प्रभावशाली चिस्ती और सोहरावर्दी रहे हैं। ख्वाज़ा मोईनुद्दीन चिस्ती और शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया, शेख हमीदुदीन नागौरी, शेख फ़रीदुदीन महमूद और ख्वाज़ा कुतुबुद्दीन बख्तियार क़ाक़ी जैसे कुछ संतों ने अपने विलक्षण प्रभाव से लम्बे समय तक भारतीय समाज को दिशा दी।

इस्लाम की कठोर हदबंदियों को एक हद तक न मानते हुए आस्था के आन्तरिक पक्ष को मूल मानने वाले इन रहस्यवादियों ने हिन्दुओं के बीच इस्लाम के प्रचार और प्रसार की पृष्ठभूमि तैयार की। दिल्ली सल्तनत के तथा मुगल वंश के महानतम विजेताओं ने यदि भारत में राजनीतिक विजय हासिल की (जमीन और धन कमाया) तो शौक़ से मुफ़लिसी में जीने वाले इन सूफ़ी संतों ने लाखों लोगों के हृदयों पर राज किया। इस्लाम की दोनों धाराओं के अन्दर और ख़ासतौर पर सूफ़ी मत में अनेक कबीलों से चली आयी पारंपरिक मान्यताओं और जीवन-विधियों का मेल दिखायी देता है। भारत में आकर अपनी स्वभावगत उदारता के बल पर इन्होंने हिन्दू जीवन-विधि के कुछ अंशों को भी अपना लिया। यही कारण है कि तब से लेकर इन सूफी संतों के मजारों और इनके द्वारा स्थापित खानकाहों में न केवल मुसलमान बल्कि हिन्दू भी श्रद्धा से अपना मत्था टेकते आये हैं। इस तरह यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि इस्लाम के भारत में आगमन से लेकर अब तक दो परस्पर भिन्न एवं एक हद तक परस्पर विरोधी प्रवृत्ति वाली संस्कृतियों के मेल से एक नयी संस्कृति और सभ्यता के विकास की दिशा में सूफी मत का योगदान अविस्मरणीय है। ठीक उसी काल में तथाकथित हिन्दू दलित जातियों के सदस्यों को उनका सम्मान देने और दिलाने के क्रम में भक्ति की विविध प्रवृत्तियों की जैसी भूमिका रही है ठीक वैसी ही भूमिका उपेक्षित और प्रताडित मुसलमानों को उनका हक दिलाने में सूफ़ी मत की रही है। यह महज संयोग नहीं है कि सूफ़ी मत को आधार बना कर चलने वाली निर्गुण प्रेममार्गी शाखा को भक्ति-आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण शाखा के रूप में पहचाना गया है।

7.4.2 निर्गुण भक्ति की प्रेमाश्रयी शाखा का उद्भव और विकास

हिन्दी-साहित्य के इतिहास के पूर्व मध्यकाल को भक्ति-काल कहा जाता है। इस काल में उपलब्ध साहित्यिक रचनाओं के आधार पर किये गये इस नामकरण को व्यापक स्वीकृति मिली है। इस काल की लगभग सभी रचनाओं में भक्ति की प्रवृति मुख्य रूप से सक्रिय है। साहित्य के विद्यार्थी को यह ध्यानपूर्वक देखना और समझना चाहिए कि भक्ति कोई एकरूपी अथवा समान तरीके अथवा समान उद्देश्य को लेकर चलने वाला जीवन-दर्शन नहीं है। भौगोलिक रूप से लगभग समूचे भारत में एक लम्बे काल-खण्ड (1400-1700 ई.) में रचनात्मक ऊर्जा का संचार करने वाली यह प्रवृत्ति विविध भाषा-भाषी क्षेत्रों, अनेकानेक भिन्न सांस्कृतिक समुदायों के विविध उद्देश्यों को प्राप्त करने का एक ऐसा भावनात्मक और वैचारिक संदर्भ है जिसके बहुविध सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पहलु हैं। इस अर्थ में भक्ति, बेहद जटिल दार्शनिक अवधारणा है। यह अवधारणा उस काल-खण्ड की विविध और परस्पर विरोधी

जीवन-विधियों और आदर्शों को एक ऐसा सृजनात्मक सांस्कृतिक मंच देती है, जो इससे पहले दुर्लभ था। यही कारण है कि यह प्रवृत्ति भारतीय संस्कृति के इतिहास में अर्जित की गई सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धियों में एक है। जिसका प्रभाव भारतीय जीवन के विभिन्न संदर्भों में, बदले हुए रूपों में, आज भी देखा जा सकता है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में इसे चार मुख्य धाराओं में बाँटकर देखा गया है। जाहिर है कि इस बँटवारे का आधार इस युग में प्राप्त होने वाली रचनाएँ हैं। आचार्य शुक्ल ने इस काल की चार प्रमुख धाराओं का उल्लेख निम्नवत् किया है- ''इस प्रकार देश में सगुण और निर्गुण के नाम से भक्ति-काव्य की दो धाराएँ विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के अंतिम भाग से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक समानान्तर चलती रही। ..... यह निर्गुण धारा दो शाखाओं में विभक्त हुई - एक तो ज्ञानाश्रयी शाखा और दूसरी शुद्ध प्रेममार्गी शाखा (सूफियों की)।'' इस क्रम में वे आगे लिखते हैं -''दूसरी शाखा शुद्ध प्रेममार्गी सूफ़ी कवियों की है। जिनकी प्रेम गाथाएँ वास्तव में साहित्य कोटी के भीतर आती हैं। इन साधक कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने उस प्रेम तत्व का आभास दिया है जो प्रियतम ईश्वर से मिलानेवाला है।

भक्ति आन्दोलन और इससे प्रेरित साहित्य को आराध्य की अवधारणा के आधार पर दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया गया है - निर्गुण और सगुण। परमात्मा या परमशक्ति की अवधारणा के प्रसंग में निर्गुण और सगुण का यह अन्तर बहुत प्राचीन काल से प्रचलित रहा है। आपाततः परस्पर विरोधी दिखायी देने वाली ये दोनों अवधारणाएँ वस्तुतः अनेक अर्थों में एक दूसरे की विरोधी उतनी नहीं, जितनी की पूरक हैं। भारत जैसे वैविध्य पूर्ण सांस्कृतिक विरासत वाले देश में किसी अवधारणा का लचीलेपन के बिना जीवित रहना असम्भव है। आश्चर्य नहीं कि भक्ति-आन्दोलन के पुरोधाओं के सामने भारतीय परम्परा ने जितने संभव विकल्प रखे थे, उन्होंने उन सब का आवश्यकता के अनुरूप प्रयोग करते हुये इस भूभाग में बसने वाले विराट जन-समूह को सांस्कृतिक नेतृत्व दिया। पारम्परिक हिन्दू चिन्तन धारा में उपलब्ध निर्गुण मत और सूफ़ी मत में अवधारणागत समीपता के कारण भक्ति की निर्गुण धारा के क्रमशः दो भेद सामने आये -

1. ज्ञानाश्रयी निर्गुण मत और
2. प्रेमाश्रयी निर्गुण मत

जैसा नाम से ही स्पष्ट है ज्ञानमार्ग में उस परम शक्ति के बोध का आधार ज्ञान है, जो साधना का विषय है तो दूसरी ओर प्रेममार्गी शाखा में प्रेम का आधार ग्रहण किया गया है। इस धारा के अधिकतर रचनाकारों ने सूफ़ी मत के अनुरूप इश्क मज़ाज़ी (इस दुनियाँ का प्रेम) से इश्क हक़ीक़ी (पारलौकिक प्रेम) की अवधारणा को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। ध्यान देने की बात यह है कि यहाँ प्रेम के जिस स्वरूप को आधार बनाया गया है वह वस्तुतः गहन अन्तस्साधना के आधार पर पाया गया बोध है।

7.4.3 प्रेमाश्रयी निर्गुण मत से जुड़ी रचनाएँ

इस प्रेममार्गी शाखा की प्रमुख विशेषता लौकिक प्रेम कथाओं के आधार पर आध्यात्मिक उपलब्धि की यात्रा का सांकेतिक चित्रण है। इन कथाओं में प्रेमी और प्रेमिका के बीच अद्भुत आकर्षण, उनके मिलन-मार्ग की विकट बाधाओं और इन बाधाओं से नायक का जूझने और अन्त में उनके मिलन का चित्रण है। इस परम्परा की लौकिक कथाओं का हिन्दी क्षेत्र के भारतीय जन-समुदाय में व्यापक प्रचार-प्रसार था। इन कथाओं को आधार बनाकर अपनी बात को लोगों तक पहुँचाने का प्रयास प्रेममार्गी सूफी कवियों ने किया। इस धारा के कवियों में प्रथम स्थान चंदायन (1379 ई.) के रचयिता मुल्ला दाउद का है। चंदायन की भाषा अवधी है। इसका परिचय देते हुए विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं कि -''मुल्ला दाउद रायबरेली जिले के डलमउ के थे। वहीं चंदायन की उनहोंने रचना की। यह काव्य बहुत लोकप्रिय एवं सम्मानित था। दिल्ली में मखदुम शेख तक़ीउद्दीन रब्बानी जन समाज के बीच इसका पाठ किया करते थे। चंदायन पूर्वी भारत में प्रचलित लोरिक, उसकी पत्नी मैना और उसकी विवाहिता प्रेमिका चंदा की प्रेम-कथा पर आधारित है। बीच-बीच में चंदा को इस काव्य में भी पद्मावत की भाँति अलौकिक सत्ता का प्रतीक बनाया गया है।'' इसी परम्परा में आने वाली दूसरी महत्वपूर्ण रचना 'मिरगावत' (1503-04) है। इसके रचनाकार कुतबन हैं। इस परम्परा को अपने शीर्ष पर पहुँचाने वाले मलिक मुहम्मद जायसी की जगत प्रसिद्ध रचना 'पद्मावत' है। 'पद्मावत' के कवि की सृजनात्मक विलक्षणता, उसकी दृष्टिगत व्यापकता और परस्पर विरूद्ध तत्वों को साथ-साथ देखने और दिखाने की क्षमता में निहित है। इस क्रम में अगला महत्वपूर्ण नाम कुतबन का है। इन्होंने 1503-1504 ई. के आस-पास 'मिरगावत' की रचना की। कुतुबन की 'मिरगावत' की विशेषताओं को रेखांकित करते हुये आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने निम्नलिखित पंक्तियों में इस धारा के रचनाओं के बारे में कुछ बहुत महत्वपूर्ण संकेत दिये हैं -''दो बातें इस कहानी में विशेष ध्यान देने की हैं। एक तो पुरुष का एकान्तिक प्रेम और प्रिया को प्राप्त करने के लिए कठिन साधना; दूसरा, प्रिया का धोखा देकर उड़ जाना और दूसरे देश में जाकर राज्य-शासन करना। इस प्रकार की कथानक-रूढ़ियाँ इस देश में नयी ही हैं। प्रेमपात्र में ऐश्वर्य-बुद्धि और कठिन साधना के द्वारा ही उसकी प्राप्ति तथा माधुर्य भाव के द्वारा ऐश्वर्य भाव का पराभव, ये सूफ़ियों के आध्यात्मिक आदर्श हैं। यहाँ प्रिय भगवान का प्रतीक है और धोखा देकर उड़ जाना उसके प्रेम की सचाई की परीक्षा है। सूफ़ी कवियों ने सदा प्रेमी को अनेक विघ्नों में से निकाल कर नायिका तक पहुँचाया है। लौकिक पक्ष में यह प्रेम की एकान्तिकता का सूचक है और पारलौकिक पक्ष में साधना की गहनता का।'' इस परम्परा में तीसरा नाम उस महान कवि का है जिसे इस धारा का सर्वश्रेष्ठ कवि होने का गौरव प्राप्त है। हिन्दी-साहित्य के पाठक इन्हें मलिक मुहम्मद जायसी के नाम से जानते हैं। इनकी जगत प्रसिद्ध रचना पद्मावत इनके अखण्ड यश का दृढ़ आधार है। अखरावट और आखिरी कलाम नामक दो अन्य रचनाएँ भी इन्होंने लिखी हैं। लेकिन साहित्य की दृष्टि से पद्मावत सर्वोपरि है। इसकी आधार कथा सिंघल देश की राजकुमारी पद्मावती और चित्तौर के राजा रतनसेन की प्रेम-कथा है। अनेक सहायक पात्रों के माध्यम से इस कथा का बहुत प्रभावी ताना-बाना जायसी ने प्रस्तुत किया है। इसके बारे में अधिकतर विद्वानों की धारणा

है कि यह सूफ़ी मत का प्रतिनिधि काव्य है। परवर्ती दौर में प्रसिद्ध हिन्दी आलोचक विजयदेवनारायण साही ने इस रचना को सूफ़ी मत से अलग कर, इसकी साहित्यिक विलक्षणता को पहचानने की कोशिश की है। उनका प्रस्ताव यह है कि सूफ़ी मत से जायसी और पद्मावत का अनिवार्य संबंध मान लिये जाने के कारण इसकी व्याख्या और सही समझ विकसित करने में बाधा आती है। लिहाजा जायसी की काव्यगत विशेषताओं को तब तक नहीं पहचाना जा सकता जब तक कि हम पद्मावत को सूफ़ी सिद्धांत की छाया से मुक्त नहीं कर लेते। किन्तु विजयदेवनारायण साही की इस धारणा को व्यापक स्वीकृति मिल पाना अब तक भविष्य का विषय है।

इस परम्परा में अगले रचनाकार मंझन हैं। इनकी रचना का नाम 'मधुमालती' है, जिसका कथा-सूत्र काफ़ी लम्बा और जटिल है। आचार्य शुक्ल ने इन्हें जायसी का पूर्ववर्ती माना है, जबकि परवर्ती शोध इन्हें जायसी के बाद का मानने के पक्ष में हैं। आचार्य शुक्ल ने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में लिखा है कि -''कवि ने नायक और नायिका के अतिरिक्त उपनायक और उपनायिका की भी योजना करके कथा को तो विस्तृत किया ही है, साथ ही प्रेम और ताराचंद के चरित्र द्वारा सच्ची सहानुभूति, अपूर्व संयम और निःस्वार्थ भाव का चित्र दिखाया है। जन्म जन्मांतर और योन्यंतर के बीच प्रेम की अखंडता दिखाकर मंझन ने प्रेमतत्व की व्यापकता और नित्यता का आभास दिखाया है।''

7.4.4 निर्गुण भक्ति की प्रेमाश्रयी शाखा की रचनाओं की सामान्य विशेषताएँ

इनमें रचनाकारों ने हिन्दु जन-मानस में प्रचलित लोक-कथाओं और लोक-भाषा (अवधी) का आधार ग्रहण किया है।

- ज़्यादातर रचनाएँ फ़ारसी की मसनवी शैली में लिखी गई हैं।
- इनमें सूफ़ी दर्शन के तत्व प्रकटतः देखे जा सकते हैं।
- इन कथाओं में अनेक कथानक रूढ़ियों का प्रयोग है जो दोनों संस्कृतियों के मेल का सूचक है।

{''कथानक को गति देने के लिए सूफ़ी कवियों ने प्रायः उन सभी कथानक-रूढ़ियों का व्यवहार किया है, जो परम्परा से भारतीय कथाओं में व्यवहृत होती रही हैं; जैसे चित्रदर्शन, स्वप्न द्वारा अथवा शुक-सारिका आदि द्वारा नायिका का रूप देख या सुनकर उसपर आसक्त होना, पशु-पक्षियों की बातचीत से भावी घटना का संकेत पाना, मन्दिर या चित्रशाला में प्रिययुगल का मिलन होना, इत्यादि। कुछ नयी कथानक-रूढ़ियाँ ईरानी साहित्य से आ गयी हैं; जैसे - प्रेम-व्यापार में परियों और देवों का सहयोग, उड़ने वाली राजकुमारियाँ, राजकुमारी का प्रेमी को गिरफ़्तार करा लेना, इत्यादि। परन्तु इन नयी कथानक-शैलियों को भी कवियों ने पूर्ण रूप से भारतीय वातावरण के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया है।''} इन रचनाओं का मुख्य आधार प्रेम की भावना है, जो मनुष्य को सामान्य जीवन में पाये जाने वाले बन्धनों से मुक्त कर अनुभव के दूसरे लोक में पहुँचाता है।

चौपाई और दोहे के मेल से बने कड़वकों में ये कथाएँ निबद्ध हैं।

पाठ्यक्रम संख्या दस में पद्मावत के चयनित अंश की व्याख्या और जायसी की रचनात्मक विषेषताओं से व्यावहारिक परिचय के क्रम में हम प्रेममार्गी काव्यों की कतिपय अन्य विशेषताओं का परिचय भी पायेंगे।

7.5 सारांश

मध्यकालीन कविता की सातवीं इकाई जायसी जीवन एवं साहित्यलोचना का आपने अध्ययन कर लिया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सके कि –

- जायसी भक्ति काल निर्गुण शाखा के प्रेममार्गी धारा के श्रेष्ठ कवि हैं। जायसी न केवल भक्ति काल के श्रेष्ठ कवि है, अपितु हिंदी साहित्य के भी श्रेष्ठ कवि है।
- जायसी का महत्व न केवल साहित्यिक है वरन् सांस्कृतिक भी है, जायसी जैसे कवियों ने हिन्दु-मुसलमानों को धार्मिक विभेद से मुक्त कर उन्हें लोक सामान्य की भाव भूमि पर प्रतिष्ठित किया।
- जायसी का श्रेष्ठ ग्रंथ पद्मावत है, जो हिंदी साहित्य का अनुपम रत्न है। यह ग्रंथ प्रेम काव्य नहीं है वरन् सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक सेतु भी है।
- जायसी लोक भाषा एवं लोकतत्व के कवि हैं। उस प्रदेश के उस समय की प्रचलित लोक भाषा (ठेठ अवधी) का व्यवहार आपने किया है। पूरे काव्य में लोक अभिप्राय बिखरे पड़े हैं।

7.6 शब्दावली

- निर्गुण - संस्कृत/हिन्दी गुणों के परे, गुणों के दायरे से बाहर का, ईश्वर
- प्रेममार्गी - संस्कृत/हिन्दी सूफ़ी मत का आधार ग्रहण करने वाले संत अथवा भक्त कवि
- सूफ़ी (अरबी) अपेक्षाकृत उदार विचार वाले मुसलमानों का एक सम्प्रदाय
- इश्क़ हक़ीक़ी (अरबी) वास्तविक प्रेम (आध्यात्मिक, ईश्वरोन्मुख)
- इश्क़ मज़ाजी (अरबी) कृत्रिम, नकली, संसार या इहलोक सम्बन्धी
- मसनवी (अरबी) कविता का एक प्रकार जिसमें दो-दो तुकान्त चरण एक साथ रहते हैं। अल्लाह और शाह ए वक्त की प्रार्थना से युक्त प्रबन्धात्मक रचना।
- कड़वक संस्कृत/हिन्दी 5 से लेकर 8 चौपाइयों और एक दोहे के मेल से बनने वाले सम्मुच्चय, जो जैन चरित काव्यों, प्रेमाख्यानकों में प्रयुक्त हैं।

7.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

- शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
- शुक्ल, रामचन्द्र,जायसी ग्रंथावली, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली 110002
- अग्रवाल, वासुदेव शरण, पद्मावत, सं0- ,लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1
- द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली 110002
- साही, विजयदेवनारायण, जायसी, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद 211001
- त्रिपाठी, विश्वनाथ, हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, ओरिएन्ट लांगमैन, नई दिल्ली 110002
- चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1
- बाशम, ए. एल., अ कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस
- दामोदरन, के0, भारतीय चिन्तन परम्परा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-55
- रिज़वी, एस.ए.ए., द वन्डर दैट वाज इंडिया(भाग दो), रूपा एंड कम्पनी-नई दिल्ली 110002

7.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रस्तुत पाठ के आधार पर जायसी के रचनाकार व्यक्तित्व का परिचय दें।
2. जायसी की विभिन्न रचनाओं का संक्षिप्त परिचय देते हुये निर्गुण धारा की प्रेममार्गी शाखा में उनके महत्व का रेखांकन करें।
3. निम्नलिखित में से किसी एक की चरित्रगत विशेषताओं का संक्षिप्त परिचय दें -
   1. पद्मावती, 2. राघवचेतन, 3. रतनसेन, 4. अलाउद्दीन
4. पद्मावत और जायसी के संदर्भ में तत्कालीन सामाजिक परिदृश्य पर प्रकाश डालें।

इकाई 8 - तुलसीदास: परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 परिचय
8.3.1 सामान्य सूचनाएँ
8.3.2 रचनाकार व्यक्तित्व
8.3.3 प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त परिचय
8.4 सगुण भक्तिधारा की राम-भक्ति शाखा
8.4.1 भक्ति-आन्दोलन का परिप्रेक्ष्य (समय और समाज)
8.4.2 राम-भक्ति शाखा का दार्शनिक आधार (विशिष्टाद्वैत मत)
8.4.3 राम-भक्ति शाखा का स्वरूप
8.5 चयनित पाठ
8.5.1 रामचरित मानस (चयनित अंश एवं व्याख्या)
8.5.2 कवितावली (चयनित अंश एवं व्याख्या)
8.5.3 विनयपत्रिका (चयनित अंश एवं व्याख्या)
8.6 सारांश
8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.8 शब्दावली
8.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.10 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अध्ययन से आप महाकवि तुलसीदास के व्यक्तित्व और उनकी रचनाओं के साथ-साथ रामभक्ति शाखा के साहित्य और विशिष्टाद्वैत मत तथा इनके पारस्परिक सम्बन्ध का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। हिन्दी साहित्य के इतिहास का पूर्व मध्यकाल - भक्ति काल के नाम से जाना जाता है। इस काल की रचनाओं और रचनाकारों की जीवन-दृष्टि और व्यवहार में भक्ति की सर्वातिशायी सक्रियता के कारण इस काल को भक्ति-काल कहा गया है। भक्ति काल के अन्तर्गत रामभक्ति शाखा का विकास सृजनधर्मी उपलब्धियों और व्यापक प्रभाव की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने भक्ति-काल की समस्त रचनाशीलता

को दो मुख्य धाराओं और पुनः इनकी दो-दो उपधाराओं के अन्तर्गत निम्नलिखित रूप में श्रेणीबद्ध किया है, जिसे हम आगे की बिन्दुओं में अध्ययन करेंगे।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप -

1. तुलसीदास के जीवन और साहित्य का संक्षिप्त परिचय जान सकेंगे।
2. भक्ति की सगुण धारा के अन्तर्गत राम-भक्ति शाखा के साहित्य का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
3. विशिष्टाद्वैत मत का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
4. राम-भक्ति शाखा और विशिष्टाद्वैत मत के पारस्परिक संबंध को जान सकेंगे।
5. राम-भक्ति शाखा के अन्तर्गत तुलसीदास और उनकी रचनाओं का स्थान निर्धारण कर सकेंगे।
6. चयनित पाठ के आधार पर तुलसी-साहित्य की विशेषताओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

8.3 परिचय

महाकवि तुलसीदास हिन्दी साहित्य की सगुण भक्ति धारा की राममार्गी शाखा के शीर्षस्थ सर्जक हैं। इनका सृजन-संसार अत्यन्त व्यापक और गहन है। सृजन कर्म की व्यापकता और गहराई के कारण ये न केवल अपने समकालीनों में बल्कि समग्र हिन्दी-काव्य के इतिहास में अत्यन्त विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं। हिन्दी की पारम्परिक और अद्यतन आलोचनात्मक दृष्टि, अनेक अंतर्विरोधों और मूल्यगत भेदों के बावजूद इनकी सृजन-क्षमता और विलक्षण जीवन-दृष्टि के प्रति सम्मान प्रकट करती आयी है। तुलसी-साहित्य की समग्रतामूलक समझ के लिए इनकी रचना-दृष्टि में निहित अन्तर्विरोधों और मूल्यगत संरचना से अद्यतन जीवन-दृष्टि के अन्तर को जानना अत्यंत आवश्यक है। तुलसी साहित्य की समझ को विकसित करना इसलिए भी जरुरी है कि इसके बिना हिन्दी-क्षेत्र के व्यापक जन-मानस की मूल संरचना को जानना और पहचानना असंभव है।

8.3.1 सामान्य सूचनाएँ

जनश्रुतियों के अनुसार इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी प्रसिद्ध है। हिन्दी भक्ति-साहित्य के सर्वोतकृष्ट कवियों में सुप्रतिष्ठित तुलसीदास के जन्म की तिथि के प्रसंग में मुख्यतः तीन भिन्न मत हैं। 'गोसाईचरित' के लेखक बेनीमाधव दास और 'तुलसीचरित' के लेखक महात्मा रघुबार दास के अनुसार इनका जन्म-वर्ष संवत् 1554 (1497) है। ठाकुर शिवसिंह सेंगर द्वारा रचित 'शिवसिंहसरोज' में इनका जन्म-वर्ष संवत् 1583 (1526ई.) है और पंडित रामगुलाम द्विवेदी तथा अन्य विद्वानों को अनुसार इनका जन्म-वर्ष संवत् 1589 (1532ई.) है। इनमें सर्वाधिक मान्य तिथि संवत् 1589 (1532ई.) है। इनके

देहावसान के वर्ष को लेकर भी मतान्तर रहे हैं किन्तु संवत् 1680 (1623 ई.) इस प्रसंग में मान्य है। उनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध में भी विद्वानों के बीच मतान्तर हैं। सोरों (जिला एटा, उत्तर प्रदेश), राजापुर (जिला बाँदा, उत्तरप्रदेश), सूकर खेत (जिला गोंडा, उत्तर प्रदेश), अयोध्या आदि को लेकर विभिन्न मत व्यक्त किये जाते रहे हैं। इनमें से किसी भी स्थान के बारे में निश्चयात्मक आधार का अभाव है। प्रामाणिक रूप से इतना ही कहा जा सकता है कि महाकवि तुलसीदास सोलहवीं सदी की भारतीय मनीषा की महत्तम उपलब्धि हैं। अवधी भाषा और लोक-जीवन से इनका घनिष्ठ रागात्मक सम्बन्ध है, जिसके प्रमाण इनकी रचनाओं में भरे पड़े हैं। तुलसी साहित्य से प्राप्त अन्तःसाक्ष्यों से उनके जीवन और सामाजिक परिवेश के बारे में अनेक महत्वपूर्ण संकेत मिलते हैं। इन्हीं संकेतों के आधार पर इनके जीवनवृत के बारे में लोक-प्रसिद्ध जनश्रुतियों से प्राप्त सूचनाओं को सामानान्तर रखकर निष्कर्षों तक पहुँचने की चेष्टाएँ की जाती रही हैं।

8.3.2 रचनाकार व्यक्तित्व

तुलसीदास हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय कवियों में एक हैं। उनकी रचनाएँ भारतीय सामान्य जीवन के अतुलनीय विस्तार और सजीव चित्रण के कारण अप्रतिम हैं। जीवन-जगत के वैचारिक और व्यावहारिक दोनों पक्षों का ऐसा सृजनधर्मी संयोजन अन्यत्र दुर्लभ है। अपने समय तक प्रचलित लगभग अधिकांश वैचारिक धाराओं के पारस्परिक सांस्कृतिक-संवाद को परम्परा प्राप्त रामकथा का आधार लेकर सामान्य जन समूह के लिए सामान्य जन-भाषा (अवधी और ब्रजभाषा) में सुलभ बनाकर उन्होंने भारतीय संस्कृतिक विकास में अतुलनीय योगदान किया है। उनकी कृतियों का मुख्य उपजीव्य हिन्दी-क्षेत्र का सामान्य भारतीय जन-जीवन और परम्परा-प्राप्त राम-कथा है। अपने समय और समाज में व्याप्त विसंगतियों और विडम्बनाओं से विचार और व्यवहार के धरातल पर सतत, सतर्क संघर्ष के आधार पर उन्होंने जीवन-व्यवस्था की नवीन संभावना प्रस्तुत की है। साधारण जन-जीवन में कष्टों और चुनौतियों से जूझते लोगों को उनके कवि-व्यक्तित्व में अपने सच्चे हितैषी की झलक मिलती आयी है, यही उनकी अद्वितीय लोकप्रियता का आधार है। उनकी रचनाएँ भारतीय पारम्परिक ज्ञान-धारा का विश्वकोष बनकर उपस्थित हैं। यही कारण है कि रामचरितमानस में की गयी -

''नानापुराण निगमागम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा भाषानिबद्धमतिमंजुलमातनोति।।''

की घोषणा, शब्दों के सच्चे अर्थ में उनकी रचनात्मकता की परिचायिका है। उन्होंने मध्यकाल में प्रचलित लगभग समस्त काव्य पद्धतियों में रचनात्मकता के मानक स्थापित किये हैं। वीरगाथा परम्परा में प्रयुक्त छप्पय-पद्धति; विद्यापति और सूरदास के काव्य में प्रयुक्त गीत-पद्धति; स्वयंभू के पऊमचरिउ, मुल्लादाउद के चंदायन और जायसी के पद्मावत में प्रयुक्त चौपाई-दोहे की पद्धति के साथ ही कवित्त-सवैया पद्धति; दोहे और बरवै की पद्धति में रचित उनकी अमूल्य रचनाएँ विगत लगभग पाँच सौ वर्षों से हिन्दी जन-मानस को रूपाकार और चेतना देती आयी हैं। भारतीय काव्य-परम्परा में प्रयुक्त छन्दों और अलंकारों पर उनका अधिकार अप्रतिम है। छन्दों में दोहा, चौपाई, सोरठा, सवैया और बरवै तथा अलंकारों में रूपक उन्हें विशेष रूप से प्रिय हैं।

हिन्दी साहित्य की परम्परा में तुलसीदास के इस महत्वपूर्ण अवदान को ध्यान में रखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपना सुचिंतित निष्कर्ष दिया है -''हिन्दी काव्य की सब प्रकार की रचनाशैली के ऊपर गोस्वामी जी ने अपना ऊँचा आसन प्रतिष्ठित किया है। यह उच्चता और किसी को प्राप्त नहीं। ...इनकी वाणी की पहुँच मनुष्य के सारे भावों और व्यवहारों तक है। एक ओर तो वह व्यक्तिगत साधना के मार्ग में विरागपूर्ण शुद्ध भगवद्भक्ति का उपदेश करती है, दूसरी ओर लोकपक्ष में आकर पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्यों का सौन्दर्य दिखाकर मुग्ध करती है। व्यक्तिगत साधना के साथ ही साथ लोकधर्म की अत्यंत उज्ज्वल छटा उसमें वर्तमान है।''

8.3.3 प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त परिचय

तुलसीदास का रचना-संसार मात्रात्मकता और गुणात्मकता दोनों ही दृष्टियों से अत्यंत समृद्ध और विस्तृत है। इनकी लिखी रचनाओं में निम्नलिखित बारह ग्रन्थों की प्रामाणिकता असंदिग्ध है - दोहावली, कवितावली, गीतावली, रामचरितमानस, रामाज्ञाप्रश्न, विनयपत्रिका, रामललानहुछ, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, बरवैरामायण, वैराग्यसंदीपनी और श्रीकृष्ण गीतावली। इनमें रामचरितमानस, कवितावली और विनयपत्रिका से परिचित हुए बिना तुलसीदास की रचनात्मक क्षमता का पता नहीं पाया जा सकता। अतः प्रस्तुत पाठ्यक्रम के अन्तर्गत चयनित अंश इन्हीं तीन रचनाओं से गृहीत हैं। 'रामचरितमानस' हिन्दी साहित्य के भक्ति काल की अमूल्य निधि है। हिन्दी भाषा एवं साहित्य की सम्पूर्ण रचना-परम्परा की चरम उपलब्धियों की गणना में यह कनिष्ठिकाधीष्ठित है। संवत् 1631(1574ई.)में तुलसीदास ने अयोध्या में इसे लिखना आरंभ किया और इसके कुछ अंशों की रचना उन्होंने काशी में की। यह दोहा-चौपाई की प्रबंध पद्धति में रचित है। प्रसंगानुकूल कतिपय अन्य छंदों का प्रयोग भी किया गया है। इसकी भाषा अवधी है। यह सम्पूर्ण प्रबन्ध सात काण्डों में विभक्त है। राम-कथा इस महाकाव्य का उपजीव्य है। राम-कथा के विविध प्रसंगों के वर्णन और चित्रण में महाकवि तुलसीदास की तन्मयता अप्रतिम है। अपनी इस महान सृजनात्मक चेष्टा में उन्होंने भारतीय समाज और संस्कृति के लगभग समस्त आसंगों को समसामायिक अपेक्षा के अनुरूप अतुलनीय अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने कथा के पारम्परिक स्वरूप को यथावत् न रखकर उसमें युगानुकूल अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। आचार्य शुक्ल ने रामचरितमानस का परिचय देते हुए इसकी असंख्य विशिष्टताओं को निम्नलिखित उपशीर्षकों में बाँधने की चेष्टा की है -

1. कथाकाव्य के सब अवयवों का उचित समीकरण
2. मार्मिक स्थलों की पहचान
3. प्रसंगानुकूल भाषा
4. श्रृंगार की शिष्ट मर्यादा के भीतर बहुत ही व्यंजक वर्णन

किसी परम्परित कथा-सूत्र के आधार पर रचनात्मक सूत्र के विस्तार का प्रयास सृजन-क्षेत्र की बेहद कठिन चुनौती है। यह चुनौती तब और कठिन हो जाती है जब कथा का यह परम्परित सूत्र धार्मिक-सांस्कृतिक मूल्य-विधान का वाहक और लोक-स्मृति का अविच्छेद्य अंग बन चुका हो। तुलसीदास ने अपनी अद्वितीय कवि-प्रतिभा और एकनिष्ठ समर्पण के बल से अर्जित तन्मयता के

बल पर इस चुनौती का सामना किया है। मानव की मूल मनोवृत्तियों में निहित कमजोरियों जैसे काम, क्रोध, मोह, मद और लोभ आदि से संघर्ष करते हुए इनसे ऊपर उठने का प्रक्रम रामचरितमानस को सार्वदेशिक और सार्वकालिक महत्व देता है। विविध प्रसंगों के चित्रण में तुलसीदास ने बहुविध पात्रों के पारस्परिक व्यवहारों के माध्यम से जीवन में निहित श्रेष्ठता के छद्म और स्वभावगत जड़ता के ऐसे दृश्य सृजित किये हैं, जिन्हें देख कर पाठक का समग्र व्यक्तित्वांतरण सम्भव है। उनकी पंक्तियाँ वास्तविकता का एक ऐसा आईना हैं जो व्यक्ति और समाज के स्वभाव में निहित दोषों को बेहद धैर्य और संयम से दिखाती हुई उसे सुधरने-संवरने का रास्ता बताती हैं। वे इस समूची प्रक्रिया में इतनी नम्रता और आत्मीयता बरतते हैं कि पाठक को पता भी नहीं लगता कि कब वह परिष्कार की राह पर चल पड़ा है। यह महज संयोग नहीं कि तमाम विरोधों के बावजूद रामचरितमानस की लोकप्रियता और प्रतिष्ठा हिन्दी-समाज के विविध वर्गों के बीच आज भी बनी हुई है।

'कवितावली' तुलसीदास की विलक्षण रचनात्मक प्रतिभा और उनके युग-बोध का पुष्ट प्रमाण है। ब्रजभाषा में लिखी गयी मुक्तक शैली की यह रचना कवित्त-सवैया पद्धति का उत्कृष्ट उदाहरण है। सम्पूर्ण रचना सात खण्डों में विभाजित है। इसके विभिन्न प्रसंगों में वर्णन की जगह चित्रण की प्रधानता है। महाकवि तुलसी के अचूक बिम्ब-विधान को इसके छन्दों में सर्वत्र देखा जा सकता है। इन बिम्बों की गत्यात्मक सजीवता इनकी खास विशेषता है। राम कथा से सम्बद्ध छन्दों में लयात्मकता और शब्दों पर महाकवि के अप्रतिम अधिकार का परिचय मिलता है। कवितावली के उत्तरकाण्ड में कवि ने समसामयिक समाज और अपने जीवन के बारे में जो तथ्यात्मक चित्रण किया है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण अन्तःसाक्ष्य इस रचना के अद्वितीय महत्व का कारण है। इन प्रसंगों को जाने बिना तुलसी की कवि-दृष्टि का परिचय नहीं पाया जा सकता है।

'विनय पत्रिका' तुलसीदास की कवि-प्रतिभा का एक और उत्तम उदाहरण है। इसकी रचना प्रगीत पद्धति पर आधारित है। यह ब्रजभाषा में रचित आत्मनिवेदनपरक गीतों का संग्रह है। इसके नाम से प्रकट है कि इसमें तुलसी दास ने अपने मन के नितान्त निजी भावों को प्रभु राम के प्रति पत्र के माध्यम से निवेदित किया है। यह करुण निवेदन अपनी नितान्त आत्मपरकता में सार्वजनीन हित कामना से प्रेरित है; यही इसकी विलक्षणता का आधार है। इस कृति की रचनात्मक प्रौढ़ता इसे बेहद महत्वपूर्ण बनाती है। प्रबंधात्मक शिल्प की कतिपय अनिवार्य बाध्यताओं से मुक्त कवि-चेतना ने यहाँ भावों की स्वाधीन अभिव्यक्ति का सहज सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है। ये गीत शास्त्रीय रागों में निबद्ध हैं। विनय पत्रिका के पदों का नाद-सौन्दर्य महाकवि की अन्य रचनाओं की अपेक्षा विशिष्ट है। हिन्दी साहित्य परम्परा के आत्मनिवेदनपरक प्रगीतों में इसे अत्यन्त उत्कृष्ट माना जाता है। इसमें संकलित अधिसंख्य पदों में गायक और श्रोता को भाव-विभोर कर देने की अचूक क्षमता है।

8.4 सगुण भक्ति धारा की रामभक्ति शाखा

8.4.1 भक्ति आंदोलन का परिप्रेक्ष्य (समय और समाज)

भक्ति आंदोलन भारतीय सांस्कृतिक विचार-व्यवहार की परम्परा के विकास की अत्यन्त महत्वपूर्ण कड़ी है। अपने प्रसार और प्रभाव में यह आंदोलन सम्पूर्ण भारत के अधिकांश भू-भागों और तत्कालीन भारतीय समाज के सभी स्तरों तक व्याप्त देखा जा सकता है। भक्ति आन्दोलन की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि पर शोध करने वाले इतिहासकारों में प्रमुख इरफान हबीब और रामशरण शर्मा ने इसे तत्कालीन उत्तर भारतीय समाज में उत्पादन के बदलते स्वरूप और निम्न वर्गों के लोगों के लिए नये शासकों द्वारा स्थापित व्यवस्था से उत्पन्न नवीन अवसरों का स्वाभाविक परिणाम माना है। दिल्ली सल्तनत की जड़ें जमने के बाद इस क्षेत्र में पारम्परिक आर्थिक सम्बन्धों के समीकरण बदलने लगे। अतः समाज के दबे हुए तबकों ने अवसर का लाभ लेकर अपनी मेहनत और कौशल के बल से उन्नति की। इस नवोन्नत वर्ग में सामाजिक प्रतिष्ठा पाने की आकांक्षा को भक्ति के दर्शन का वैचारिक आधार मिला। सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में इसी तरह के परिवर्तन दक्षिण भारत में बहुत पहले हो चुके थे। अतः दक्षिण में जन्मी भक्ति की धारा अनुकूल अवसर पाकर क्रमशः उत्तर भारत में प्रसरित हुई। इस प्रसंग पर विचार करने वाले अधिसंख्य विद्वानों ने यह देखा और दिखाया है, कि भक्ति-आन्दोलन से पहले भारतीय समाज में व्याप्त जड़ता इसे एक ऐसे मोड़ पर ले आयी थी जहाँ विचार और व्यवहार के धरातल पर सर्वातिशायी और दूरगामी परिवर्तन बेहद जरुरी हो गया था। भक्ति-आन्दोलन ने इस महत्वपूर्ण सांस्कृतिक आवश्यकता की पूर्ति की। अपने उद्देश्यों में पूर्णतः सफल न होने पर भी इसने भारतीय जीवन और विचार-पद्धति को बहुत गहराई तक प्रभावित किया।

8.4.2 राम-भक्ति शाखा का दार्शनिक आधार (विशिष्टाद्वैत मत)

भक्ति आन्दोलन को दार्शनिक आधार देने वाली जिन चार महत्वपूर्ण दार्शनिक प्रणालियों की चर्चा की जाती है, उनमें से एक का नाम विशिष्टाद्वैत मत है। भक्ति साहित्य की राममार्गी शाखा के दार्शनिक अधार मुख्यतः इसी विशिष्टाद्वैत में निहित हैं। इस मत के प्रवर्तक रामानुजाचार्य कहे जाते हैं। रामानुजाचार्य ने श्री सम्प्रदाय की स्थापना की जिसमें विष्णु या नारायण की उपासना प्रचलित है। रामानुजाचार्य द्वारा प्रतिपादित विशिष्टाद्वैत मत शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त से इस अर्थ में विशिष्ट है कि वे दृश्य जगत को शंकर की तरह भ्रम मात्र नहीं मानते। उन्होंने ब्रह्म, जीवात्माओं और भौतिक जगत को यथार्थ और परस्पर भिन्न माना है। विशिष्टाद्वैत का मतलब एक अपरिमित ब्रह्म का स्वयं अपने स्पष्ट भिन्न और परिमित (विशिष्ट) अंगों से एकाकार होना है। शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैत मत में ब्रह्म को किसी विशिष्ट गुण से रहित अथवा निर्गुण रूप में उपस्थापित किया गया है। जब कि रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत मत ब्रह्म को सर्वग्य, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी मानता है। साथ ही उसमें ज्ञान, शक्ति, कल्याण ,दीप्ति और दया आदि गुणों की स्थिति भी स्वीकार करता है। शंकर के मत के विपरीत रामानुज ब्रह्म के साथ जगत की सत्ता को भी यथार्थ मानते हैं। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर के.

दामोदरन ने लिखा है कि -''रामानुज ने भी सामन्तवाद की परिधि के भीतर ही अपने सिद्धान्तों का विकास किया। तो भी जाति-प्रथा के प्रति उनका दृष्टिकोण उतना अनमनीय और रूढ़ नहीं था, जितना शंकराचार्य का। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि भक्ति सभी जाति-भेदों से ऊपर है, और यह ईश्वर की आराधना में सब के लिए समानता के समर्थक हैं।'' वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रसंग में विशिष्टाद्वैत में निहित नमनीयता का कारण यह है कि रामानुज की परंपरा में वैदिक परम्परा तथा द्रविड़ परम्परा का सम्मिश्रण है। द्रविड़ परम्परा में बारह भक्त हुए हैं जिन्हें आलवार कहा जाता है। इन भक्तों में शठकोप सबसे प्रसिद्ध हैं जो शूद्र थे। इन आलवार संतों की प्रसिद्ध रचनाओं का संग्रह तमिलवेद के नाम से प्रसिद्ध है और इसे भी भक्ति-परंपरा में मूल वेदों की तरह ही प्रतिष्ठित माना गया है। रामानुज की शिक्षाओं ने भक्ति-आन्दोलन को सबल दार्शनिक आधार दिया; जिसे लेकर स्वामी रामानन्द ने राम भक्ति परम्परा की शुरुआत और प्रसार किया। भक्ति को जन-मन तक पहुँचाने के लिए रामानन्द जी ने वह प्रसिद्ध सूत्र दिया जो भक्ति की शक्ति को सर्वातिशायी बनाता है -'जात-पाँत पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई'। रामानन्द ने भक्ति का द्वार समाज के हर वर्ग के लिए खोल दिया। यह मध्यकालीन सामाजिक जड़त्व के खिलाफ परिवर्तन की गम्भीर उद्घोषणा थी। रामानन्द के बारह शिष्य प्रसिद्ध हैं जिनमें अधिसंख्य शूद्र हैं। स्वामी रामानन्द की शिष्य परम्परा में आगे तुलसीदास का आगमन हुआ। तुलसीदास की रचनाओं से प्राप्त अन्तःसाक्ष्य भी समाज में व्याप्त जातिवादी जड़ता के विरुद्ध उनके क्रोध और वितृष्णा का प्रबल प्रमाण देते हैं।

8.4.3 राम-भक्ति शाखा का स्वरूप

राम-भक्ति शाखा की स्थापना और उसके प्रभाव-क्षेत्र के अद्भुत विस्तार का श्रेय स्वामी रामानन्द को जाता है। राम-भक्ति का प्रचलन सगुण और निर्गुण दोनों भक्ति-धाराओं में है। रामानन्द इन दोनों परम्पराओं से जुड़े भक्तों के गुरु माने जाते हैं। रामानुज द्वारा प्रस्तावित प्रचारित भक्ति मत को वास्तविक अर्थ में सामान्य जन-सुलभ बनाने का काम स्वामी रामानंद ने किया। इनके दो ग्रंथ प्रामाणिक हैं - वैष्णव मताब्ज भास्कर और श्री रामार्चन पद्धति। पन्द्रहवीं सदी में इन्होंने उत्तर भारत में राम-भक्ति का प्रचार-प्रसार किया। स्वामी रामानंद और इनके शिष्यों द्वारा निर्मित राम-भक्ति की इसी भाव-धारा से तुलसीदास ने प्रेरणा ग्रहण की। तुलसीदास की अतुलनीय सृजनात्मक प्रतिभा ने राम-भक्ति धारा की रचनात्मक सम्भावना को इसके सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया। इसकी स्वाभाविक परिणति यह हुई कि परवर्ती कवियों की रचनात्मक अभिव्यक्तियाँ इनके सामने टिक नहीं सकीं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस परम्परा के जिन रचनाकारों को महत्वपूर्ण माना है उनमें स्वामी अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान और हृदयराम उल्लेखनीय हैं। नाभादास की रचना 'भक्तमाल' मध्यकाल के भक्त कवियों के बारे में सूचनात्मक संग्रह है।

अभ्यास प्रश्न 1

(क) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए –

1. तुलसीदास का जन्म.....वर्ष में हुआ है।

2. तुलसीदास की मृत्यु.....वर्ष में हुई।
3. रामचरितमानस की भाषा.....है।
4. विनय पत्रिका की भाषा.....है।

(ख) सत्य/असत्य बताइए –

1. तुलसीदास रामभक्ति शाखा के कवि है।
2. तुलसीदास निर्गुण काव्यधारा के कवि है।
3. तुलसीदास की 12 प्रमाणिक रचनाएँ मानी जाती है।
4. रामललानहछू तुलसीदास की रचना नहीं है।

8.5 चयनित पाठ

8.5.1 रामचरित मानस

(क) बालकाण्ड से चयनित अंश

चौपाई:- गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन।।
तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनउँ राम चरित भव मोचन।।१।।

अर्थ:- गुरु पद-रज (पैरों की धूल) कोमल और सुन्दर नयनामृत अंजन है। यह आँखों के दोष मिटाने वाला है। इस अंजन से अपने विवेक की आँखों को निर्मल करके मैं संसार के दुखों से मुक्ति देने वाले राम-चरित का वर्णन करता हूँ। भक्ति के प्रसंग में गुरु का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

टिप्पणी - प्रस्तुत चौपाई में महाकवि तुलसी ने गुरु की अगाध महिमा के प्रति सम्मान प्रकट किया है। जीवन के विराट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्वयं क्षमतावान होना ही यथेष्ट नहीं होता। आँखों के होने मात्र से दृश्य की वास्तविकता प्रकट नहीं हो जाती। इसके लिए विवेक सम्पन्न दृष्टि की विमलता बहुत आवश्यक है। इस चौपाई में महाकवि तुलसी ने देखने की वस्तविक प्रक्रिया और उसमें गुरु की महती भूमिका को स्पष्ट किया है।

चौपाई:- बंदउँ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना।।
सुजन समाज सकल गुन खानी। करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी।।२।।

अर्थ:- पहले इस धरती के देवता, उन ब्राह्मणों के चरणों की वन्दना करता हूँ जो अज्ञान जनित समस्त भ्रमों का निवारण करने वाले हैं। मैं समस्त गुणों की खान संत-समाज को प्रेमपूर्वक अपनी प्रणति निवेदित करता हूँ।

टिप्पणी -इस चौपाई में महाकवि तुलसीदास ने संत-समाज के महत्वपूर्ण सामाजिक प्रकार्य को सामने रखते हुए उसके प्रति अपनी अपरिमित श्रद्धा व्यक्त की है।

चौपाई:- साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय जासू।।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा।।३।।

अर्थ:- सज्जनों का चरित कपास के चरित की तरह शुभ है, जिसका फल नीरस, विशद और गुणमय होता है। जो दुःख सहकर भी दूसरों के दोषों को ढंकते हैं और इस प्रवृति के कारण जिन्हें दुनिया में यश मिला है, वन्दनीय हैं।

टिप्पणी -ध्यान देने योग्य है कि सज्जनों की चरित्रिक विशेषता बताते हुए तुलसीदास को कपास के उस फल की याद आती है जो अत्यन्त शुष्क, स्वादहीन और रुई के तंतुओं से भरा होता है। चुने जाने से लेकर तुनने, धुनने, कातने, बुनने और सीने-पीरोने की लम्बी और पीड़ा दायक प्रक्रिया से गुजरते हुए भी वह सुई के द्वारा बने छेद को भरकर कपड़े का स्वरूप सही और सुन्दर बनाये रखने में अपनी अद्वितीय भूमिका अदा करता है। ठीक उसी तरह सज्जन व्यक्ति भी जीवनगत अनेक कष्टों से गुजरते हुए दूसरे के दोषों को समाज में प्रकट होने से रोकते हैं। यही कारण है कि सद्गुणों से सम्पूरित सज्जनों का यह व्यक्तित्व वन्दनीय और यशस्वी है।

चौपाई:- मुद मंगलमय संत समाजू। जो जगजंगम तीरथराजू।।
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा।।४।।

अर्थ:- संत-समाज आनन्द और कल्याण से भरा है। यह इस जगत में चलता-फिरता तीर्थराज (प्रयाग) है। इस संत-समाज रूपी तीर्थराज प्रयाग में राम भक्ति की गंगाधारा बहती है और इस कथा में निहित ब्रह्म विचार का प्रचार सरस्वती की धारा है।

चौपाई:- बिधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रबिनंदनि बरनी।।
हरि हर कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी ।।५।।

अर्थ:- इस प्रयाग की यमुना कलयुग के मल का हरण करने वाली कर्मों के विधि-निषेध की कथा है। इसके साथ भगवान विष्णु और शंकर जी की कथाएँ त्रिवेणी के रूप में न्यस्त हैं, जो सुनते ही सब प्रकार का आनन्द और कल्याण प्रदान करनेवाली हैं।

चौपाई:- बटु बिस्वास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकरमा ।।
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा।।६।।

अर्थ:- निज धर्म में अटल विश्वास इस तीर्थराज का अक्षयवट है। सुकर्म ही इस तीर्थराज का समाज (परिकर) है। यह तीर्थराज सबों के लिए सब देशों और कालों में सुलभ है, और इसका आदर सहित सेवन, क्लेषों का शमन करता है।

चौपाई - अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ।।७।।

अर्थ- यह तीर्थराज अलौकिक और अकथनीय है। यह तत्काल फल देता है और इसका प्रभाव बिल्कुल प्रकट है।

दोहा:- सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।

लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग।।२।।

अर्थ:- जो इस संत-समाज रूपी तीर्थराज का प्रभाव प्रसन्नता पूर्वक सुनते और समझते हैं तथा प्रेम पूर्वक राम भक्ति धारा में गोते लगाते हैं, वे इस शरीर के रहते ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अर्थात पुरुषार्थ चतुष्टय को प्राप्त कर लेते हैं।

(ख) अयोध्याकाण्ड से चयनित अंश

छंद:- श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की।।
जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी।।

अर्थ:- प्रस्तुत पंक्तियों में महर्षि वाल्मिकि द्वारा श्रीराम की वन्दना का प्रसंग प्रस्तुत किया गया है। वे कहते हैं - हे राम! आप वेद की रक्षा करने वाले जगत्पति हैं और जानकी आपकी माया हैं, जो आपके निर्देश पाकर जगत का सृजन, पालन और संहार करती हैं। हजार मस्तकों वाले, सर्पों के स्वामी और पृथ्वी को अपने फन पर धारण करने वाले समस्त चराचर के स्वामी शेषनाग ही लक्ष्मण हैं। देवताओं के हित के लिए आप राजा का शरीर धारण कर दुष्ट राक्षसों की सेना का नाश करने चले हैं।

सोरठा:-राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह।।१२६।।

अर्थ:- हे राम! आपका स्वरूप, वाणी और बुद्धि की शक्ति से परे है। यह अव्यक्त, अकथनीय और अपार है। वेद निरन्तर नेति-नेति कह कर इसका वर्णन करते हैं।

चौपाई:- जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे।।
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हार। औरु तुम्हहि को जाननिहारा।।१।।

अर्थ:- यह जगत दृश्य है और तुम उसको देखने वाले हो। ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को नचाने वाले आप ही हो। जब वे भी तुम्हारे मर्म को नहीं जानते तो और कौन जान सकता है।

चौपाई:- सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन।।२।।

अर्थ:- केवल वही आपको जानता है जिसे आप बता देते हो और आपको जानते ही वह आपका ही होकर रह जाता है। भक्त के हृदय को शीतल करने वाले आपकी कृपा से ही आपका भक्त आपको जान पाता है।

चौपाई:- चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी।।

नर तनु धरेहु संत सुर काजा । कहहु करहु जस प्राकृत राजा।।३।।

अर्थ:- आपकी देह चिदानन्दमय है। उत्पत्ति, नाश, वृद्धि और क्षय जैसे विकारों से यह शरीर रहित है। इस रहस्य को केवल अधिकारी ही जानते हैं। आपने देवताओं और संतों का कार्य के लिए मानव शरीर धारण किया है और प्रकृति से निर्मित देह वाले साधारण राजाओं की तरह वचन और व्यवहार अपनाया है।

चौपाई:- राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे।।
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा।।४।।

अर्थ:- हे राम! आपके चरित्र को देख और सुन कर मूर्ख लोग तो मोह में पर जाते हैं और ज्ञानी जन सुखी हुआ करते हैं। आप जो भी कुछ करते कहते हैं, वह सब सत्य है, क्योंकि स्वांग जैसा भरे, नाच भी वैसा ही होना चाहिए। इस समय मनुष्य रूप में होने के कारण आपका मानवोचित व्यवहार करना ही ठीक है।

दोहा:- पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ।।१२७।।

अर्थ:- मुझसे आपने पूछा कि कहाँ रहूँ, किन्तु मुझे आपसे पूछते हुए संकोच होता है कि आप जहाँ न हो वह स्थान हमें बता दीजिए। तब मैं आपके रहने के लिए स्थान बताऊँ।

8.5.2 कवितावली

(क) बालकाण्ड से चयनित अंश

सवैया:- अवधेस के द्वारें सकारें गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच बिमोचन को ठगि-सी रही, जे न ठगे धिक-से।।
तुलसी मन-रंजन रंजित-अंजन नैन सुखंजन - जातक - से।
सजनी ससि में समसील उभै नवलील सरोरुह - से बिकसे।।

अर्थ:- (अयोध्या में बसने वाली महिलाओं में कोई एक अपनी सखि से कहती है) मैं प्रातःकाल अयोध्यापति दशरथ के द्वार पर गई। महाराज पुत्र को गोद में लेकर बाहर आये। मैं उस चिन्ताओं से मुक्त करने वाले बालक को देखकर ठगी-सी रह गई। उसे देख कर जो मोहित न हो उन्हें धिक्कार है। उस बालक के अंजन से संवारे हुए नैन खंजन पक्षी के सुन्दर बच्चे की आँखों की तरह थे। हे सखि! उन्हें देख कर ऐसा लगता था मानो चन्द्रमा में दो एक जैसे सद्यःप्रस्फुटित (ताजा) नीलकमल खिले हों। इन पंक्तियों की विशेषता यह है कि इनमें दृश्य और उसके प्रभाव के समेकित सायुज्य को अभिव्यक्ति दी गई है।

(ख) अयोध्याकाण्ड से चयनित अंश

सवैया:-साँवरे-गोरे सलोने सुभायँ, मनोहरताँ जिति मैनु लियो है।
बान-कमान, निषंग कसें, सिर सोहैं जटा, मुनिबेषु कियो है।।
संग लिएँ बिधुबैनी बधू, रति को जेहि रंचक रूपु दियो है।

पायन तौ पनहीं न, पयादेंहि क्यों चलिहैं, सकुचात हियो है।।

अर्थ:- स्वाभाविक रूप से सुन्दर, सांवले और गोरे इन दोनों बालकों ने मनोहरता में कामदेव को भी जीत लिया है। ये धनुष-बाण लिये और तरकस कसे हुए हैं, इनके सिर पर जटाएँ शोभित हैं और इन्होंने मुनियों का-सा वेष बना रखा है। ये चन्द्रमुखी दुल्हन को अपने साथ लिये हैं, जिसने रति को अपना थोड़ा-सा रूप दे रखा है। (इन्हें देखकर) हृदय सकुचाता है कि इनके पैरों में जूते भी नहीं हैं, ये पैदल कैसे चलेंगे ?

सवैया:-रानी मैं जानी अयानी महा, पबि-पाहनहू तें कठोर हियो है।
राजहुँ काजु अकाजु न जान्यो, कह्यो तियको जेहिं कान कियो है।।
ऐसी मनोहर मूरति ए, बिछुरें कैसे प्रीतम लोगु जियो है।
आँखिन में सखि! राखिबे जोगु, इन्हैं किमि कै बनबासु दियो है।।

अर्थ:- मैंने जान लिया कि रानी महामूर्ख है, उसका हृदय वज्र और पत्थर से भी कठोर है। राजा को भी कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान नहीं रहा, जिन्होंने स्त्री के कहे हुए पर कान दिया। अरे! इनकी मूर्ति ऐसी मनोहारिणी है, भला इन लोगों का वियोग होने पर इनके प्रिय लोग कैसे जीते होंगे ? हे सखि! ये तो आँखों में रखने योग्य हैं, इन्हें वनवास क्यों दिया गया है ?

सवैया:-सीस जटा, उर-बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछी-सी भौंहैं।
तून सरासन-बान धरें तुलसी बन-मारग में सुठि सोहैं।।
सादर बारहिं बार सुभायँ चितै तुम्ह त्यों हमरो मनु मोहैं।
पूँछत ग्रामबधू सिय सों, कहौ, साँवरे-से सखि! रावरे को हैं।।

अर्थ:- सीता से गाँव की स्त्रियाँ पूछती हैं - 'जिनके सिरपर जटाएँ हैं, वक्षःस्थल और भुजाएँ विशाल हैं, नेत्र अरुणवर्ण हैं, भौंहें तिरछी हैं, जो धनुष-बाण और तरकस धारण किये वन के मार्ग में बड़े भले जान पड़ते हैं। स्वभाव से ही आदरपूर्वक बार-बार तुम्हारी ओर देखकर जो हमारा मन मोह लेते हैं, बताओ तो हे सखि! वे साँवले-से कुँवर आपके कौन होते हैं ?।।

सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने सयानी हैं जानकीं जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू, मुसुकाइ चली।।
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचनलाहु अलीं।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदैं बिगसीं मनो मंजुल कंजकलीं।।

गाँव की स्त्रियों के अमृत-से सने हुए सुन्दर वचनों को सुनकर जानकी जान गयीं कि ये सब बड़ी चतुरा हैं। अतः नेत्रों को तिरछा कर उन्हें सैन से ही समझाकर मुसकराकर चल दीं। महाकवि तुलसी कहते हैं कि उस समय लोचन के लाभ की तरह राम के रूप् को देखती हुई वे सब सखियाँ ऐसी सुशोभित हो रही हैं, मानो सूर्य के उदय से प्रेमरूपी तालाब में कमलों की मनोहर कलियाँ खिल गयी हैं।

8.5.3 विनयपत्रिका (चयनित अंश एवं अर्थ) –

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं ।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं।।
पायेउँ नाम चारु चिंतामनि, उर कर तें न खसैहौं।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं।।
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन मधुकर पनकै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं।।

अर्थ:- अब तक नष्ट हुआ परन्तु अब नष्ट नहीं होऊँगा। श्रीराम की कृपा से संसार रूपी रात्री बीत चुकी है। मैं अब जाग गया हूँ। अब फिर से माया का बिछौना नहीं बिछाऊँगा। मुझे राम-नाम रूपी सुन्दर चिन्तामणी प्राप्त हो गई है। अब इसे अपने हृदय रूपी हाथों से कभी गिरने नहीं दूँगा। श्रीराम के पवित्र और सुन्दर श्याम रूप की कसौटी पर मैं अपने हृदय रूपी सोने को कसूँगा। दूसरे के वश में जान कर मेरी इन्द्रियों ने मेरी बहुत हँसी उड़ायी है। अब अपने वश में होकर मैं फिर से हँसी का पात्र नहीं बनूँगा। यह मेरा प्रण (प्रतिज्ञा) है कि मैं अपने मन रूपी भौंरे को रघुपति के चरण कमलों में लगाये रखूँगा।

केसव! कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना बिचित्र हरि! समुझि मनहिं मन रहिये।
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे ।
धोये मिटइ न मरइ भीति, दुख पाइय एहि तनु हेरे ।।
रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ।।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोउ, जुगल प्रबल कोउ मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै।।

अर्थ:- हे केशव क्या कहूँ, कुछ कहा नहीं जाता, हे हरि, आपकी इस रचना की विचित्रता को देखकर मन-ही-मन समझकर चुप रहना ही उचित है। इस संसार रूपी चित्र को अव्यक्त चित्रकार (परमात्मा) ने शून्य (माया) की दीवार पर, बिना रंग के (मात्र संकल्प से) बना दिया है। धोने से यह मिटता भी नहीं और इसके नष्ट हो जाने का भय भी नहीं जाता। इसे देखकर दुःख ही होता है। मृग-मरीचिका में जो जल दिखाई देता है, उसमें एक भयानक मगर रहता है। उस मगर का मुँह नहीं है तो भी जल की लालसा में वहाँ जाने वालों को वह खा लेता है। ठीक उसी तरह यह संसार, सूर्य की किरणों में जल के समान भ्रम पूर्ण है। इस भ्रमात्मक संसार में सुख के पीछे दौड़ने वालों को भी बिना मुख का मगर अर्थात् निराकार काल खा जाता है। इस संसार को कोई सत्य कहता है, कोई मिथ्या कहता है और कोई सत्य और मिथ्या के मेल से बना हुआ मानता है। तुलसीदास का मत यह है कि जो इन तीनों भ्रमों से मुक्त हो जाता है वही अपने असली स्वरूप को पहचानता है।

मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लिये सुनहु करुनामय, मैं जग जनमि-जनमि दुखरोयो ।

सीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहि रहत दूरि जनु खोयो।
बहु भाँतिन श्रम करत मोहबस, बृथहि मंदमति बारि बिलोयो ।।
करम-कीच जिय जानि, सानि चित, चाहत कुटिल मलहि मल धोयो।
तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि-फिरि बिकल अकास निचोयो।।
तुलसिदास प्रभु! कृपा करहु अब, मैं निज दोष कछू नहिं गोयो।
डासत ही गइ बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ! नींद भरि सोयो ।।

अर्थ:- मेरे इस मूर्ख मन ने मुझे बहुत छकाया (धोखा दिया) है। महाकवि तुलसी कहते हैं - हे करूणामय! सुनये, इसी के चलते मैं पुनर्वार जगत में जन्म लेकर दुःख से रोता फिरा। शीतल और मधुर अमृत सरीखे सहज सुख के अत्यन्त निकट होने पर भी मैंने उसे बहुत दूर मानकर खो दिया। मोह में भ्रमित होकर मुझ मूर्ख ने पानी मथकर घी निकालना चाहा। यद्यपि मुझे यह पता था कि कर्म कीच की तरह है फिर भी सब कुछ जानते हुए भी मैंने मल से ही मल को धोना चाहा। मैं ऐसा मूर्ख हूँ कि प्यासा होने पर भी गंगा की धारा छोड़कर आकाश निचोड़ता फिरता हूँ। सच्चे सुख की प्राप्ति के लिए दुःख रूपी विषयों में भटकता हूँ। हे स्वामी अब आप मुझ पर कृपा करें। मैंने अपना एक भी दोष आप से नहीं छिपाया है। सच कहूँ तो बिस्तर बिछाते-बिछाते ही सारी रात (जीवन) बीत गई। हे स्वामी! कभी नींद भर सो नहीं पाया।

8.6 सारांश

एम0ए0एच0एल-102 की 10वीं इकाई का आप अध्ययन कर चुके हैं। इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आपने जाना कि –

- तुलसीदास हिंदी भक्तिकाल सगुण धारा के रामभक्ति शाखा के श्रेष्ठ कवि है।
- तुलसीदास रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत मत को मानने वाले कवि है।
- तुलसीदास की 12 प्रमाणिक रचनाएँ हैं जिनमें रामचरित मानस एंव विनय पत्रिका अपनी काव्यात्मक औदात्य की दृष्टि से श्रेष्ठ रचनाएँ है।
- तुलसीदास का काव्य वर्ण्य–वस्तु एवं शिल्प संरचना की दृष्टि से हिंदी का श्रेष्ठ काव्य है।

8.7 शब्दावली

भक्ति - ईश्वर विषयक रति
सगुण - परम सत्ता का वह स्वरूप जो गुण सहित हो
निर्गुण - परम सत्ता का वह स्वरूप जो गुणों से परे हो
ब्रह्म - परम सत्ता
माया - ब्रह्म की शक्ति का वह अंश जो उसकी प्रेरणा से समस्त सांसारिक सत्ताओं का संचालन और नियमन करती है।

जीव - प्राणियों में मौजूद चेतन तत्व, परम सत्ता से वियुक्त उसका अंश

अद्वैत - आदि शंकराचार्य द्वारा प्रस्थापित दार्शनिक सिद्धान्त जिसमें ब्रह्म और जीव को दूसरा (अपर) नहीं कहा गया है और जगत को मिथ्या बताया गया है।

विशिष्टाद्वैत - रामानुजाचार्य द्वारा प्रस्थापित दार्शनिक सिद्धान्त।

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

(क) 1- 1532
2- 1623
3- अवधी
4- ब्रजभाषा

(ख) 1- सत्य
2- असत्य
3- सत्य
4- असत्य

8.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. नोट्स ऑन तुलसीदास: जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन (1833 ई.)
2. श्री गोस्वामी तुलसीदास जी: शिवनन्दन सहाय (1916 ई.)
3. गोस्वामी तुलसीदास: श्याम सुन्दर दास (1913)
4. हिन्दी साहित्य इतिहास: रामचन्द्र शुक्ल (1923)
5. राम कथा का विकास: डा. कामिल बुल्के (1950)
6. तुलसी और उनका काल: रामनरेश त्रिपाठी(1951
7. तुलसी: संपादक - उदयभानु सिंह (1976)
8. लोकवादी तुलसी दास: विश्वनाथ त्रिपाठी (1974)
9. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना: रामविलास शर्मा (1993)
10. भारतीय दर्शन की रुपरेखा: एम. हरियन्ना (1965)
11. भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण: संगमलाल पाण्डेय (1976)
12. भारतीय चिन्तन परम्परा: के दामोदरन (1979)
13. अनभै साँचा: मैनेजर पाण्डेय (2002)

8.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रस्तुत पाठ के आधार पर तुलसी के कवि-व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय दें।

2. तुलसीदास की रचनाओं के महत्व पर प्रकाश डालें।
3. तुलसी की काव्य-भाषा की विशेषताओं का निरूपण करें।
4. तुलसी की पहुँच मानव-मन के सभी भावों तक है। इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ? तुलसी-साहित्य की अद्वितीय लोकप्रियता के कारणों को स्पष्ट करें।
5. विशिष्टाद्वैत मत की मूल स्थापनाओं पर प्रकाश डालें।
6. निम्नलिखित काव्यांशों की सप्रसंग व्याख्या करें -

क. सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन।।

ख. सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने सयानी हैं जानकीं जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू, मुसुकाइ चली।।
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचनलाहु अलीं।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदैं बिगसीं मनो मंजुल कंजकलीं।।

ग. मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लिये सुनहु करुनामय, मैं जग जनमि-जनमि दुखरोयो ।
सीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहि रहत दूरि जनु खोयो ।
बहु भाँतिन श्रम करत मोहबस, बृथहि मंदमति बारि बिलोयो ।।
करम-कीच जिय जानि, सानि चित, चाहत कुटिल मलहि मल धोयो ।
तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि-फिरि बिकल अकास निचोयो।।
तुलसिदास प्रभु! कृपा करहु अब, मैं निज दोष कछू नहिं गोयो।
डासत ही गइ बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ! नींद भरि सोयो ।।